मोह त्याग

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-६

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-११०००६

संस्करण : १९७५
मूल्य : १५.००
मुद्रक : आगरा फाइन आर्ट प्रेस, राजामण्डी, आगरा-२

MOH TYAG novel by Bhagawati Prasad Vajpayee

दो शब्द

किसी मनोरंजक उपन्यास के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह निरुद्देश्य, छिछला और अश्लील हो। अपितु सफल उपन्यास की कसौटी यही है कि उसका घटनाक्रम ऐसा प्रभावपूर्ण हो कि पाठक के मन को बांध ले, पात्र ऐसे सजीव हों कि हृदय को छूते हुए चलें और वर्णन शैली ऐसी रोचक हो कि पाठक उपन्यास को उठा ले तो छोड़े नहीं। उपन्यास के लिए यह भी आवश्यक है कि वह प्रेम और रोमांस का चित्रण करने में भी एक मर्यादा का निर्वाह करे, जिसका हम सामान्य जीवन में पालन करते हैं। उपन्यास ऐसा हो कि परिवार में रखा जा सके और परिवार के सभी सदस्य उसे निस्संकोच पढ़ सकें। लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की यही विशेषताएं हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में तीन प्रमुख घटना-चक्र हैं: एक गौरी के परिवार के इर्दगिर्द घूमता है, दूसरा शरत के परिवार के इर्दगिर्द और तीसरा पन्ना की करुण-गाथा को चित्रित करता है। तीनों घटना-चक्र एक दूसरे से गुथे हुए हैं। इनका वर्णन क्रम से चलता है, फलतः पाठक का कौतूहल अन्त तक बढ़ता ही जाता है। पात्रों के मनोभावों के घात प्रतिघात को खूब उभारा गया है। उपन्यास का अन्त सोद्देश्य है और यह देश के सम्मुख विद्यमान परिस्थिति का स्वाभाविक चित्रण करता है। यह अपने नायक के साथ तादात्म्य करने वाले हमारे तरुण और युवा पाठकों के सामने एक आदर्श भी प्रस्तुत करता है—एक अनिवार्य आदर्श।

वाजपेयी जी के उपन्यासों का हिन्दी साहित्य में तो अनुपम स्थान है ही, इनके पाठकों संख्या भी विशाल है। हमें आशा है कि प्रस्तुत सामयिक रचना उनके पाठकों को और भी सन्तुष्ट करेगा।

—प्रकाशक

: १ :

—सन्तोष उस घड़े के समान है, जो उतना ही जल ग्रहण करता है, जितना उसमें समा सकता है। चाहे वह पोखर में छोड़ा जाय, चाहे कूप में। लेकिन फिर जो प्राप्त हो चुका है उसके प्रति अनासक्ति उत्पन्न होना बड़ा ही दुष्कर होता है।

वासुदेव पलंग पर लेटे-लेटे मस्तक पर बायाँ हाथ रक्खे हुए सोच रहे थे—'मैं तो भइया के यहाँ जाने से रहा। उनकी उपस्थिति में सुरेश को देखने के लिए मेरा वहाँ जाना उचित नहीं। ऐसा तो हो नहीं सकता कि सुरेश का उन्हें कोई ध्यान न हो, या वे उसकी समुचित दवा न करें। फिर ऐसी दशा में वहाँ पहुँचकर ही मैं क्या कर लूंगा?'

उनके केश अब पकने लगे थे। एक दाँत खराब हो जाने के कारण निकलवा चुके थे। दो दिन से उनके मसूढ़े फूले हुए थे और अर्श की शिकायत तो उन्हें बनी ही रहती थी। गीता का एक छोटा संस्करण पलँग के उत्तर में, मेंटलपीस के पास, सदा रखा रहता। प्रातःकाल उठकर सबसे पहले वे धरती की रज एक बार मस्तक से लगाते और 'जय जगदीश हरे' गीत गुनगुनाते रहते। यकायक कुछ ध्यान आते ही झट से उठकर वे अन्दर चले गये। पत्र तो उन्होंने कावेरी को सुना दिया, लेकिन अपना कोई मन्तव्य प्रकट नहीं किया। यद्यपि रह-रहकर उनको सुरेश की भाव-भंगियों का स्मरण आ रहा था। कोई भी कष्ट हो, उसके लिए कहना कठिन होता है, एक बार तो यह भी उनके मन में आया—'पाँच वर्ष की अवस्था से ही वह उनका हो गया है।' शायद मेरे मन का मोह भी अभी गया नहीं है या ऐसा कुछ है कि देह रहते यह मोह कभी जाता नहीं। प्रकट करने के अवसर न मिले, यह बात दूसरी है।""आज का दिन तो अब बीत चला। नहीं, हो सकता है, कोई तगादगीर आ ही धमके।

कावेरी को दो दिन से जुकाम हो गया था। दस-पाँच मिनट के अन्तर से उसे नाक पर रूमाल का उपयोग करना पड़ता था।

उसका कण्ठ भर आया था। नासिका का भाग लाल पड़ गया था, आँखों से आँसू पोंछते हुए उसने उत्तर दिया—"तुम्हीं ने उसको मुझसे दूर किया है। मैंने पहले ही कह दिया था कि मैं उसे कहीं न जाने दूँगी। अब कौन जाने उसकी कैसी तबीयत हो। हरि ने ठीक ही लिखा है, सोचती हूँ, कहीं उसकी तबीयत ज्यादा खराब न हो गयी हो। अगर उसके जी को कुछ हो गया···"

अत्यधिक प्यार बड़ा शंकालु होता है। वाक्य पूरा किये बिना कावेरी फिर रो पड़ी। बारम्बार सिसकियाँ उभरने लगीं 'शिकायत करना तो वह जानता ही नहीं। जो कुछ थाली में सामने आ गया, चुप-चाप खा लिया। ऐसे भी दिन आये हैं कि दूध उसके लिए नहीं आ पाया है; पर उसके लिए जिद करना और रो उठना तो दूर, उलहना भी कभी नहीं दिया।'

'प्रेम किसी का नियन्त्रण नहीं मानता।' वासुदेव सोच रहे थे—'मन के भाव कोई कहाँ तक छिपा सकता है। मुझे भी तो नहीं मालूम था कि सुरेश यहाँ से चले जाने के बाद हमारे बीच एक नयी समस्या खड़ी कर देगा। कावेरी को मैं कैसे मनाऊँ।'

स्वतः उनका हृदय धक्-धक् करने लगा था। अनेक प्रकार की आशंकाएँ उनके मन में उठ रही थीं। फिर एक बार यह भी उनके मन में आया कि तार देकर क्यों न पूछ लिया जाय, अब सुरेश की तबीयत कैसी है ?

लेकिन ऐसा कुछ न कहकर वे बोल उठे—"जो भगवान यहाँ है, वही वहाँ भी है। सुरेश को भगवान का जो प्यार यहाँ मिलता, वही वहाँ भी मिलता होगा। दद्दा खुद भी उसे कम नहीं चाहते। तुम चाहे जो कहो; मगर मैं, वहाँ जाकर भी क्या कर लूँगा ? उनके होते हुए उस के प्रति अधिक मोह और ममता का प्रदर्शन मुझे शोभा नहीं देता।"

उन्होंने उत्तर तो दे दिया, किन्तु कावेरी की ओर देखकर स्वयं उनको भी अपने प्रति शिकायत बनी रही। घूम-फिर कर बारम्बार वे

यही सोचने लगते—सच पूछो तो कावेरी की बातों का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है।

कावेरी की सिसकियाँ थम नहीं रही थीं। अतः वासुदेव बाबू बोले—"कल दिन भर तुमने उसकी वर्षगाँठ मनाई है। आज उसके जीवन की अमांगलिक कल्पना में थोड़ा रो भी लो! चलो, यह भी ठीक है। प्रस्तुत सुख के साथ सम्भावित दुःखों की याद भी करती चलो।"

कथन के साथ वासुदेव यह सोचते हुए अन्तःपुर से अपनी बैठक में लौट आये कि (रमेश और गौरी) दो में से कोई भी नहीं आया। आते ही घर में हलचल पैदा हो जायगी। हरि के पत्र की बात सुनकर इन दोनों पर भी प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। रमेश तो यों भी अक्सर कह देता है—'भइया को दिल्ली भेजकर बाबू ने सबसे अधिक अन्याय मेरे साथ किया है।'—हुँः, जैसे मैं सदा अन्याय ही करता रहता हूँ!

अब दिन के चार बज रहे थे। कावेरी यकायक यह सोचकर आँसू पोंछती-पोंछती उठ खड़ी हुई कि रमेश और गौरी अब तक चल दिये होंगे। आज वह जल्दी में उठ गया था। रोटी तैयार नहीं हो पायी थी। दो पराठे ही दाल से खा लिये थे।

अभी पाइप आने में देर थी, इसलिए सबसे पहले उसने चाहा कि अँगीठी सुलगा ले। तब वह उसमें कोयला रखने लगी।

इतने में दूध वाला आ पहुँचा और बोला—"दूध का हिसाब मिल जाता, तो बड़ी किरपा होती। भैंस के लिए खली-बिनौला चुक गया है मालिक!"

इसी समय कन्धे पर थैला और हाथ में लोटा लिये एक जोशी ने पुकार लगाई—"शनि देवता, देवता शनीचर।"

मकान के आगे सड़क पर खेलते हुए बच्चे भोंपू बजा रहे थे और एक लड़की कमीज और सलवार पहने साइकिल चलाना सीख रही थी। उसकी गले में पड़ी हुई चुन्नी पीठ के पीछे उड़ रही थी। उसके पीछे

दो बच्चे दौड़ रहे थे।

एक व्यापक उदासीनता के साथ वासुदेव बाबू ने दूधवाले को उत्तर दिया—"अभी मेरा वेतन नहीं मिला है हीरा! दो-चार दिन लगेंगे रुपये मिलने में।"

फिर उन्होंने मन में कह लिया—जिन लेनदारों को समय पर रुपया नहीं मिलता, उनकी दृष्टि में हमारी क्या इज्जत रह जाती है।

कावेरी ने भीतर से ही जोशी को उत्तर दिया—"ठहरो!" उसे आज इसको तेल भी देना था, अतः जोशी को सभी अपेक्षित सामग्री देकर वह फिर अपने काम में लग गई।

अब आगे-आगे उदास मुख हीरा जा रहा था, पीछे-पीछे उत्साह के साथ जोशी।

इस सारी सृष्टि का यही रूप है। कोई प्रसन्न दिखाई देता है, तो कोई मुँह लटकाये चल देता है। कोई सोहर गाता है, तो कोई आँसू बहाता हुआ सिसकियाँ भरता है। यह दृष्य देखकर वासुदेव बाबू सोचने लगे कि सुरेश की बीमारी का हाल-चाल यों तो अभी चार दिन पूर्व भइया ने पत्र में लिखा ही था; लेकिन उसमें ऐसी कोई चिन्ताजनक बात नहीं थी। फिर हरी के इस पत्र का क्या अर्थ होता है? जान पड़ता है, यह पत्र सुरेश की इच्छा से लिखा गया है।

मन की दुर्बलता सम्बन्धित व्यक्तियों को सताये बिना नहीं छोड़ती। सुरेश अगर हरि को पत्र लिखने के लिए विवश न करता, तो ऐसी कोई बात ही न उठती कि····!

द्वार से लौट कर वे फिर अपने कमरे में आकर लेट रहे। किसी प्रकार जी को कुछ चैन तो मिले।

वे अपने को समझाना चाहते थे कि सुरेश की बीमारी बहुत साधारण है; लेकिन उनके जी को समाधान न मिलता था। वास्तव में उनके भीतर एक अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गया था।

एक बार मन में आया—दिल्ली जाने-आने में पचास रुपये खर्च हो जायेंगे।···हाँ, इससे क्या कम होंगे? पर रुपये का मुँह देखना और सुरेश की ओर पीठ कर लेना·······! फिर यह भी सम्भव है कि

वापसी में वह मेरे साथ आने की ज़िद कर बैठे…! ज़िद तो भला क्या करेगा ! नहीं-नहीं, मैं इस मोह में नहीं पड़ूंगा। बहुतेरे मोह, सीढ़ियों से उतरते समय जल्दी में एक सीढ़ी अधिक उतारकर हमें एक दम से नीचे गिरा देते हैं। लेकिन पुत्र के प्रति किसे मोह नहीं होता है ? अधिक बच्चे हुए होते तो बात और थी। मैं अब भी मूर्ख ही बना हुआ हूँ।

उस समय वे पलँग पर दायीं करवट लिये हुए लेटे थे; अब बायीं ओर लेटकर उन्होंने स्थिर किया—'तार देने में तो कोई हर्ज है नहीं।'

वासुदेव बाबू का मकान तो सामान्य रूप से अच्छा था, पर उसमें कमरे दो ही थे। एक प्रकार से वह पूरा एक फ्लैट था। सेहन छोटा था, पर उसमें दो पेड़ गुलाब के थे और दो बेले के जिनमें एक अब सूखने लगा था। कदाचित् उसकी जड़ के नीचे की भूमि में कोई छोटी-मोटी ईंट पड़ी हुई थी।

पड़ोस में हेमन्त बाबू का बँगला था, जो नगर में सेशनजज थे। उनके यहाँ फोन पर जाकर, तारघर के सम्बन्धित अधिकारी को पहले उन्होंने नन्दलाल बाबू का पता लिखवाया, फिर तार की शब्दावली हिन्दी में बोल दी—'सुरेश का स्वास्थ्य अब कैसा है ?' अन्त में जब तार की सम्पूर्ण शब्दावली की जाँच करा दी, तब फोन का रिसीवर यथास्थान रखते हुए वे यह सोचकर कुर्सी से उठने लगे कि नमिता देवी जान पड़ता है, व्यस्त हैं। गदाधर ने भीतर जा कर मेरे आने की सूचना तो दी ही होगी।

इतने में हेमन्त बाबू की सुगृहिणी नमिता देवी ने शीशे के गिलास में नीबू का शर्बत सामने मेज पर रखते हुए कह दिया—"नमस्ते।"

सहसा विस्मित होते हुए वासुदेवबाबू, संकोच के साथ, नमस्ते कहते-कहते थोड़ा ठिठक गये और कुछ अटकते हुए कहने लगे—"अ…ये… इसकी क्या ज़रूरत थी ? एक तो जरूरत पड़ने पर आपके फोन का उपयोग करूँ। दूसरे, फिर आपको इस आतिथ्य का कष्ट भी दूँ। रोज-रोज ऐसी औपचारिकता होगी तो मुझे सोचना पड़ेगा कि मैं आपके यहाँ आऊँ कि न आऊँ !" …शायद उत्तर कुछ कठोर हो गया है। मुझे यह

अन्तिम वाक्य मन में ही पड़ा रखना था। हो सकता है, नमिता के प्रभाव से बचने के लिए मेरे मुँह से निकल गया हो।

नमिता ने मुसकराते हुए कह दिया—"मैं जानती हूँ, आप ऐसा कुछ सोचकर मेरे साथ अन्याय नहीं करेंगे।"

यों भी वासुदेव बाबू को नमिता की मुखश्री बड़ी आकर्षक लगती थी। उस पर उनकी इस शालीनता से वे और भी पराजित से हो उठे।

"माना कि नहीं करेंगे।" कहते-कहते वे बोले—"लेकिन फिर आपको मेरे साथ इस कोटि का अतिशिष्टाचार भी न बरतना चाहिए।"

"पीजिए! पीजिए!! मेरे यहाँ जब किसी अतिथि का सत्कार नहीं होता तो मुझे दरिद्रता आजाने की आशंका होने लगती है। वैसे आपकी इस बात का जवाब तो मैं तब दूँगी, जब आपके यहाँ आऊँगी। अभी कल की बात है, दीदी ने खिलाने में क्या कोई कोर-कसर रख छोड़ी थी?"

"कल की बात दूसरी थी। यों मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ, जो आपके ये लाल-लाल चरण मेरी झोंपड़ी को पवित्र करने के लिए........।"

निर्मल अनुराग बड़ा ही स्थितिप्रज्ञ होता है। नमिता ने संकोच में झुककर, सिर लचाकर, पीठ फेर ली। फिर एक मन्द स्मित के ब्याज में बोल उठीं—"यह आप क्या कह रहे हैं।" वासुदेव का ध्यान नमिता के ब्लाउज के भीतर से झाँकती हुई कसी कंचुकी की पट्टी पर जा पड़ा, तो वे और भी लज्जित हो उठे। मुस्कान की इस परम रम्य माधुरी को वासुदेव बाबू भगवान की एक अलौकिक देन मानते थे। नमिता जो उनकी किसी बात पर मुसकरा उठती, तो वे मानस-लोक में सन्तरण-सा करने लगते। न तो उनकी सामाजिक मर्यादा ही इतनी स्पृहणीय थी कि नमिता उससे आकृष्ट हो सकती, न अपनी समझ से उनका व्यक्तित्व ही इतना प्रभावशाली था, जो वे नमिता के लिए किसी प्रकार प्रीतिकर बन सकतें। कावेरी की सखी होने के नाते ही उनका नमिता से एक सामान्य परिचय हुआ था।

वासुदेव बाबू स्वभाव के सरल जरूर थे, पर उनकी रुचियाँ बड़ी

परिष्कृत थीं। गृहस्थी के लिए उपयोगी वस्तुएँ खरीदने में वे धीरे-धीरे बड़े कुशल हो गये थे। नमिता स्वयं अपने तथा परिवार के लिए जो कपड़े ले आती, कावेरी उनको अपने घर लाकर स्वामी को दिखलाती हुई अकसर पूछ बैठती—"क्या राय है?"

वासुदेव जो उस पर टीका-टिप्पणी करते, कावेरी उसे ज्यों की त्यों नमिता के पास पहुँचा देती। नमिता को यह जानकर बड़ा खेद होता कि वह प्रायः दाम अधिक दे आती है।

इसका परिणाम यह हुआ कि जब उसे कपड़ा खरीदने की आवश्यकता पड़ती, तब कावेरी के साथ वासुदेव को भी जाना पड़ता। पहले उनसे मिलने में अमिता को जो थोड़ा संकोच भी रहता था, वह अब समाप्त हो चुका था। धीरे-धीरे वासुदेव बाबू उसके सच्चे साथी और मित्र बन गये थे।

अतः उन्होंने सहज भाव से उत्तर दिया—"सचमुच आपका आगमन मेरे लिए एक आलौकिक सौभाग्य का द्योतक है।" नमिता कुछ सोचती हुई अन्दर चली गयी।

वासुदेव बाबू शर्बत पीकर गिलास टेबिल पर रख ही रहे थे कि इतने में शरत आ पहुचा और वासुदेव बाबू को उपस्थित देखकर हाथ जोड़ते हुए बोला—"बहुत-बहुत नमस्कार चाचा जी!" फिर पलक मूँदते-खोलते हुए कह दिया—"मगर नमस्कार क्यों? मैं आपको प्रणाम करता हूँ।"

पहले तो वासुदेव बाबू हँस पड़े। फिर उन्होंने आगे बढ़कर शरत को गोद में भर लिया। फिर सिर पर हाथ फेर कर, उसकी पीठ थपथपाते और आशीर्वाद देते हुए कहा—"सुखी रहो बेटे, सदा सुखी रहो! आजकल तो तुम्हारी परीक्षा चल रही होगी?"

"हाँ चाचाजी, आज अन्तिम परचा हल करके आ रहा हूँ। मजे का था। बहुत अच्छा रहा।"

"लगता है, तब पहली श्रेणी जरूर प्राप्त करोगे।"

शरत ने नमित दृष्टि से कह दिया—"दादा, आशीर्वाद दीजिए कि ऐसा ही हो। बल्कि इतना अच्छा हो कि सबसे आगे दिखाई पड़ूँ।"

"ऐसा ही होगा बेटे ! मगर एक बात है शरत, गौरी की भी तो यही आकांक्षा है ।"

शरत यह सोचता हुआ अपने आपको समझाने लगा कि 'अगर गौरी प्रथम आये तो मुझे इसमें आपत्ति नहीं, बल्कि प्रसन्नता ही होगी ।'

फिर कुछ सोचकर उसने उत्तर दिया—"मगर उसका तो कहना था कि पिछली बार मैं प्रथम आ चुकी हूं । इस वर्ष अगर तुम्हीं आ गये, तो भी कोई वैसी बात न होगी, बल्कि प्रथम तो तुम्हीं को आना चाहिए, लेकिन मैं जानता हूँ दादा ऐसा भी हो सकता है कि इस साल भी वही आगे रहे ।" फिर कथन के साथ थोड़ा मुसकराता हुआ बोला—"मगर अब तो आपका आशीर्वाद मुझे मिल ही चुका ।"

वासुदेव बाबू हर्ष से गद्-गद् हो उठे और शरत की पीठ थपथपाते हुए बोले—"बहुत अच्छे बेटे, बहुत अच्छे !!"

इसके बाद वे जो कमरे के बाहर जाने लगे, तो उन्होंने देखा, द्वार पर खड़ी नमिता पूछ रही थीं—"जान पड़ता है, सुरेश का समाचार जानने के लिए तार'''!"

"हाँ, अभी-अभी चिट्ठी आई है । मैंने फोनोग्राम पर इसी सम्बन्ध में तार देकर पूछा है कि अब उसकी तबीयत कैसी है ? जरा-सा आप भी अपनी नोट-बुक में कहीं आज की तारीख और तार देने की बात लिख लीजिएगा, ताकि बिल आने पर मैं उसका तुरन्त भुगतान कर दूं । वैसे मैं तो नोट कर ही लूंगा । लेकिन बिल आने पर याद आपको ही दिलानी होगी ।"

नमिता एक तेवर के साथ बोली—"जी हाँ, जरूर नोट कर लूंगी : विशेष रूप से इसलिए कि आपने सुरेश का स्वास्थ्य-समाचार जानना चाहा है । कमाल करते हैं आप !"

नमिता की बात सुनते-सुनते वासुदेव बाबू आगे तो बढ़ गये, पर फिर वे सोच में पड़ गये । बात करने का मेरा ढंग कुछ गड़बड़ तो नहीं रहा ? कहीं नमिता को कुछ बुरा तो नहीं लगा ? फिर थोड़ा घूमकर बोले—"तो अब चलता हूँ । नमस्ते !"

नमिता सोच रही थी—'देखती हूँ फूंक-फूंक कर आगे कदम रखने

वालों का युग बीत रहा है। संयम-नियम हमारे मनोबल में वृद्धि तो करता ही है, हमें तेजस्वी भी बनाता है। किन्तु आज तो लगता है, ऐसे लोग सदा अतृप्त रहते हैं और जीवन भर ठण्डी साँसें भरते रहते हैं। वासुदेव बाबू संकोची ही नहीं, भावुक भी हैं। अकारण मेरी प्रशंसा करने में उन्हें सुख मिलता है। एक मैं हूँ जिसे उनकी भावनाओं को उभारने में मजा आता है।

शरत और गौरी में बहुत पटती थी। कालेज से लौटकर जब शरत घर पर आता, तो उसकी आँखें गौरी को समक्ष देखने को सदा उत्सुक बनी रहतीं। उसकी मीठी-मीठी चुटकियाँ उसे बड़ी सुहावनी लगतीं। उधर गौरी उसकी गम्भीरता से बहुत प्रभावित रहा करती। किसी-न-किसी बात पर कभी-कभी दोनों में झड़प भी हो जाती। पर घण्टे-दो घण्टे बाद फिर दोनों के मानस में लहरें उठने लगती थीं। गौरी के आगे के दो दाँत कुछ बड़े थे। हास छिपाने के लिए कभी-कभी वह जो अपने नीचे का अधर दबा लेती, तो शरत मुग्ध भाव से उसकी ओर इकटक देखता रह जाता। गौरी भी उसकी रूप-सज्जा के प्रति एक विशेष दृष्टि रखती।

शरत जो बहुधा अपने केश सँवारने में आलस्य कर जाता या सूट न पहन कर धोती-कुरता धारण कर लेता, तो उसका बंगीय वेश-विन्यास गौरी को बड़ा शोभन प्रतीत होता।

गौरी कभी-कभी उसके आलस्यग्रस्त प्रकृत रूप की आलोचना करती हुई कहने लगती—"केश-गुच्छ थोड़ा और बढ़ा लो, तो बहुत अच्छे लगोगे!"

गौरी यह बात जिस भाँति व्यंग में कहती, शरत उसे समझ भी तुरन्त लेता, पर उत्तर में उसका मनोभाव बड़ा सटीक होता—"अच्छा, बढ़ा लूँगा। और कोई प्रेरणा?"

कभी जो गौरी उसके घर न जाती, तो शरत को चिन्ता हो उठती —'हो सकता है, उसकी तबीयत खराब हो गई हो। क्योंकि उसे मालूम

हो गया था कि उसकी तबीयत खराब होने का क्या अभिप्राय होता है। तब वह जान-बूझ कर उसके घर चला जाता और किसी-न-किसी प्रसंग में वह कहे बिना न मानता कि मैं तो समझता था—तुम्हारी तबीयत खराब हो गयी होगी।

जब कभी ऐसा संयोग आता कि उसका अनुमान सच निकलता, तो वह संकुचित होकर बिना कुछ कहे उसके सामने से भाग खड़ी होती।

गौरी को उसकी ऐसी बातें बहुत दिन तक याद रहतीं। पर फिर जिस समय वह अपने घरपरिवार की आर्थिक स्थिति पर विचार करती, तो सोच में पड़ जाती। ऐसे भी अवसर आते कि वह स्वप्न देखती हुई बड़बड़ाने लगती—ऐसा मत सोचो भरत! जो कुछ होगा, होता रहेगा। हमारे मिलन में तो कोई अन्तर न पड़ेगा!

सुषुप्तावस्था के इन प्रलापों के साथ-साथ उसके नासारन्ध्रों से भी एक निःश्वास फूट पड़ता। कावेरी इस बात को जानती थी। वह इस सम्बन्ध में चिन्तित भी रहा करती थी।

भरत की स्थिति दूसरी थी। वह जानता था—डैडी मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे। फिर कभी जो उसे उनके अनुशासनप्रिय दृढ़ स्वभाव का स्मरण भी आता, तो वह सोचने लगता—डैडी चाहे कुछ अन्यथा सोचें भी, पर ममी—मैं जानता हूँ—गौरी को अपनी परिपूर्ण हार्दिकता दिये बिना न मानेंगी।

लेकिन ये सब बातें परिस्थितियों की अनुकूलता पर अवलम्बित थीं। प्रेम-प्रीति की अधुनातन वृत्तियों में भावी आशंकाओं का खिचाव अब तक किसी समस्या का रूप ग्रहण नहीं कर पाया था। यद्यपि दोनों किशोरवय से यथेष्ट आगे बढ़ आये थे, पर उनमें यौन-आकर्षण की लोल लालसाओं का चंचल आवेग-प्रवेग उस स्थिति तक नहीं पहुँच पाया था, जिसमें विचार और विवेक की सत्ता का अपना कर्जस्वित अस्तित्व ही तिरोधान हो जाता है।

हेमन्त बाबू जब घर पर आते, तब उनके साथ कुछ फायलें उनकी गाड़ी में रक्खी हुई अवश्य आतीं। अन्दर पहुँच कर पहले तो वे कपड़े बदलने में लग जाते, फिर पलँग पर चुपचाप पड़े रहते। उस समय श्रान्त तन व क्लान्त मन होने के कारण या तो उन्हें नींद आ जाती, या फिर लेटे-लेटे वे चिन्ता में डूबे हुए भिन्न-भिन्न प्रकार की बातें सोचते रहते।

उनके बाल जीवन के कितने ही ऐसे साथी थे, जो जीवन की दौड़ में उनसे पिछड़ गये थे। उन्हीं में से एक वासुदेव थे। उनकी हालत उस समय कुछ ऐसी विचित्र थी कि वे किसी से बोलना न जानते थे। अकसर लोग उन्हें बुद्ध समझते। पर जब परीक्षाफल का अवसर आया, तो उनका स्थान दसवीं कक्षा में तीसरा निकला। अगर उनका शिक्षा-क्रम जारी रहता, तो वे निश्चित रूप से किसी ऊँचे पद पर होते। पर घर की हालत ऐसी न थी कि वे आगे पढ़ सकते। बड़े प्रयत्न से उन्हें बैंक की नौकरी मिल गयी थी। पर हेमन्त बाबू कभी-कभी सोचने लगते—मैं इनके लिए क्या कर सकता हूँ ?

जब वे अपने आरम्भिक जीवन पर विचार करते, तो उनको अपनी सफलता पर आश्चर्य सा होता।—'मैं तो एक साधारण स्थिति का व्यक्ति था। धीरे-धीरे इस स्थिति तक आकर मैं जो कुछ ऊँचा उठ सका, उसके पीछे मेरा प्रयत्न तो है ही; साथ-ही पूर्वजों के पुण्य-प्रताप का भी फल है।'

इसी क्रम में उनको अकसर अपनी माँ का भी ध्यान हो आता। उस दिन शरत ने ज्यों-ही उनसे कहा—"चलो डैडी ! ममी चाय पर बुला रही हैं। इसके सिवा मुझे भूख भी लगी है।" हेमन्त बाबू मानस-लोक से पृथ्वी तल पर आ गये। उठे और टेबिल के उस पार नमिता की कुर्सी के सामने जा बैठे।

उनके कप में चाय ढालती-ढालती नमिता बोली—"आज वासुदेव बाबू के जीवन में एक पारिवारिक संघर्ष पैदा होता हुआ मुझे साफ दिखाई पड़ रहा है।"

पत्नी के इस कथन से वे फिर विचार में पड़ गये। उनके बड़े भाई

शिशिर कुमार अभी बने हुए थे। यों तो उन्होंने पूरी भूमि पर एक व्यवस्थित कृषि-संस्थान बना लिया था; पर इस समय वे अपने क्षेत्र के एक विधायक भी थे। परिवार की स्थावर सम्पत्ति में तो कोई विभाजन न हुआ था; लेकिन एक बात में शिशिर प्रतिज्ञाबद्ध थे कि दस सहस्र रुपये तक आवश्यकता पड़ने पर वे कभी भी दे सकते थे। इसमें इनकार करने का प्रश्न नहीं उठता था।

हेमन्त बाबू के समक्ष इस प्रकार की आवश्यकता पड़ने का अवसर ही भला क्यों आता, जबकि उनकी एक निश्चित आय थी। लेकिन शिशिर बाबू को फसल खराब हो जाने पर कभी जो आवश्यकता पड़ती भी, तो वे हेमन्त बाबू से कुछ माँगते न थे।

यह बात बहुत दिनों तक उन्हें विदित न हो पायी थी। पर कालान्तर में शिशिर बाबू के जीवन का यह गोपनीय प्रसंग जब उन्होंने जान लिया, तब से पारिवारिक संघर्ष के आर्थिक पहलू को वे व्यक्तिगत जीवन में बड़ा महत्त्व देने लगे थे। एक आध बार नमिता से उन्होंने इस प्रसंग में कहा भी था—"दद्दा ने मुझको बहुत गलत समझ लिया है।"

वस्तु, नमिता ने उनके चाय का कप पूरा करते हुए जो उपर्युक्त सूचना दी, तो उनका माथा ठनका और सहसा उनके मुँह से निकल गया, "मैं सोचता हूँ, क्यों न दद्दा को पत्र लिख कर एक-आध दिन के लिए बुला लूँ?"

नमिता बोली—"जरूर पत्र लिख दो। बल्कि अच्छा हो कि जीजी को भी साथ लेते आयें। हेमन्त ने इस विषय में तो फिर कुछ न कहा, पर नमिता की सूचना के सम्बन्ध में उन्होंने कह दिया—"वासुदेव बाबू तो बहुत सुलझे हुए आदमी हैं। मेरा उनके सम्बन्ध में अब तक यही विचार रहा है कि वे कभी किसी संघर्ष में पड़ ही नहीं सकते।"

नमिता को वासुदेव बाबू की साधु प्रकृति बहुत अच्छी लगती थी। कभी-कभी तो उसके मन में आता—'वे आदमी नहीं, देवता हैं। कावेरी वास्तव में बड़ी भाग्यशालिनी है।' पर फिर जो उसको उनकी आर्थिक स्थिति का ध्यान हो आया तो वे सोचने लगीं कि बिचारे बड़े संकट में रहते हैं; पर इस विषय में अपना तो कोई वश है नहीं।

भरत ध्यान से उनकी यह बात सुन रहा था।

स्वामी की ओर उन्मुख होकर नमिता बोली—"तुमको इस बात का तो पता होगा ही कि उन्होंने बड़े बच्चे सुरेश को अपने बड़े भाई नन्दलाल बाबू को सौंप रक्खा है।" फिर मन ही मन यह भी कहा कि अगर उनकी दशा अच्छी होती, तो क्या ऐसा सम्भव था ?

हेमन्त बाबू बोले—"अच्छा हाँ, तो फिर ?"

नमिता ने बतलाया—"दिल्ली से चिट्ठी आई है कि वह आजकल बीमार है। अब सवाल उठता है कि होना क्या चाहिए ? क्या सुरेश की माँ को अपने इस बच्चे को देखने के लिए दिल्ली जाना चाहिए ?"

"जरूर।" हेमन्त बाबू ने उत्तर में कहा—"वासुदेव बाबू चाहे जो करें, पर अपने बच्चे को देखने के विषय में उनकी पत्नी का अधिकार कोई छीन नहीं सकता!"

नमिता बोली—"लेकिन फिर अगर सुरेश कहने लगे कि अम्मा, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। मुझे यहाँ अच्छा नहीं लगता, तब ?"

"तब वासुदेव बाबू को सोचना पड़ेगा कि ऐसी स्थिति में वे क्या करें। इसके साथ-साथ उनको उन आधारों पर भी विचार करना पड़ेगा, जिनके कारण सुरेश को वहाँ अच्छा नहीं लगता। वैसे तबीयत बदलने भर के लिए तो उसे कभी-कभी आना ही चाहिए।'

बात करते-करते जब चाय-चक्रम समाप्त हुआ तो हेमन्त बाबू पुनः पलँग पर जाकर लेटे-लेटे विचारमग्न हो उठे।

: २ :

अभी साल भर भी नहीं हुआ था; एक दिन की बात है, न्यायालय के अन्दर हेमन्त बाबू अपनी कुर्सी पर बैठे हुए थे कि तार का लिफाफा खोलकर उन्होंने टेबिल पर रख दिया। पुकार के शब्द उनके कानों में आ रहे थे—"अकबरसिंह वल्द फतहसिंह हाजिर है ?"

सामने लालफीते की फाइलें रखी थीं। अभी बहुत से कागजों पर हस्ताक्षर करना शेष था। सरकारी और अभियुक्त-पक्ष के वकील, साक्षी और पैरोकार लोग आपस में कानाफूंसी कर रहे थे और जूरी पार्श्व में आकर उत्सुकता से अभियोग के प्रारम्भ होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। थानेदार गजराजसिंह कोर्ट इन्सपेक्टर साहब को उत्तर दे रहे थे—"सभी गवाह हाजिर हैं साहब।"

इसी समय एकाएक हेमन्त बाबू पार्श्ववर्ती कमरे में चले गये। अभी कुर्सी पर बैठे ही थे कि पेशकार साहब के साथ कोर्ट साहब आ पहुँचे।

हेमन्त बाबू ने सिगरेट सुलगाया और पहला कश लेकर कह दिया, "मेरी माँ की डेथ हो गई है कोर्ट साहब! इसलिए मैं पन्द्रह दिन की छुट्टी पर जा रहा हूं।"

फिर वे डी० एम० को फोन करने लगे—"आज शाम की मीटिंग में मेरा आना सम्भव नहीं; क्योंकि मेरी माँ का देहान्त हो गया है।.... जी, जी हाँ, पन्द्रह दिन तो जरूर लगेंगे।"

रिसीवर को यथास्थान रखकर उन्होंने पेशकार को आदेश दे दिया—"सभी मामलों में पन्द्रह दिन बाद की तारीख पड़ेगी। जो भी कागजात रह गये हों, बँगले पर भेजिए। और हाँ, ताँगा बुलवाइए।"

अब रह-रहकर सभी ज्ञातव्य और अपेक्षित बातें उन्हें याद आ रही थीं।—जाड़े के दिन थे, वे पत्नी के लिए चेस्टर, बैठकवाले कमरे के लिए कालीन और हीटर खरीदने वाले थे। फिर सोचने लगे—सारी योजनाएँ स्थगित करनी पड़ेंगी। पत्नी को साथ न ले जाऊँगा, तो दद्दा क्या कहेंगे? और जो साथ ले गया, तो शरत यहाँ अकेला कैसे रहेगा? जमकर अध्ययन करने के यही दिन होते हैं।

अब एक-एक कर धीरे-धीरे माँ के जीवन से संलग्न सारी उपलब्धियाँ, स्मृतियों के रूप में, मानस-पट पर चित्रित हो-होकर आने लगी थीं।—चौदह वर्ष की अवस्था पार करके एक दिन वे इसी नगर में आये

थे। नागरिक जीवन का नया-नया परिचय मिला था। स्कूल की पढ़ाई के अतिरिक्त मित्रों के साथ बैठने में दिन पार होते देर न लगती थी। छुट्टियों में वे घर चले जाते थे। ताजा खोवा उसे कितना प्रिय है, माँ इस बात को अच्छी तरह जानती थीं। इसलिए सन्ध्या का जलपान वे प्रायः ताजे खोये से ही करते थे। तीस रुपये उन्हें खर्च के लिए मिलते थे। दस-पन्द्रह और कभी-कभी बीस रुपये तक वे माँ से झटक लिया करते थे। साधारण रूप सें अनुचित अनुशंसा उन्हें किसी की रुचिकर न होती थी; किन्तु माँ की सेवा में वे एक प्रकार के आनन्द का अनुभव करते थे। वे सोचते थे कि अनुशंसा और संस्तुति की भी एक विशेष कला होती है, जो सब को सुलभ नहीं होती। और उनका दावा था कि वह उन्हें आती है। यह बात दूसरी है कि वे इस सम्बन्ध में पात्र, सुपात्र और कुपात्र के भेदाभेद का अवश्य ध्यान रखते थे।

चपरासी ने आकर सलाम बजाया और कहा—"हुजूर, ताँगा हाजिर है।"

उन्हें उस दिन की सारी बातें स्मरण आ रही थीं : वे तुरन्त-न्यायालय कक्ष से बाहर हो गये और ताँगे के ऊपर पैर रखते हुए सोचने लगे —प्रतीक्षा तो दद्दा क्या करेंगे मेरी। माँ का शव वे अनुजाओं को ले गये होंगे। लेकिन अगर वे आज ही गाँव पहुँच सकते———! सोचते-सोचते अन्त में उनकी आँखें भर आयीं। उस दिन का स्मरण हो आया, जब वे पहली बार हाई स्कूल से लौटकर गाँव गये थे। सायंकाल माँ ने उनके लिए खीर बनाई थी। उस दिन उनकी तबीयत कुछ ऐसे मोड़ पर आ गई कि उन्होंने मन-ही-मन तय कर लिया—आज तो मुझे डटकर खीर खानी है। तभी वे बोल उठे थे—"अम्मा जैसी बढ़िया खीर तुम बनाती हो, वैसी राजा विराट के यहाँ भीमसेन भी क्या क्या पाते होंगे, पाक-विद्या ही जिनके निर्वाह का एकमात्र अवलम्ब थी!"

और क्षणभर बाद तवे पर रोटी डालती हुई अम्मा बोल उठी थीं—"खीर और ले लेना हेमू!"

सोचते-सोचते उन्होंने जेब से रूमाल निकाल कर आँखों में लगाया और मन-ही-मन कह लिया—"भगवान करे, ऐसी माँ सबको मिले।"

अब तांगा चला जा रहा था।

अतीत की बातें सोचने में कभी-कभी बड़ा रस मिलता है।

"जब कभी वे घर जाते, तब अगर निर्मला के लिए बढ़िया जम्पर या ब्लाउज, पिता के लिए रुपये तोले वाली खुशबूदार तम्बाकू और भाभी के लिए साड़ी ले जाते, तो माँ के लिए भी पीतल की बनी आरती, शंकर-पार्वती या गणेश-लक्ष्मी की मूर्ति, भगवान कृष्ण का कोई मनमोहक चित्र, धूपदानी तथा पूजन-पाठ की वस्तुएँ अवश्य ले जाते। उस समय माँ हर्ष से गद्गद् होकर बोल उठतीं—"यह चीज तू बड़ी अच्छी लाया हेमू!" और जब कभी गाँव की बहू-बेटियाँ और प्रौढ़ा नारियों में कोई उनसे मिलने आता, तो वे उन सबको वे चीजें दिखला-दिखलाकर कहतीं—"अब की बार तुम्हारा हेमू देखो कैसी-कैसी बढ़िया चीजें ले आया है।" क्रम-क्रम से वे सारी चीजें उन्हें दिखलाई जातीं, जिन्हें देख-देखकर वे सब उसकी सराहना में अपनी इच्छा प्रकट किये बिना न रहतीं। सहसा उनके मुँह से निकल पड़ता—"वाह, जा मूरत तो बहुतई नीकी है। ऐसी एक हमऊँ को मँगाय देव चाची। जित्ते दाम की होय तित्ते हम दे दीहैं।"

उसके उत्तर में माँ बोल उठतीं—"दामों की कोई चिन्ता नहीं। मैं तो तुमको इसलिए दिखला रही थी कि ऐसी-ऐसी चीजों में ही सब पैसा उड़ा डालता है तुम्हारा हेमू। पैसा जोड़ने का उसे जरा भी लालच नहीं।"

समय-समय पर घुमा-फिराकर ये सारी बातें उनको सुनने को मिल जातीं और उन्हें अनुभव होता कि माँ की इन बातों में प्रत्यक्ष रूप से भले ही कुछ उपालम्भ मालूम पड़े, पर भीतर से वह उनकी एक साध ही पूरी करता है; क्योंकि इन बातों के प्रसंग से जो उत्तर उन्हें मिलते, उनसे वे प्रसन्नता और आनन्द से गद्गद् हो उठतीं।

उस दिन तो रामा की माँ ने उनको उत्तर देते हुए यह भी कह डाला था—"इसको पैसा उड़ाना नहीं कहते चाची, यह तो एक बड़े सौभाग्य की बात है कि भैया को तुम्हारी रुचियों का और साथ ही साथ घर-गृहस्थी की मर्यादा का इतना ध्यान रहता है।"

अब उनको अपने बचपन के वे दिन भी याद आ रहे थे—जब वे

गाँव में इधर-उधर निकलते, तो सदा और सभी जगह उनका स्वागत होता रहता। वे कहीं भी जा रहे होते, तो लोग उन्हें पास बुलाने को आतुर हो उठते। यदि कभी वे ठिठककर खड़े भी हो जाते, तो खाली चारपाई पर दरी बिछा दी जाती। कभी बैठे-बैठे उन्हें यदि प्यास लग आती, तो पानी के साथ-साथ उनके समक्ष एक कटोरी में चार पेड़े रखे चले आते। वयस्क भाभियाँ उन्हें अन्तःपुर में निमन्त्रित करतीं। अन्त-स्सलिला रसवती प्रेरणाएँ मुसकान और परिहास में बदल जातीं। गाँव के वृद्ध जन चलते-चलते मार्ग में सहसा रुक जाते और खड़े होकर देखते कि उनके चरणों की धूल को अपने मस्तक से लगाने वाला हेमन्त सामने खड़ा है! तब एक प्रलम्ब और प्रशस्त हाथ की छाया उनके सर पर आ पड़ती। आशीर्वाद गर्भित मर्मवाणी फूट पड़ती—"जीते रहो बेटा! कब आये?"

वे उत्तर देते—"आज ही आया हूँ दादा।"

दादा पूछते—"अभी तो दो-चार दिन रहोगे न?"

तो उनका उत्तर होता—"हाँ दादा, रहूँगा—एक सप्ताह।"

फलतः वे वृद्धजन अपना हार्दिक उल्लास प्रकट करते हुए कहने लगते—"तब तो मिलोगे। बेटा, हम सब लोग तुम्हारी उन्नति से ही गाँव की उन्नति की आशा करते हैं और सच पूछो तो इस अवसर को अपने लिये एक सौभाग्य की बात समझते हैं।"

हेमन्त बाबू आज सोचते हैं कि यह सब उसी माँ की देन है—उसी माँ की।

हाँ, तो उस दिन बँगले के अन्दर जाते हुए वे सोच रहे थे, पिता पहले ही चल बसे। रहा-सहा एक माँ का सहारा था, वह भी आज से समाप्त हुआ।

तिरोहित सौख्य लौटकर कभी नहीं आता। यद्यपि हेमन्त बाबू सोचते हैं कि सच्चा सुख तो इस बात में है कि हम उन लोगों के लिए क्या कर सकते हैं, जिनके साथ हमारा किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

ताँगा ज्यों-ही बँगले के द्वार-मंच में पहुँचा, त्यों-ही कपाट खोलते हुए नमिता ने पूछा—"अरे, आज तुम इतने जल्दी कैसे आ गये?"

उत्तर में उन्होंने वह तार उसके हाथ में दे दिया था। वे कुछ भी कह न पाये थे। माँ की प्यार भरी मुद्रा याद आ रही थी, मुख की चीरन में सँजोई वह प्रसन्नता जिसको देख-देख कर वह अपने जीवन को धन्य-धन्य समझने लगते थे।

नमिता ने तार पढ़ा, तो बैठक में उनके साथ-साथ चलती हुई वह बोली—"हाय अम्मा"" !" और उसकी आखें भार आयीं। सहसा मुँह से निकल गया—"अब क्या होगा ?" उनकी समझ में न आया, वे किन शब्दों में उसे धैर्य बंधाएँ।

उस स्थिति में कोई उत्तर उन्होंने नहीं दिया। स्पष्ट जान पड़ता था, वे निश्चेष्ट पड़ी हैं। अब वे मुझसे कभी कुछ नहीं बोलेंगी। जीवन के प्रति अब उन्हें कुछ भी नहीं कहना है।

नमिता बोली—"हाय अम्मा, मुझे कितना चाहती थीं।" हेमन्त बाबू ने सोचा कि मुझको जितना चाहती थीं, उतना भला क्या किसी को चाह सकती थीं। रो हम रहे थे। लेकिन प्रतीत यही होता था कि उनकी आँखों में आँसू अवश्य भरे होंगे। क्या उनको हम लोगों का स्मरण न आया होगा ?

बहुतेरे वियोगों की पीड़ा संचित ऐश्वर्य्य की स्मृतियाँ लेकर प्रारम्भ होती है। नमिता कह रही थी—"मेरा ये हार उन्हीं ने जिद करके बनवाया था। बाबू का तो ऐसा कुछ इरादा नहीं था; अम्मा ने ही अपनी नथ और जंजीर इसके लिये दे दी थी।"

उन्हें ध्यान आ गया, यह पीड़ा कभी न मिटेगी। हमें पहले अपना कर्तव्य देखना चाहिये। तब हेमन्त बाबू को कहना ही पड़ा, "अरे तुम बैठी हो ! चलोगी नहीं ? दादा, हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

हाँ, प्रतीक्षा क्यों नहीं करेंगे ? यद्यपि अम्मा ने प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं समझी। शायद सोचती हों, ऐसे समय भैया को बुलाने से परिवार का दुःख और बढ़ जायगा।

स्वामी और तात्कालिक हितों का संघर्ष बड़ा निर्मम होता है। उन्होंने कपड़े उतारते हुए पूछा—"शरत के पढ़ने में हर्ज न होगा ? परीक्षा के दिन निकट हैं, सारा भविष्य जिस पर निर्भर करता है।"

जैसे अम्मा की अन्तरात्मा के साथ शरत का कोई सम्बन्ध ही न हो !

नमिता को भी ध्यान आ गया था—वैसे तो वह अम्मा के साथ ही रहती थी; लेकिन इस पद पर नियुक्त होते ही अम्मा बोल उठी थीं —कष्ट तो होगा; पर अब तो हमें बहू को हेमू के साथ भेजना ही होगा। ""और सचमुच जीवन-सौम्य को देखें तो मेरा वह वर्ष ! अधिक क्या ""तभी वर्ष भर बाद यह शरद पैदा हुआ था ।

हेमन्त बाबू की बात सुनकर नमिता ने कह दिया—"यह तुम क्या सोचने लगे ? तुम्हारा इरादा क्या है ? क्या मैं न जाऊँ ? नहीं-नहीं, मुझे जाना ही होगा। मेरा जी किसी तरह न मानेगा। तुम जानते हो, अपनी ही दृष्टि में गिरा हुआ व्यक्ति अपनी अन्तश्चेतना खो बैठता है।"

नमिता ने ऐसी बात कह डाली थी, जिसने उनका मर्म-स्थल छू लिया था। उन्होंने सदा इसी बात का ध्यान रक्खा है। अम्मा के जीवन की (उनके लिए) सबसे बड़ी देन यही है।

तब वह बोले—"यह तो तुम ठीक कह रही हो। लेकिन फिर सवाल उठता है कि शरत की पढ़ाई कैसे पूर्ण होगी ?" सच पूछो तो यह उनकी स्वार्थभावना थी। अम्मा के प्रतापी जीवन की ओर उनका ध्यान ही नहीं जा रहा था।

तभी नमिता बोली—"तुम पहले चलो तो, हम जीजी से सलाह करके सब तय कर लेंगी।" विपत्ति को टालने का यह ढंग सचमुच बौद्धिक है। विवेक के तन्तुओं को इससे बड़ा सहारा मिलता है।

शायद गजाधर ये बातें चुपचाप खड़ा सुन रहा था। हेमन्त उसकी ओर दृष्टि डालते हुए बोल उठे—"अरे गजाधर, जाओ कालेज से शरत को ले आओ। उसे यहाँ अकेला कैसे छोड़ेंगे ? घबरा न जायगा ! और देखो, कन्या-महाविद्यालय से इन्दिरा को भी ले लेना। जाओ, ताँगा खड़ा है।" इन्दिरा का शील-स्वभाव अम्मा से कितना मिलता-जुलता है ! जब से ससुराल गयी है, बराबर इन्हें पत्र लिखती रहती है। नमिता उसका पत्र पढ़ कर यही सोचती रहती है कि उसने इनके लिए क्या-क्या लिखा है।

मजाधर चुपचाप चला गया था। उसने कभी अम्मा को देखा न था, हेमन्त बाबू ने उसको यहाँ इसी नगर में नौकर रखा था।

हेमन्त बाबू को याद आ गया कि एक बार वह जब घर पहुँचे थे, उस समय अम्मा एक चटाई पर बैठी दाल बीन रही थीं। छोटी बहिन निर्मला दाँत से लड्डू तोड़ती हुई जलपान कर रही थी। भाभी बरामदे के अन्दर पलँग पर लेटी हुई थीं, क्योंकि थोड़ी देर पहले उन्होंने वमन किया था। इस वमन के आधारों से तब तक इनका बिल्कुल परिचय न हुआ था। पिंजड़े के अन्दर बैठा हुआ तोता मक्का के भुट्टे के दूधिया दानों पर अपनी नुकीली चोंच मार रहा था। उन्होंने सोचा—दूधिया दानों पर चोंच मारना मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है। मैं अपने आपको कम साधु नहीं समझता, किन्तु क्या मेरे मन में कभी यह आया नहीं कि अगर नमिता की कोई छोटी बहिन होती, तो क्या उस पर मेरी आँखें अपनी बरौनियों की चोंचें न मारतीं!………… तभी अम्मा के चरण स्पर्श करके वह चटाई पर आकर बैठ गये और बोले—"अम्मा शहर में एक महात्माजी आये हैं। वे कथा बहुत अच्छी कहते हैं। तुम इस बार मेरे साथ जरूर चलना, अच्छा।"

क्षणभर को सिर ऊपर उठाकर अम्मा ने उत्तर दिया था—"तू झूठ-मूठ की बातें बना कर मुझसे मत कहाकर हेमू! आया होगा हारमोनियम पर गा-गाकर कथा सुनाने वाला कोई रोजगारी कथावाचक; पर मुझसे कहता है, महात्मा जी आये हैं!"

उन्होंने तब कहा—"नहीं अम्मा, वह तो ब्रह्मचारी जी हैं। सत्रह वर्ष की उम्र से ही साधु हो गये थे।" इनका अभिप्राय प्रभुदत्त ब्रह्मचारी से था। इलाहाबाद में यह उनके दर्शन करने अकसर जाया करते थे। वे प्रत्येक बात को 'श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे—हे नाथ नारायण वासुदेवा' में निहित करके ऐसे ढंग से बोलते थे कि उनका उत्तर अपना अभिप्राय प्रकट कर देता था।

तब माँ का दाल बीनना छूट गया था; और वे बोल उठीं थीं—"हाय इतनी छोटी उमर में—! तब उन्होंने संसार का सुख भला क्या जाना होगा! मैं जरूर चलूँगी हेमू।" अम्मा को जन-जन के सांसारिक

सुख का ध्यान रहता था। इन्दिरा का विवाह उन्होंने सत्रहवें वर्ष के प्रारम्भ में ही कर डाला था। यद्यपि अब हेमन्त बाबू सोचते हैं कि इतनी जल्दी विवाह करना नहीं चाहिये।

लेकिन दूसरे दिन जब इनका सामान बैलगाड़ी पर रखा जाने लगा, तो वह अम्मा के पास आकर बोले—"लो, तुम अभी तैयार ही नहीं हुई! अब जो देरदार हुई तो मेरी गाड़ी भी छूट जायगी!"

तब अम्मा बोल उठी थीं—"तेरी गाड़ी कभी नहीं छूटेगी हेमू! मुझे इतनी फ़ुरसत कहाँ है कि मैं तेरे साथ चल सकूँ? बड़ी बहू को यहाँ अकेला कैसे छोड़ दूँ? आजकल उससे सेवा-टहल का काम नहीं किया जाता।" आज ये ध्यान से देखते हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि सचमुच इनकी गाड़ी कभी छूटने नहीं पायी। अम्मा का आशीर्वाद सदा इनके साथ रहा है।

वह पहले ही से जानते थे कि माँ साथ न जा सकेंगी। अतएव उनके पैर छूते हुए उन्होंने कह दिया था—"अच्छा तो अब मैं जाता हूँ अम्मा।"

बहुतेरे सुखद वियोग हमसे सहन नहीं होते! आज इन्हें ऐसा जान पड़ रहा था कि सच्चा प्यार तो बस माँ का होता है।

हाँ तो अम्मा ने आशीर्वाद देते हुए कह दिया था—"जा—जा, रह, मैं दरवाजे तक न जाऊँगी। वहाँ खड़े-खड़े तुझको अकेला जाता हुआ देखने में·······!" बात आधी ही रह गई थी। उनका कण्ठ भर आया था और आँखों में आँसू छलछला आये थे। आँसू प्यार का दूसरा रूप है। जिसकी आँखों में आँसू नहीं आते, वह प्यार करना कभी जान नहीं सकता। इन्दिरा की याद जब कभी आती है, यही सोचने लगते हैं, कौन जाने वह कैसी परिस्थिति में हो। इधर दो महीने से उसका पत्र नहीं आया। बाबू साहब बहुत कम पत्र लिखते हैं, पर इन्दिरा को तो लिखना चाहिये। हेमन्त ने सोचा—कल प्रातःकाल उसे पत्र लिख ही दूँ।

कर्त्तव्य की बहुतेरी घड़ियाँ शिष्टाचार से विलग बन कर निर्देशनात्मक हो जाती हैं। हो सकता है, उसका रोज-रोज पत्र लिखना बाबू साहब को केवल शिष्टाचार जान पड़ता हो। यद्यपि माता-पिता के साथ बच्चों का शिष्टाचार भी प्यार से ही संलग्न रहता है।

इतने में नमिता बोल उठी—"अब सोच क्या रहे हो ? सामान नहीं पैक करना है ?"

फिर बराण्डे में जाकर उसने माली को पुकारा—"सोने, इधर जरा आना।" हेमन्त बाबू तो अम्मा को हर हफ्ते पत्र डालते रहते थे। उन्हें पत्र लिखने में इन्हें बड़ा रस मिलता था। एक दिन उन्होंने यह स्वीकार भी किया था कि पुत्र का पत्र पाकर उन्हें बढ़ा सुख मिलता है।

सोने पास आ गया। नमिता अन्दर पहुँचकर बोली—"जो-जो सामान ले जाना हो, पैक करवा दो। मैं तब अपना सामान ठीक-ठाक करती हूँ।" नमिता सामान लगा रही थी। और वे उसे देख रहे थे। यह इनकी आदत है। कार्यशील घड़ियों में रूप-सौन्दर्य का निखरा हुआ प्रौढ़ पटु स्वरूप देखने को मिलता है।

इतने में न्यायालय का चपरासी फायलें ले आया और वे उनको देखने बैठ गये। नमिता निकट खड़ी होकर बोली—"बाबू नहीं रहे थे, तब मुझको इतना दुःख नहीं हुआ था; लेकिन अम्मा.......। अम्माँ की याद तो मुझे जीवन भर न भूलेगी।" उनका ध्यान भंग हो गया। उन्हें कुछ ऐसा जान पड़ा जैसे अम्मा उनके पास आकर खड़ी हो गयी हैं। वे उन्हें देख रही हैं कि यह कार्यशील जीवन में कैसे लगते हैं। तभी नमिता ने कह दिया—"लो, ताँगा आ गया। अरे जरा सुनो। अभी इन लोगों को अम्मा के स्वर्गवास का समाचार न देना; और तुम भी कहीं बीच में रो न उठना। गाँव पहुँचने पर बच्चे आप-से-आप सब कुछ जान लेंगे। अभी हम इतना ही कहेंगे—यों ही दद्दा ने बुलाया है।"

इन्हें बोलना पड़ा, "तुम तो बिल्कुल पगली हो गई हो रानी! ऐसा ही था तो तुमने भजाधर से कह क्यों नहीं दिया कि अभी बच्चों से कुछ प्रकट न करे। दुःख हो या सुख, मनुष्य अपनी भावना कभी छिपा नहीं सकता।" फिर सहसा ध्यान हो आया, बर्न ने कहा है कि अगर चाहते हो, दुःख दुबारा न आये तो तुरन्त उसका अन्तःस्वर सुनो कि वह क्या कह रहा है।

इतने में शरत और इन्दिरा दोनों अन्दर आ गये। शरत रूमाल आँखों से लगाये हुए था और इन्दिरा माँ से लिपटकर कह रही थी—"अम्मा,

अजिया !" नमिता से लिपट कर रोने की इन्दिरा की आदत पड़ गयी है।

तभी हेमन्त को बोलना पड़ा—"रोया नहीं करते बेटे ! अजिया तेरी बुड्ढी भी तो बहुत हो गई थीं। अब एक-न-एक दिन उनको मरना ही था। अपना-अपना सामान ठीक तरह से पैक करवा लो झट से।"

नमिता कुछ सोचकर वाश बेसिन पर जाकर मुंह धोने चली गयी। बच्चों के सामने रोना एक गलत आदर्श उपस्थित करना है।

फिर झट से लौटकर वह बोली—"शरत बेटे, तुम अपने पढ़ने की सारी किताबें लेते चलो। वैसे हम कोशिश तो यही करेंगे कि दो ही एक दिन में लौट आयें, लेकिन यह सब तो वहाँ पहुँचने पर ही तै होगा।" हेमन्त ऐसी स्थिति में पड़कर अकसर घबरा जाते हैं। इनकी अपेक्षा नमिता अधिक प्रबुद्ध है। उसका प्यार भी बहुधा सन्तुलित रहता है। या शायद ऐसी कुछ बात है कि नमिता में इन्हें कोई दोष ही नहीं मिलता।

इधर ये बात हो रही थीं, उधर गाँव के घर का नौकर रज्जन सामने आकर खड़ा हो गया और बोला—"सरकार !"

नमिता ने स्वर पहचानकर कह दिया—"चले आओ रज्जन।"

रज्जन हाथ जोड़कर नमस्कार करता हुआ बोला—"तार आपको मिल ही गया होगा। दद्दुआ कहिन है कि उधर से ही सीधे बिठूर आ जायँ। आज नहीं कल सबेरे। हमको उन्होंने यही समाचार देने के लिये यहाँ भेजा है।"

तब वह बोल उठे, "अच्छा तो दद्दा अम्मा के शव को उधर से ही गंगा-तट पर ले जा रहे हैं। चलो, यह बहुत उत्तम हुआ।" फिर हेमन्त ने कहा—"सुना नमिता ? परेशान होने की कोई जरूरत नहीं।"

उसके पश्चात् वह दूसरी फायल का फीता खोलने लगे। ···मालूम नहीं, अब तक कितने फीते खोल चुका हूँ। कभी इतना अच्छा नहीं लगा था, जितना उस दिन लगा था। अम्मा को मेरी सुविधाओं का कितना ध्यान रहता था। अब क्या होगा, नहीं जानता। नमिता से ही कुछ आशा है। पर सारी मुश्किल यह है कि वह अपनी कार्यशीलता से मुझे मोह लेती है। और मोह ? अम्मा, तुम जानती हो, इसे तुम्हीं ने उत्पन्न किया

था, नमिता ठीक उस समय मेरे साथ भेज-कर, जब ‥‥ । नहीं अब मैं उन बातों का स्मरण भी नहीं करूँगा ।

क्षणभर बाद वह क्या देखते हैं कि कल की डाक से आया हुआ एक ऐसा सरकारी पत्र उसमें रखा हुआ है, जिसके अनुसार उनकी नियुक्ति सेशन जज के पद पर हो गई है ।

तब यकायक वह बोल उठे—"अरे नमिता, इस पत्र को तो जरा देखो । तुम्हें स्मरण होगा, मैंने एक दिन कहा था—तुम्हारे इन्हीं चरणों के प्रताप से सेशन जज हो जाऊँगा । तुम देखती जाओ ।"

हेमन्त ने सोचा—और यह कितने आश्चर्य की बात है कि अम्मा ने अपने प्रस्थान के समय भी हमारी उन्नति का ध्यान रक्खा । अब हमें बारह-सौ रुपये मासिक मिलेंगे । बारह सौ । लेकिन ‥‥‥ । और इसके साथ वह अपने आँसू न रोक सके ।

शायद नमिता अन्दर जाकर रज्जन के जलपान के लिये मिठाई निकालती हुई सोच रही थी—"हम लोग बेकार ही उलझन में पड़े हुए थे । अम्मा के किसी काम ने हमको कभी कोई कष्ट नहीं दिया ।"

स्वामी की उन्नति का नियुक्ति-पत्र देखकर तो वह और भी अवाक् विस्मित हो उठी । दुःख के आँसू आनन्द के रूप में परिणत हो गये ।

किन्तु तब यह सोचकर वह और भी दुःखी हो उठी—काश मृत्यु से पूर्व अम्मा को यह सुसमाचार भी सुनने को मिल जाता ।

पर मनचाही कहाँ होती है !

वेदना का यह कैसा विलक्षण गुण है कि सम्बन्धित सौख्य और आनन्द भी अन्त में दुःख के अगाध में ही आ मिलते हैं ।

चिन्तन में एक विराम आ गया ।

‥‥‥अब रात बहुत बीत गयी है । रेडियो का बी० बी० सी० का कार्यक्रम भी समाप्त हो रहा है । कभी पहरुआ बोलता है, कभी उसकी सीटी की आवाज सुनायी पड़ जाती है । फिर दूर-सुदूर से आया हुआ उसका प्रत्युत्तर । कमरे में पंखा चल रहा है । बँगले के पीछे जो सड़क जाती है उस पर तेजी से गुजरता हुआ ट्रक अपनी भारी भरकम गति का

परिचय देता हुआ सहसा यह शंका उत्पन्न कर देता है कि पता नहीं कितनी दुर्घटनाएँ इसने की होंगी। दुर्घटनाएँ, जिनका सम्बन्ध मानवी शान्ति और व्यवस्था से है।.... हेमन्त ने सोचा—क्या जाऊँ, देखूँ, नमिता को अभी या नहीं ?

....नहीं, मैं जज हूँ। मुझे यह देखने का भी अधिकार इस समय नहीं है।—क्योंकि उसके कान बड़े ही स्वर ग्राही हैं। जाने कितनी गहरी निद्रा में लीन हो। मेरी पदचाप सुनकर उसकी आँखें खुल जाती हैं। फिर मुझ में इतना भी साहस नहीं रह जाता कि जब वह पूछे—कौन ? —तो मैं झूठमूठ ही कह सकूँ—वही जिससे तुम स्वप्न में अभी कुछ कह रही थीं।

: २ :

मन में जब कोई व्यामोह व्याप्त हो जाता है, तब मुख पर उसकी उद्विग्नता की छाप पड़े बिना नहीं रहती। जैसे आत्मा का पुलक-माधुर्य नयनों और अधरों पर अपने आप फूट पड़ता है, वैसे ही मन की उद्ग्रीव चिन्ताधारा उसे आमूल म्लान बनाये बिना नहीं छोड़ती।

कालेज से लौटकर गौरी जो घर आई, तो अपनी माँ को उदास-उदास देखते ही उसने पूछा—"अम्मा क्या बात है ? इस वक्त तुम कुछ अनमनी कैसी दिखलाई पड़ती हो ?"

कावेरी ने उत्तर दिया—"सुरेश की तबियत अभी ठीक नहीं हुई गौरी। आज अभी उसके मित्र हरि का पत्र आया है। और तुम्हारे बाबू कहते हैं कि उसको देखने के लिये दिल्ली जाने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि रक्षा करनेवाले भगवान की सत्ता तो सभी जगह एक-सी रहती है।"

गौरी सोच में पड़ गई। उसके मन में आया कि वह कह दे, पर भगवान के भरोसे हम अपना प्यार तो छोड़ नहीं सकते।

तब तक कावेरी ने कह दिया—"मैंने चाहा था कि वे जाकर उसको देख आवें, तो जी को कुछ तो धीरज मिले।"

गौरी ने पूछा—"तब बाबू क्या बोले ?"

सलवार पहने वक्ष पर झीनी चुन्नी डाले, पीठ पर दो चोटियाँ लटकाये, पैरों में सैंडिल धारण किये आँगन के ऊपर जहाँ पर आकर दोनों हाथों में किताबें लिये खड़ी-खड़ी गौरी ये बातें कर ही रही थी कि इतने में वासुदेव बाबू वहाँ आ पहुँचे और बोले—"मैंने तार दे दिया दद्दा को। मेरा खयाल है, कल सबेरे तक जवाब आ जायगा। चिन्ता की कोई बात नहीं है।"

गौरी सोच रही थी, सम्भव है शरत बाबू आते हों। उसे यह सोचने का अभ्यास पड़ गया था कि इस समय अगर वह नहीं आते, तो उसका कोई विशेष कारण होता है। और आते हैं तो पहले स्वतः कुछ नहीं बोलते। वातावरण का अध्ययन उनके लिए पहले आवश्यक रहता है। इधर मेरी हालत यह है कि परोक्ष में भी उनके साथ रहती हूँ। कह सकती हूँ—मगर नहीं कह सकती—कारण क्या है ? बहुत दिनों से उन्होंने मेरे कान में कोई बात नहीं कही !

फिर गौरी अन्दर जाकर यह सोचती हुई कपड़े बदलने लगी कि वे आते ही होंगे।

वासुदेव कावेरी से बिना कुछ कहे पुनः अपनी बैठक में लौट आये। गौरी थोड़ी देर में माँ के पास आकर बोली—"भइया अभी नहीं आया अम्मा ?"

यद्यपि उसके कान उस स्वर की प्रतीक्षा कर रहे थे, जो शरत अपने आगमन के समय साथ ले आता है। द्वार ऊपर गौरैया बोल रही थी और एक कुत्ता रह-रहकर गुर्रा उठता था। गौरी सोचती थी, गौरैया यह बतलाने आयी है कि वे आ रहे हैं। पर कुत्ता गुर्राते हुए क्या कह रहा है ?

कावेरी अँगीठी पर कढ़ाई चढ़ाये फकौड़ी सेक रही थी। बोली—"आता होगा। तू तब तक स्टोव पर चाय का पानी चढ़ा दे।"

गौरी ने झट से स्टोव में दो-चार पम्प मारकर उसे जला दिया।

फिर पतीली में पानी डालती हुई वह बोली—"जान पड़ता है, भइया आ गया।"

इतने में रमेश आ पहुँचा। उसकी बगल में पुस्तकों का बेग था। हाथ में एक दोना, जिसमें अंगूर रखे हुए थे। दो अंगूर उठाकर अपने मुँह में रखता-रखता वह भीतर चला गया, एक भी अंगूर जान-बूझकर उसने गौरी को नहीं दिया।

यह देखकर गौरी समझ गई कि यह कल वाली बात की प्रतिक्रिया है।

इतने में शरत आ पहुँचा और कावेरी के सामने हाथ जोड़कर बोला—"चाची जी नमस्ते। —ओ हो। तब तो मैं बिल्कुल ठीक वक्त पर आया।" फिर गौरी को देखकर एक बार उसकी आँखों पर पलकें जमाते हुए वह बोला—"माधुरी तुमको पूछ रही थी गौरी।"

कथन के साथ शरत बिना रुके रमेश के पास जा पहुँचा। यद्यपि वह चाहता, तो गौरी से दो-एक बात कर सकता था। पर वह तो जान-बूझकर उसे भ्रम में रखना चाहता है।

गौरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसे मालूम था, माधुरी उसे क्यों पूछ रही थी। उसने शरत की नोट-बुक माँगी थी और गौरी इस विषय को बराबर टाल रही थी। वह सोचती थी कि माधुरी को इस विषय में शरत से सीधे बात करनी चाहिये। यद्यपि वह यह भी जानती थी कि माधुरी शरत से बहुत बच कर चलती है। वह कभी यह नहीं व्यक्त करना चाहती कि उसके लिए कभी वह कुछ सोचती भी है।

रमेश ने पैण्ट उतार कर पाजामा पहिन लिया। दोने में रखे हुए जो अंगूर पहले उसने अलमारी में रख दिये थे, शरत के सामने कर दिये।

गौरी स्टोव पर चाय का पानी चढ़ाकर माँ से कहने लगी—"मेरा मन करता है अम्मा कि माधुरी के साथ मैं भी दिल्ली चली जाऊँ; और दद्दा को देख आऊँ और हो सके तो उसको लिवा भी लाऊँ।"

"पर तेरे बाबू उसको बुलाना तो चाहते ही नहीं।"

"क्यों ?"

तुझे मालूम ही है कि उन्होंने उसे दद्दा को सदा के लिए सौंप दिया

है। इसलिए अब वे इस तरह की कोई बात नहीं करना चाहते, जिससे वह दो-चार दिन के लिए भी आने की बात कभी मन में लाये।"

इतने में दोनों में रखे हुए अंगूर टूंगता हुआ शरत कावेरी के पास आ पहुँचा। जान बूझ कर उसकी ओर देखे बिना दोना उसने बायें हाथ से गौरी की ओर बढ़ा दिया।

गौरी सोच रही थी—रमेश ने ये अंगूर मुझे देने की जरूरत नहीं समझी।

गौरी ने पलकें उठा कर एक बार शरत की ओर देखा और फिर नतशिर होकर कृत्रिम उदासीनता से उत्तर दिया—"आप ही को मुबारक रहें, मुझे न चाहिये।"

तब तक रमेश ने आकर कह दिया—"हाँ शरत, अब यही तै हुआ है कि अपने-अपने पैसों की जो भी चीजें हम लायेंगे, उनका उपभोग हम स्वयं ही करेंगे। किसी दूसरे को भागीदार न होने देंगे।"

शरत बोल उठा—"यह सर्वथा स्वार्थी, असामाजिक और अमानवीय दृष्टिकोण है। मैं इसे नहीं मानता। इसी बात पर गौरी तुम ये सब अंगूर खा लो।"

गौरी जानबूझ कर मुंह बनाती हुई बोली—"नहीं-नहीं। किसी का हिस्सा मैं क्यों बटाऊँ ?"

कथन के साथ एक मन्दस्मिति उसके आनन पर खेल उठी। वह अपने मन का भेद रमेश को देना नहीं चाहती थी।

गौरी की बात को सुनकर शरत उसके मुख की ओर देखता रह गया—इसकी हर बात में तराश, कटाव और तेवर रहता है। पर तब तक उसने दोना उसके आगे रख दिया था।

फिर कुछ सोचकर उसमें से एक साथ चार अंगूर मुंहं में डालती हुई गौरी केतली में चाय की पत्तियाँ डालने लगी।

अपनी समझ से उसने शरत के आगे प्रकट कर दिया था कि हिस्सा बटाने से इनकार मैं कहाँ कर रही हूँ ? रमेश यह दृश्य देखकर बोला—"अगर मैं ऐसा जानता कि हमारे इस विवाद में शरत तुम्हारा पक्ष लेगा, तो मैं ये अंगूर उसे कदापि न देता।"

इतना कहकर वह स्नानागार की ओर बढ़ गया। भरत घूमकर कुछ सोचता हुआ फिर रमेश की बैठक में जा पहुँचा। गौरी से वह कुछ कहना नहीं चाहता था। मगर चाहता था कि गौरी उसके पास आकर खड़ी हो जाय, चाहे कुछ भी न बोले, मैं उसे बातों में उलझा लूं। कहूँ कि आज मैंने एक बहुत सुन्दर, बहुत मीठा सपना देखा है। फिर तो उसके मुख पर एक ऐसा उल्लास खेलने लगेगा कि उस पर मेरी तबियत आ जायगी! ...मगर तबियत आ जाने से ही क्या होता है। मुझे उसका मन भी तो छूकर देखना पड़ेगा।

इतने में वासुदेव बाबू फिर भीतर आकर बोले—"तार ही मैंने नहीं दिया, चिट्ठी भी लिख दी कि सुरेश की बीमारी का समाचार सुनकर यहाँ गौरी की माँ बहुत घबरा उठी है। तबियत सम्हल रही हो, तब तो ठीक ही है, अन्यथा मैं उसे देखने चला जाऊँ। पत्र की बड़ी प्रतीक्षा रहेगी।"

कावेरी बोली—"तुम समझते हो, दद्दा को इतना लिखना काफी है। तुमने यह क्यों नहीं पूछा कि उसको ज्वर कितना रहता है? दूध कितना दिया जाता है? फल कौन-कौन से आते हैं? नींद आती है कि नहीं आती? रात में सोते समय बुरे स्वप्न तो नहीं देखता है? दस्त साफ होता है कि नहीं? वजन कितना कम हो गया है? शौच जाने के लिए सहारा देकर उसे लैट्रिन तक ले जाना पड़ा है, या अपने आप उठकर खुद चला जाता है? दवा कौन-सी दी जाती है? डॉक्टर को दिखलाने के लिए खुद उसको ले जाना पड़ता है या डाक्टर खुद उसे देखने के लिए अपने घर आता है। दवा, फीस, फल और इस व्यवस्था में कुल मिलाकर कितना खर्च पड़ा है?"

पत्नी की ये बातें सुनकर वासुदेव बाबू फिर विचार में पड़ गये। जब वे शीघ्र कोई उत्तर न दे सके तो कावेरी ने कहा—"अच्छा हो कि तुम यहीं रहो, मैं रम्मू के साथ दिल्ली चली जाऊँगी। फिर दो-चार दिन बाद (उसके) अच्छे हो जाने पर लौट आऊँगी। तुमको तो इसी बात का डर खाये जा रहा है कि दद्दा कहीं यह न सोचने लगें कि हम पर अविश्वास किया जा रहा है।"

इतने में शरत ने रमेश के कमरे में रक्खे हुए रेडियो को जो संचालित किया, तो उससे एक सिनेमा-गीत फूट पड़ा—प्यार किया तो डरना क्या ?

तत्काल उसने खूंटी घुमाकर रेडियो बन्द कर दिया। इस प्रसंग में भाषा की नग्नता देख कर वह प्रायः चिढ़ जाया करता है।

तभी कावेरी बोली—"सुन रहे हो न ? प्यार के मामले में डरने की आवश्यकता नहीं।"

वासुदेव बाबू बोले—"सुन रहा हूँ। बात भी वास्तव में यही है। तुम्हें क्या मालूम कि दद्दा का कितना प्यार मैंने पाया है। उसका कुछ तो प्रतिदान होना चाहिये। इस दशा में हमको कोई ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, जिससे उनका जी दुखे। जब हमने एक तरह से उसे उनको सौंप ही दिया, तब हमको किसी भी विषय में कोई उतावलापन दिखलाकर अपना धैर्य नहीं खोना चाहिये। हमको ऐसी कोई बात नहीं कहनी चाहिये, जिससे किसी भी प्रकार यह प्रकट हो कि हमें उनसे अधिक उसका ख्याल है, या यह कि उसके दुःख-सुख को सही तौर पर समझने वाले भी हमीं हैं।"

कावेरी ने कढ़ाई अँगीठी के नीचे रख दी और कहा—"सो तो हम हैं ही। जिसने उसे पैदा नहीं किया, जिसकी कोख में उसे नौ महीने रहने का अवसर नहीं मिला, वह उसकी हारी-बीमारी की सही-सही पीड़ा का अनुभव भला कैसे कर सकता है ! फिर जिनको तुम भाभी कहते हो, मालूम है, उनका स्वभाव कैसा है ? दद्दा को समय पर खाना बनाकर खिलाना भी जिसके लिए कठिन है, उसको सुरेश का ध्यान भला कैसे रह सकता है ? तुमने कभी सोचा भी है कि जब दद्दा दफ्तर चले जाते होंगे, तब उसकी देख-भाल कौन करता होगा ? फिर सौंप देने का यह मतलब तो नहीं होता कि उसकी जान पर आ जाय, फिर भी हम उसकी चिन्ता न करें !"

"मगर जब तार मैंने भेज ही दिया, तब उत्तर की प्रतीक्षा भी हमें करनी पड़ेगी।"

"मेरा तो एक-एक मिनट मुश्किल से कट रहा है। तुमको क्या मालूम कि मुझ पर क्या बीत रही है !"

पत्नी की ये सब बातें सुनकर वासुदेव बाबू बोले—"ईश्वर के प्रति अगर तुम्हारी आस्था इस सीमा तक नष्ट हो गयी है, तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना है। अब इस विषय में, तब तक कोई बात सुनना मैं पसन्द न करूँगा, जब तक तार का जवाब न आ जायगा।"

इतना कहकर वासुदेव बाबू ज्यों-ही अपनी बैठक में आये, त्यों-ही सफेद कमीज और खाकी पेण्ट पहिने हुए एक व्यक्ति, जिसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, साइकिल से उतरते हुए बोला—"नमस्ते बाबू साहब।"

वासुदेव बाबू इस व्यक्ति का चेहरा देखते ही कुछ सहम उठे। लेकिन फिर कुछ सोचते हुए बोले—"रुपये का प्रबन्ध अभी तक हो नहीं सका भाई जान।"

"क्यों? आपके यहाँ तो पाँच तारीख को.........।"

"पाँच तारीख को हमारे यहाँ वेतन जरूर बँट जाता था; लेकिन अपनी एक बेबी के अचानक बीमार पड़ जाने के कारण खजाञ्ची बाबू दो दिन से नहीं आ रहे हैं। इसलिए अब आप दस तारीख को आइयेगा। मगर अब आने की भी क्या जरूरत है? आपके घर आकर मैं खुद रुपया पहुँचा दूँगा।"

"बाबू साहब बुरा न मानियेगा। घर पर रुपये पहुँचानेवाले दिन लद गये! अब तो हालत यह है कि तनखाह मिलनेवाले दिन अगर मैं अपने आसामियों के यहाँ न पहुँचूं, तो मेरा सारा रुपया मारा जाय और ये धन्धा ही चौपट हो जाय! इसलिए अगर दस तारीख को रुपया न मिला, तो ग्यारह को मुझे फिर आना पड़ेगा। और फिर इतना समझ लीजिये कि उस दिन रुपया लिये बिना मैं टलूँगा नहीं यहाँ से।"

कभी-कभी आपत्तियाँ सपरिवार आ धमकती हैं। वासुदेव बाबू उसकी यह बात सुनकर स्तब्ध हो उठे। वे अब सोच रहे थे कि अगर रम्मू को कावेरी के साथ भेजना ही पड़ा तो मार्ग-व्यय का प्रबन्ध मैं कैसे करूँगा?

जिस समय यह व्यक्ति अपनी बात समाप्त कर के लौट रहा था, उस समय रमेश चाय पीता हुआ कह रहा था—"मित्र का रुपया घोंट जाने में क्या लगता है?"

रमेश की बात पर थोड़ा मुसकराता शरत पकौड़ी टूंगता और गौरी की ओर देखता हुआ बोल रहा था—"अवसर आने पर जो व्यक्ति मेरे साथ सहयोग नहीं करता, उसे मैं भूल जाता हूं।"

उस समय गौरी उसके कप में चाय छोड़ती हुई सोच रही थी—"क्या रमेश ने किसी से कुछ रुपये ले रक्खे हैं?"

कावेरी इस चिन्ता में थी कि सुरेश को साथ ले जाने के लिए वह अपनी जेठानी से क्या कहेगी, यह तो वह जानती है; पर अपने दद्दा से क्या कहेगी, वह अभी बिल्कुल नहीं जानती।

उसे स्वामी की यह बात कभी भूलती न थी—परिवार के सभी सदस्यों के साथ हमारा वही नाता होना चाहिये, जैसा इस संसार के साथ भगवान का रहता है।

रमेश और शरत दोनों साथ-साथ बैठे हुए चाय पी रहे थे। सूरज डूब रहा था। पाइप अपने आने की सूचना देता हुआ सुरसुराने लगा था और गौरी का मन रह-रह कर यह सोचता हुआ उदास हो उठता था कि यदि हमारे बीच की यह स्निग्धता इसी प्रकार स्थिर बनी रही, तो इसका परिणाम हमारे पक्ष में क्या होगा? क्या हम जीवन भर प्यासे बने रहेंगे? उसके मन में आ रहा था कि हमको इस विषय में सारी स्थिति स्पष्ट जान लेनी चाहिए। पर वह सोचती थी, यदि शरत उस दिन की भाँति फिर मुझे सताने लगे, तो मैं क्या करूंगी! नहीं नहीं, मैं कभी उसके निकट न जाऊंगी।

एक काला भँवरा भन्न-भन्न करता हुआ वहाँ आ पहुँचा और गौरी इस सोच-विचार में पड़ गयी कि यह भँवरा यहाँ क्या बतलाने आया है!

: ४ :

नन्दलाल बाबू की श्रीमती का नाम तो है सत्यवती; लेकिन उनके जीवन में सत्य का सर्वथा अभाव है। एक तो उनमें आलस्य की मात्रा

अत्यधिक है, दूसरे वे स्थूलकाय भी हैं। खाने और तबियत भर कर स्वाद लेने के मामले में वे बड़ी प्रवीण और अग्रसर हैं। कदाचित् इसी कारण शारीरिक सम्पदा के नाते मिथ्या तत्वों की उनमें अधिकता है। प्रातः-काल वे पलंग से तब उठती हैं जब नौकरानी चाय का प्याला पास लगी हुई टेबिल पर रखकर उनको जगाती हुई कहती है—"बहूजी, चाय।"

तब तक नन्दलाल बाबू स्नान के उपरान्त सन्ध्यावन्दन करके सूर्य भगवान को जलांजलि दे चुकते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जाड़े के दिनों में जब वे अपने कार्यालय को जाने के लिये तत्पर होते हैं तब तक श्रीमतीजी चूल्हे पर रक्खी हुई दाल भी नहीं पका पातीं। परिणाम यह होता है कि नाश्ते के समय सबेरे जो पराठे खाकर वे जाते हैं, उन्हीं में से बचा हुआ अंश वे लंच की छुट्टी में भी (डब्बा खोलकर) ग्रहण कर लेते हैं। कभी-कभी पानी पीकर कुर्सी पर बैठे-बैठे एक झपकी भी लगा लेते हैं। तबियत भर सोने को तो नहीं मिलता, पर थोड़ी-बहुत ताज़गी तो आ ही जाती है।

यही स्थिति सुरेश की भी होती। सबेरे का भोजन उसे पराठों का ही करना पड़ता। सायंकाल अलबत्ता उसको कच्चा भोजन मिल जाता था। उस समय भी कभी दाल में नमक अधिक हो जाता, कभी साग में। महीने में ऐसे बहुत कम दिन होते, जब भोजन में किसी प्रकार की त्रुटि न होती।

नन्दलाल बाबू स्वभाव के बड़े सरल हैं। जीवन-संगिनी में सद्गुणों की मात्रा कम होने पर वे कभी अपना असन्तोष व्यक्त नहीं करते हैं। क्योंकि कुछ हो कभी-कभी उमंग आने पर प्यार के आदान-प्रदान में वे इतनी अग्रसर बनी रहती हैं कि श्लथ होना जानती ही नहीं। एक प्रकार से उन्होंने मान लिया है कि सृष्टि की रचना में आदमी का अपना पुरुषार्थ उतना महत्व नहीं रखता, जितना उसके अदृष्ट का कर्म-भोग! ताकत की दवाइयों के प्रति उन्हें बड़ा अनुराग रहता है। वे सोचते हैं कि प्रयत्न करने पर भी अगर मनुष्य का मनोरथ पूरा नहीं होता, तो

उसका अभिप्राय यह है कि वह स्वयं अपना, अपने जीवन और भविष्य का, निर्माता नहीं है।

कई बार उन्होंने उदाहरण दे-देकर सत्यवती को यह समझाने की चेष्टा की कि आंख खोलकर देखो, संसार कितना बड़ा और व्यापक है। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जो फ़ीस न दे सकने के कारण अपने बच्चे को पढ़ा नहीं सके। किन्तु कालान्तर में जब बच्चे के जीवन में नई चेतनाओं ने विद्रोह का निर्घोष किया, तब सम्बन्धित समाज की मान्यताओं को पीछे छोड़कर वह आगे बढ़ गया। उसने मज़दूरी की, पर अपनी शिक्षा का क्रम भंग न होने दिया। उन्होंने बतलाया कि मैं ऐसी स्त्रियों को जानता हूं, विवाह के समय जो आठवां भी पास न थीं, किन्तु जब उनका प्रथम पुत्र माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश कर रहा था, तब वे विश्वविद्यालय में अध्यापिका के रूप में अपनी नियुक्ति के लिए उपकुलपति के पास आवेदन-पत्र लिये खड़ी थीं। उन्होंने दस-बीस बार सत्यवती को सावधान करते हुए कहा था कि अगर श्रम, सेवा, नैतिकता, ममता, दया और सहानुभूति का महत्व तुमने स्वीकार न किया, तो जिसको शान्ति और सुख कहते हैं, वह तुमको कभी न मिलेगा।

किन्तु अब स्थिति यह है कि अगर दोपहर में पानी के अभाव में उनकी धोती पाइप के नीचे पड़ी रह गई तो फिर वह दूसरे दिन तभी धुलती है, जब वे स्वयं नौकरानी के पास खड़े होकर, आग्रह करके, उससे धुलवाने को विवश हो जाते हैं।

सत्यवतीदेवी सोच ही नहीं सकतीं कि स्वामी की सुविधाओं का कुछ तो ध्यान उन्हें रखना चाहिये। इसके विपरीत वे सोचती यह हैं कि जब स्वामी उसकी चिन्ता नहीं करते, तो मैं उनके लिये क्यों कष्ट उठाऊँ!

इस विचार का आधार होता यह मनोभाव कि स्त्री का एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है। वह पुरुष की दासी नहीं होती। उनकी इस धारणा का एक रूप इस सीमा तक उभर कर अग्रसर हो उठता कि जब-जब स्वामी प्यार करने के लिये तत्पर जान पड़ते, तब-तब प्रायः वे प्रतिदान से जानबूझ कर विमुख हो जातीं और बहाना बनाकर कहने लगतीं—"देख तो रहे हो, मुझे ज्वर आ गया है।"

सत्यवती देवी पहले तो अपनी इस विजय पर मन-ही-मन फूल उठतीं। अहं की इस तृप्ति से उन्हें एक प्रकार के गौरव का अनुभव होता। कम से कम यह सोचने का अवसर मिल ही जाता कि संस्कार की इस मात्रा से मैं कोसों दूर हूँ। पर इसी क्रम में उन्हें यह सोचने का भी अवसर मिलता कि ऐसे प्रयोग किये बिना पत्नी की प्रभुसत्ता कभी स्थिर-स्थापित नहीं हो सकती। पर फिर घंटे-दो-घंटे बाद ही प्रतिक्रिया में पड़कर सहवास के प्रति अपनी ही यह विरक्ति और अस्वीकृति उन्हें असह्य हो उठती। मन-ही-मन वे अपनी प्रकृति की इस अप्राकृतिक अनिच्छा और वितृष्णा से मर्माहत हो उठतीं। कभी-कभी ऐसी दशा में दिनभर उन्हें नि.श्वास लेते बीतता। स्वामी तो दिन भर आफ़िस में रहते; पर सत्यवती जलाशय से विलग हो जाने वाली मछली की भाँति छटपटाती रहतीं।

एक तो ऐसे संयोग ही बहुत कम आते, जब सहवास की प्रारम्भिक प्रस्तावना उनके स्वामी की ओर से होती। पर फिर जो कभी होती भी, और सत्यवती अपनी उदासीनता और विरक्ति से उन संयोगों की उपेक्षा कर जातीं, तब उन्हें कभी-कभी यह सोचने का अवसर मिलता कि इस विषय में नन्दलाल बाबू जो उनके झाँसे में आ जाते हैं, वे वास्तव में कायर हैं। एक घृणा की घृणा उनके मानस में इधर-से-उधर तैरने लगती। वे यह सोच ही न सकती थीं कि मेरे स्वामी किस सीमा तक सभ्य और सुजन हैं!

नन्दलाल बाबू के लिए यह परिस्थिति बड़ी दयनीय होती। इस विषय में बलात्कार अथवा पशुबल का अवलम्ब उनको स्वीकार न होता, जब कि सत्यवती को उसकी आवश्यकता का बोध होने लगता था। फिर स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्धों की पुस्तकों में उनको यह पढ़ने का अवसर मिला कि स्त्रियों को मूर्छारोग प्रायः तभी होता है, जब उनकी वासना शान्त नहीं होती। मासिक धर्म प्रारम्भ होते-होते, प्रायः किशोरावस्था से ही, दैहिक मिलन की इच्छा उनमें जगने लगती है। इस इच्छा की सीमाएँ बढ़ती भी रहती हैं। बच्चे हो जाने पर भी जिन सुगृहिणियों की यह रुद्ध प्रच्छन्न वासना शान्त नहीं होती, कहते हैं प्रौढ़ावस्था तक उन्हें यह

रोष बना रहता है। इसका परिणाम यह हुआ कि वे संयोग के अवसरों पर बहुधा अतिवादी बन जाने लगे।

सत्यवती जब यह बतला कर छुट्टी पा जातीं कि मेरी तबियत ठीक नहीं है, तब नन्दलाल बाबू प्रायः विचार में पड़ जाते। क्यों इसकी तबियत ठीक नहीं ? आखिर तबियत ठीक न होने का कारण ? इस तबियत का वास्तविक रूप क्या है ? केवल जिज्ञासा के नाते एक दिन कहीं उन्होंने सत्यवती की नाड़ी देखनी चाही। कलाई पर हाथ पड़ते ही सत्यवती की सारी नसें जैसे झनझना उठीं। तुरन्त हाथ पकड़कर उसने अपने पेट पर रख लिया और पूछा—"क्यों, ज्वर जैसा कुछ मालूम नहीं पड़ता ?"

नन्दलाल बाबू ने सत्यवती की पलकों और पुतलियों, भृकुटियों, बरौनियों, अधरों के बीच की दन्त-पंक्ति और मुख की दोनों चीरनों पर सहसा दृष्टि डाल कर ज़रा-सा मुसकराते हुए कह दिया—"मुझे मालूम है, तुम को कैसा ज्वर है।"

बात कहकर नन्दलाल बाबू ज्यों ही लौटने लगे, त्यों ही लाड़ में आकर सत्यवती बोली—"अब जाते कहाँ हो ?" फिर तत्काल उसने पलकें मूंद लीं।

नन्दलाल बाबू कुछ सोचते हुए वोले—"क्यों, खाना बनाने न जाऊँ?"

"खा लेना। पहले यहाँ तो आओ।"

यह देखकर नन्दलाल बाबू का माथा ठनक गया कि यह निमंत्रण अपना कुछ विशेष मन्तव्य रखता है। बिना कोई विरोध किये वे सत्यवती के निकट आकर प्यार से बोले—"कहो।"

सत्यवती को कुछ कहने की आवश्यकता न पड़ी। नौकरानी चली ही गयी थी। सुरेश स्नान-ध्यान में लगा था। अन्तराल का यह अवसर ही यथेष्ट था। सत्यवती ने बिना कुछ कहे झट से उठकर कमरे का द्वार बन्द कर दिया।

थोड़ी देर बाद जब सुरेश अँगीठी पर साग छौंक रहा था, तब नन्दलाल बाबू चुपचाप स्नान करने चले गये थे। इस घटना के मर्म पर सुरेश देर तक विचार करता रहा। उसकी समझ में न आया कि दादा को दुबारा स्नान करने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? स्नानोत्तर नन्दलाल

बाबू झटपट रसोई में आकर जब पराठे बनाने बैठ गये, तो उन्होंने बतलाया—आज मैं आफिस न आ सकूंगा। मेरी अर्जी तुम्हीं को ले जानी पड़ेगी। फलतः सुरेश विचार में पड़ गया था, उसने सोचा—हो सकता है बड़ी अम्मा की तबियत कुछ ढीली हो।

नन्दलाल बाबू यह सोचकर मन-ही-मन बड़े दुःखी होते कि यदि सुरेश को इस परिस्थिति का पता लग गया तो वह मेरे विषय में क्या सोचेगा? पर सारी कठिनाई यह थी कि सत्यवती समय की अपेक्षा कुसमय और साधारण की अपेक्षा असाधारण परिस्थितियों के संयोगों से अधिक प्रीति रखती थी। नन्दलाल उसकी इस प्रकृति से परिचित थे। पत्नी के सामने प्रत्येक विषय में समझौता करते-करते उनका अपना व्यक्तित्व म्रियमाण हो चला था। नन्दलाल बाबू को धीरे-धीरे यह अनुभव होने लगा था कि एक तो सत्यवती अतिवादिनी है। भूख-प्यास उसे जब कभी सताती है, तब वह सामान्य रूप से शान्त होना नहीं जानती। दूसरे वह अहंवादिनी भी है। आवश्यकता हो कि इच्छा, कहकर प्रकट करना उसे कभी अच्छा नहीं लगता। वह मुझ से जो चाहती है, चाहती है कि मैं उसकी सम्पूर्ति तो करता रहूँ, पर उसके लिये उसे कभी कुछ कहना न पड़े। इसके सिवा अपनी प्रेरणा को ही वह महत्वपूर्ण मानती है; दूसरे की उपेक्षा करने में उसे रस मिलता है। पारस्परिक सहयोग में भी वह प्रकट यही करती है मुझे तो इसकी आवश्यकता न थी, पर तुम कहीं बुरा न मान जाओ, इसलिये....!

कभी-कभी ऐसा भी होता कि वे प्रातःकाल पलंग पर लेटी-लेटी चाय तो पी लेतीं, पर फिर उसके बाद उठकर घर-गृहस्थी का काम देखने और निपटाने की चेष्टा कदापि न करतीं। इतना कह देना ही उनके लिये यथेष्ट होता कि आज मेरी तबियत ठीक नहीं। और तबियत ठीक न होने का अर्थ समझने में नन्दलाल बाबू धीरे-धीरे कुशल हो गये थे।

प्रातःकालीन कार्यक्रम में जब कभी-कभी ऐसा विघ्न पड़ने लगा, तब नन्दलाल बाबू ने अपनी जीवन-चर्या ही बदल दी।

प्रातःकाल प्रायः सुरेश और नन्दलाल बाबू मिलकर पराठा और साग बना लिया करते। कभी-कभी ऐसे भी दिन आते, जब सत्यवती को

सामान्य भोजन से तृप्ति न होती। तब वे नौकरानी को बाजार भेजकर उससे मिठाई और हलुआ मँगाकर चुपचाप खा लेतीं।

मन्दलाल बाबू प्राय: जल्दी सो जाते; फिर जब कभी उनकी नींद उचटती, तब वे सत्यवती की तबियत का मर्म समझने के लिये स्वयं ही उनके पास चले जाते। यदि सत्यवती को नींद आती तो फिर खूब गहरी आती। उस समय उन्हें जगाया नहीं जा सकता था। पर यदि उनकी नींद उचट जाती, तो वह मन-ही-मन तरंगित हो उठतीं। हँसती-हँसती इतना कहे बिना न मानतीं कि "क्यों, नींद लाने की दवा करने आये हो!"

इस नैश जागरण का परिणाम यह होता कि सत्यवती को दूसरा दिन विश्राम करते बीतता। स्नान-भोजन के अनन्तर वह फिर सो जातीं। नन्दलाल बाबू सोचते थे कि यदि उनके कोई सन्तान हुई होती, तब हो सकता है, उनके जीवन में कोई मोड़ भी आता। पर अब तो उनकी आदत बिगड़ चुकी थी। नन्दलाल बाबू एक बार जब लेडी डाक्टर मिस दास के पास उनको शारीरिक-परीक्षा के लिये ले गये, तब उनसे यह सुनकर वे मत्था ठोंककर रह गये कि इनमें तो कोई दोष नहीं है। अब आप ही अपनी परीक्षा किसी डाक्टर से करवा लें, तो उत्तम होगा।

यह एक ऐसा प्रसंग था, जिसमें नन्दलाल बाबू बिल्कुल असहाय हो गये थे। अपनी परीक्षा करवाने के लिये वे कभी तत्पर नहीं हुए। शायद इसलिये कभी-कभी वे यह भी सोचते थे कि वासुदेव भइया ने मेरी स्थिति पर तरस खाकर सुरेश को अगर मेरे यहाँ न भेजा होता, तो मेरा जीवन और भी अधिक दु:खी होता।

एक ओर तो सुरेश सत्यवती की आलस्य ग्रस्त, अकर्मण्य, अतिविलासी छल-छद्म पूर्ण दुष्ट प्रकृति से पूर्ण अवगत था, दूसरी ओर वह वस्तुस्थिति की इस कुरूपता के प्रति मन-ही-मन दु:खी भी रहा करता था। कभी-कभी उसके जी में आता, पिताजी ने मुझको इन दादाजी के हाथ में सौंपकर अच्छा नहीं किया। लेकिन फिर उसको यह समझने में भी देर न लगती कि अगर मैं यहाँ न भेजा गया होता, तो दादा की क्या स्थिति होती? उनकी सेवा कौन करता? चाची तो माँगने पर पानी भी नहीं देतीं, मुझे ही उठना पड़ता है।

: ५ :

सुरेश को अस्वस्थ हुए बारह दिन बीत चुके थे। पहले तो उसको फ़सली दस्त आते रहे। डाक्टर धीरेन्द्र बाबू ने बतलाया कि इसको डायरिया हो गया है; किन्तु चार दिन के बाद जब सुरेश ने उन्हें बतलाया कि कभी-कभी पेट में ऐंठन भी होती है, तब वे बोले—"तब यह डायरिया नहीं, डिसेन्ट्री (अतीसार) है। फिर जब उसकी डिसेन्ट्री की दवा हुई, तो दस्त तो बन्द हो गये, पर उसे ज्वर आने लगा।

डाक्टर साहब ने बतलाया—"तुम्हारा पेट खराब हो गया है। दस्त बन्द करने के कारण ही तुमको यह ज्वर आना प्रारम्भ हुआ है। तुम्हारी शक्ति बहुत क्षीण हो गई है, इसलिये भोजन त्यागना पड़ेगा। खिचड़ी के साथ दही और मट्ठा तुम ले सकते हो। वह भी तब, जब ज्वर का आना बन्द हो जाय।

इस प्रकार सुरेश जो खिचड़ी और दही ले रहा था, वह भी उसे बन्द करना पड़ा। उसका परिणाम यह हुआ कि चलने-फिरने तक की सामर्थ्य उसमें न रह गई और डाक्टर साहब अब स्वयं उसको देखने के लिये आने लगे।

हरिहरनाथ सुरेश का मित्र था। एक दिन सुरेश ने उससे कहा कि अब पिताजी को स्पष्ट रूप से लिख देना चाहिये कि मेरी तबियत अभी ठीक हुई नहीं। विस्तारपूर्वक सब बातें लिखना तो सम्भव न था। इसलिये हरि ने संक्षेप में वासुदेव बाबू को सामान्य रूप से एक पोस्ट-कार्ड लिख दिया था।

तीसरे दिन जब नन्दलाल बाबू ने तार पाया, तब वे विचार में पड़ गये। न तो सुरेश ने उनसे कुछ कहा था और न हरी ने ही बतलाया कि मैंने पत्र लिखा है। तार मिलने पर जब वे सुरेश के पास गये और उन्होंने कहा—"भैया ने तुम्हारे स्वास्थ्य का हाल-चाल जानने के लिये देखो यह तार भेजा है।" तब सुरेश ने कह दिया—"हाँ, मैंने हरि से कह दिया था कि पिताजी को एक चिट्ठी लिख दो कि यद्यपि अभी तक मेरी तबियत ठीक हुई नहीं, किन्तु चिन्ता की कोई बात नहीं है।"

नन्दलाल बाबू सोचने लगे—'सुरेश के प्रति भैया का मोह अब तक ज्यों का त्यों सुरक्षित है।'

दूसरे दिन जब उनको वासुदेव का पत्र मिला, तब यह समझते उन्हें देर न लगी कि पुत्र के विषय में माँ का हृदय वास्तव में बड़ा दुर्बल होता है।

यद्यपि अब सुरेश का तापमान सामान्य स्तर पर आ गया था, लेकिन अभी उसको पथ्य नहीं दिया गया था।

जब उन्होंने डाक्टर को बतलाया कि अब ज्वर क़तई नहीं रह गया, तब डाक्टर ने सलाह देते हुए कहा—"थोड़ी देर ठहरिये आप। हम अभी चलकर देख लेते हैं।"

घण्टे भर बाद जब वे उनके घर पहुँचे, उन्होंने सुरेश को देखा, तो वे बोले—"अभी टेम्परेचर है। थोड़ा एक-आध दिन और ठहर जाओ। मुसम्मी का रस चाहे बढ़ा दो, लेकिन अभी पथ्य देना ठीक नहीं!"

यह सुनकर नन्दलाल बाबू विचार में पड़ गये।

फिर उन्होंने कहा—"कानपुर से हमारे छोटे भाई का पहले तार आया था। आज चिट्ठी भी आ गई। उसमें उन्होंने पूछा है कि उसकी कैसी तबियत है? इसकी माँ इसको देखने के लिये बहुत व्याकुल हैं।"

डाक्टर साहब आश्चर्य में पड़ गये। उनको अब तक इस बात का ज्ञान ही न हो पाया था कि सुरेश नन्दलाल बाबू का सगा पुत्र नहीं वरन् भतीजा है। उन्होंने स्पष्ट कह दिया—"आपने मुझे कभी यह बताया नहीं कि यह हमारा भतीजा है। हम तो यही समझते थे कि यह आपका लड़का है। ख़ैर, आप उसकी माँ को अवश्य बुला लीजिये।"

डाक्टर साहब जब अपनी कार पर लौटने लगे, तो नन्दलाल बाबू भी उसी पर बैठ गये और तारघर के पास उतर गये। उन्होंने वासुदेव बाबू को तार से सूचना दे दी—"हाँ, बहू को लेकर चले आओ।"

नन्दलाल बाबू यह कभी न भूल पाते थे कि दमित हो या खंडित, क्षुब्ध यौन-वासना अवसर पाकर जब कभी उत्तेजित हो उठती है, तब वह समय-असमय नहीं देखती।

उस दिन के बाद वे ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने से सदा डरते रहते

थे। इसीलिए नैश जागरण की कसर वे या तो अवसर निकाल कर कभी दिन में पूरी कर लेते, या फिर आफ़िस से लौटकर नाश्ता करने के बाद एक अच्छी खासी झपकी मार लेते।

सुरेश की बीमारी के दिन चल रहे थे। सत्यवती तो उसके कमरे में सोती न थीं। नन्दलाल को ही अलग चार पाई डालकर सोना पड़ता था। उस दिन जब वे उसके कमरे में सोने जा रहे थे, तब सत्यवती ने कहा था—"ऐसा मत करो बाबू।"

दृढ़ता के साथ उन्होंने उत्तर दिया—"बच्चा जब बीमार हो, तब पिता का धर्म है कि वह पहले उसी का क्षेम-कुशल देखे। अन्य किसी माया-मोह में न पड़े।"

सत्यवती को स्वामी का यह उत्तर पसन्द नहीं आया था। अधिक न कह कर उन्होंने इतना ही कह दिया था—"तुम इस नीति को निभा नहीं पाओगे बाबू। अभी से कहे देती हूँ।"

नन्दलाल बाबू समझ गये कि उसके इस कथन का मर्म क्या है। पर वे पहले से किसी प्रकार की घोषणा करना न जानते थे। अतः कोई उत्तर दिये बिना उन्होंने मन-ही-मन स्थिर कर लिया—'मैं इसे निभाकर दिखा दूंगा।'

इस प्रसंग में फिर जब कई दिन तक कोई बात न हुई, तो सत्यवती का मन चंचल हो उठा। नौ बजते ही वह अवसर की प्रतीक्षा करने लगी।

नन्दलाल बाबू को खाना खा लेने के बाद लेट रहने की आदत थी। कभी जो कोई वार्ता प्रारम्भ भी हो जाती, तो वे थोड़ी ही देर तक हाँ-हूँ कर पाते। फिर उनकी आँखें झपकने लगतीं और वे बिना कोई सूचना दिये सो जाते। पर जब कभी ऐसा होता, तब एक-दो बजे लघु शंका के लिये वे अवश्य उठते। पहले बत्ती जलाते, फिर आँगन पार करके नाबदान की ओर बढ़ जाते।

उस दिन जब उन्होंने बत्ती जलाई, सत्यवती तब तक जगती हुई उपन्यास पढ़ रही थीं। वह झट से उठकर धीरे से आकर अपने कमरे के आगे वाले बरामदे के खम्भे की ओट में जा खड़ी हुई। लघुशंका से निवृत्ति

थककर नन्दलाल बाबू जो बरामदे से गुज़रे, तो वहाँ गृहिणी को खड़ा देखते ही ठिठक गये और उसकी ओर उन्मुख होते हुए बोले—"क्यों, क्या बात है ?"

सत्यवती धीरे-से बोली—"पहले उस कमरे की बत्ती तो बुझा आओ।"

नन्दलाल बाबू सब कुछ समझ गये, पत्नी के आदेश की अवमानना वे भला कैसे करते ! दो घण्टे बाद वे सुरेश के कमरे की ओर जाते हुए सोच रहे थे कि सुरेश अगर इसी की कुक्षा में जन्म लेता, फिर भी यह नारी सम्भव है इन घड़ियों में---! शिव-शिव !!

नन्दलाल बाबू कमरे में लेटे-लेटे देर तक यही विचार करते रहे कि कौन जाने मेरा क्या भविष्य है। हम जो कुछ करते हैं, भगवान से तो वह छिप नहीं सकता, ऐसी दशा में मेरी क्या गति होगी ? कर्म के क्षेत्र में हमारी जो स्थिति होती है, उसका फल तो हमें भोगना ही पड़ता है।

लेटे-लेटे अभी अधिक देर न हो पायी थी कि उन्होंने सुना, देवीजी खाँस रही हैं। इस तरह खाँसने का अभिप्राय वे जानते थे। एक बार मन में आया, वहीं से कह दें—सोओ-सोओ ! पर फिर सोचने लगे—दूसरा अर्थ तो यह होगा कि मैं अपनी पराजय स्वीकार करता हूँ। उन्होंने यह नहीं सोचा कि पुरुषार्थ की भी एक सीमा होती है। फलतः उन्हें उठना पड़ा।

निकट पहुँचने पर सत्यवती बोली—''अब तो छोटी आ ही रही हैं। तब कहाँ भैया सोयेंगे और कहाँ वह ? सुरेश के कमरे में तीन चारपाइयाँ तो पड़ नहीं सकतीं। तुमने क्या तै किया है ?"

नन्दलाल बाबू चुपचाप खड़े थे। उनकी समझ में न आया कि इस वक्त यह प्रश्न उठाने का अभिप्राय क्या है ? तत्काल अन्य उपाय न देखकर उन्होंने यही उत्तर दिया कि देखा जायगा। साथ ही वे पुनः सुरेश के कमरे की ओर चलने लगे।

इतने में सत्यवती बोली—"सुनो सुनो, मेरी बात तो सुने जाओ।"

नन्दलाल बाबू को कहना पड़ा—"तब मुझे इसी कमरे में सोना होगा। और कुछ ?"

सत्यवती पुलकित होकर बोली—"मैं जानती थी, तुम्हें ऐसा करना ही पड़ेगा।"

कावेरी रमेश के साथ जो नन्दलाल बाबू के घर पहुँची तो सत्यवती ने बड़ी हौंस से उसका स्वागत करते हुए कहा—"आओ छोटी, मैं कल से तुम्हारी ही प्रतीक्षा में थी। वे तो रात को थोड़ी देर के लिये सो भी गये थे, पर मुझे बिल्कुल नींद नहीं आयी। भैया की तबियत अब ठीक है। पर यह बहुत अच्छा हुआ कि तुम चली आयीं।"

कावेरी जेठानी के चरण छू चुकी' तो सत्यवती ने उसके सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद में कह दिया—"दूधों नहाओ, पूतों फलो।"

इसी क्षण रमेश ने भी उसके चरणों की रज मस्तक से लगा ली। सत्यवती बोली—"अरे, तू तो इतना सयाना हो गया रे! सुखी रहो बेटे, पर छोटी, इसको दूध-रबड़ी खूब पिलाया करो। बदन तो थोड़ा भर जाय।"

इतने में नन्दलाल बाबू आ गये। कावेरी और रमेश को आया जान प्रसन्नता से बोले—"अरे कहाँ हो? दुकानें तो अभी खुली न थीं, रवा कैसे मिलता! काजू वाला दाल-सेव ही होटल से ले आया हूँ।

तब तक रमेश झुककर उनके पैर छूने लगा था। नन्दलाल बाबू ने उसके सिर पर हाथ रखते हुए कह दिया—"भगवान करे युग-युग जियो, हमारे वंश का नाम उज्ज्वल करो।...गाड़ी में जगह काफी मिल गयी थी?"

रमेश ने सिर उठाकर उत्तर दिया—"टूंडला तक भीड़ ज्यादा रही। फिर अम्मा को लेटने भर की जगह मिल गयी। मैं तो बैठे हुए भी थोड़ा-बहुत सो लेता हूँ!"

"रामू, सच पूछो तो यह बड़प्पन का ही लक्षण है।" नन्दलाल बाबू बोले—"शास्त्र में लिखा है कि कठिनाइयों और प्रतिकूल परिस्थितियों के

साथ संघर्ष करने वाला आदमी अन्त में सफल होकर मानता है। एक-एक क्षण, एक-एक इंच पर उसे युद्ध करते बीतता है।"

सत्यवती ने दाल-सेव का लिफ़ाफ़ा स्वामी के हाथ ले लिया था। कावेरी सुरेश की चारपायी के पास खड़ी आँसू पोंछ रही थी। नन्दलाल बाबू उसी द्वार की चौखट पर आकर कहने लगे—"छोड़ो, तुम घबरा ही गयीं। वैसे भैया अब बहुत कुछ ठीक हो चला है। लेकिन आ गयीं; यह भी अच्छा ही हुआ। क्योंकि कुछ हो, मन नहीं मानता।" रमेश बोला—"दादा, बाबू भी यही कह रहे थे। पर अम्मा ने तो खाना भी छोड़ दिया था। लेकिन यहाँ आकर भैया को जो देखा, तो सारी चिन्ता उड़न छू हो गयी! असल में यह विषय ही ऐसा कोमल है कि इसके लिये किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। सच पूछो तो दादा मैं स्वयं भी बड़ी चिन्ता में पड़ गया था। इसलिये एक तरह से यह अच्छा ही हुआ कि....।"

सत्यवती के स्वभाव का स्मरण करते हुए नन्दलाल बाबू बोले—"हाँ, यह तो तुम ठीक कहते हो।" फिर मन ही मन सोचने लगे—'रामू अब बहुत खुल कर बात करने लगा है। सुरेश की-सी गम्भीरता इसमें नहीं है।....चलूँ, पहले अँगीठी सुलगा लूं।'

इतने में सत्यवती आ पहुँचीं। बोलीं—"छोटी, मैं अँगीठी सुलगा आयी हूँ। थोड़ी देर में ही वह आग पकड़ लेगी। दूध आ गया है। तुम्हारी बनायी चाय की ये अकसर तारीफ़ करते रहते हैं। और मुझे तो तुम जानती ही हो, इनका कहना है कि चीनी डालने का अन्दाज अब तक नहीं आया!"

कावेरी उठ बैठी। रसोई घर में पहुँचने पर सत्यवती ने बतलाया "इस डब्बे में चीनी, इसमें बोर्न विटा, इसमें कॉफी और हमदर्द दवाखाने का बना चन्दन का तेल है।"

कथन के साथ वह नन्दलाल बाबू के पास आकर धीरे बोलीं—"मेरा जो आज कचौरी खाने का मन है, तुम्हारे लिये रोटी ही बन जायगी, क्यों?"

नन्दलाल बाबू ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—"रोटी तो मैं खा

लूंगा, लेकिन साथ मेरे लिए पालक का बनवाना। आज से दवाई खाना शुरू कर दूंगा। चावल भी मुझे माफिक नहीं पड़ेगा। अच्छा हो, उसके बदले दलिया बन जाय।" कथन के साथ वे अपने कमरे की ओर आ पहुँचे। सत्यवती ने उत्तर दिया—"बहुत दिन तक तो तुम कहते रहे कि मिठाई खाना मना है। फिर तुमने आलू छोड़ दिया। अब कहते हो, चावल भी नहीं लूंगा। अजीब हाल है तुम्हारा।" कथन के साथ वह बनियान पहने हुए स्वामी का अब तक उभरा-उभरा वक्ष प्रदेश देखकर मुसकराने लगी। इधर-उधर तिरछी चितवन से देखकर उसने नन्दलाल बाबू के कन्धे पर हाथ धरते हुए कह दिया—"छोटी कितने दिन रहेगी, तरकीब से जानने की कोशिश करना। समझे!"

नन्दलाल बाबू को कहना पड़ा—"मगर डॉक्टर साहब कह रहे थे, अब हमें बहुत संयम से रहना पड़ेगा। तब कहीं तबियत ठीक हो पायगी। अब तो इस बरामदे में ही चारपाई पड़ेगी।"

: ६ :

ध्यान से देखा जाय, तो पानी की धार ब्लेड से भी अधिक पैनी होती है।

उस दिन गौरी ने उससे कह दिया था कि मैं किसी का हिस्सा क्यों बटाऊँ? यद्यपि शरत के लिए उस दिन गौरी की इस बात का कोई महत्व नहीं था; किन्तु फिर न जाने क्यों वह सोचता रहा—"उसने क्या सोच-कर ऐसी बात कह डाली? क्या वह मुझे अपनी आत्मा के समस्त आक-र्षणों और सम्मोहनों के पावन भुज-बन्धनों से सदा विलग रखने की कामना करती है? यदि ऐसा नहीं है, तो वह मेरा भाग बँटाने में उत्साह क्यों नहीं प्रकट करती! नहीं, अब तो मुझे उससे कभी बोलना भी न चाहिये। पास-पड़ोस की बात न होती, तब तो वह उसके द्वार के सामने से भी न निकलता। माना कि बात बहुत साधारण है, किन्तु फिर उसने उसके

मानव-लोक में एक झंझावात-सा क्यों उपस्थित कर दिया है ? यों उसके लिये सामान्य रूप से उस बात का कोई विशेष महत्व नहीं, किन्तु फिर बारम्बार वह अपने आप से यह क्यों पूछने लगता है कि उसने क्या सोच-समझ कर ऐसी बात कह डाली ।

फिर किंचित् आगे बढ़ जाने पर सहज ही यह प्रश्न भी उठ खड़ा होता है कि ऐसी बात कह देने पर वह गम्भीर क्यों नहीं हो गयी ? मुसकरायी क्यों ?......अवश्य ही उसने मेरा परिहास किया है, जो एक प्रकार से मेरा अपमान है । हालाँकि यह बात भी कम विचारणीय नहीं कि परिहास किस सीमा तक अपमान माना जा सकता है !

भावुकता में पड़कर मनुष्य कभी-कभी कैसे विक्षिप्त हो जाता है, बरत उसी भाँति सोचने लगता—'अरे, मैं उसकी ओर कभी दृष्टि तो डालूँगा नहीं । उसने अपने को समझा क्या है ?'

फिर उसके ध्यान में आया—बात कह कर वह शायद इसलिये मुसकरायी थी कि यह तो मेरी एक चुटकी भर है, मीठी-सी । अभिप्राय यह कि बुरा न मानना मेरे प्राण । समझे कि नहीं ?

फिर थोड़ी देर बाद उसे स्मरण आया—'मुसकराने के बाद फिर कौन जाने क्या सोचकर अंगूर खाने लगी थी ।'

यह एक ऐसी बात थी जिसका अर्थ लगाने में उसे एक प्रकार की उलझन हो उठी थी । एकाएक उसके मन में आया था कि वह इस ग्रन्थि को खोलकर ही मानेगा; किन्तु फिर उसका स्वाभिमान बारम्बार सजग होकर विस्फूर्जन करने लगता था—कुछ भी हो, अब मैं चाची के घर कभी जाऊँगा ही नहीं ।

दूसरा कारण था रमेश का यह कथन कि अगर मैं ऐसा जानता कि हमारे इस विवाद में तुम गौरी का पक्ष लोगे, तो मैं अपने अंगूर तुम्हें कदाचित् न देता ।

'चलो, अब जाकर कहीं बात-का उड़ता हुआ मर्म पकड़ में आया । मान न मान मैं तेरा मेहमान । मुझे क्या पड़ी है, जो मैं ऐसी दुष्ट लड़की का पक्ष लूँगा ।'

"......मगर पक्ष लेने की इसमें बात क्या है जनाब ! मैंने तो केवल

सभ्यता और सौजन्य की बात कही थी। और ऐसी बात तो मैं चाची ही नहीं चाचाजी के सामने भी, एक नहीं, दस बार कह सकता हूं। आवश्यकता पड़े तो बिना किसी संकोच के डैडी और मम्मी के सामने भी।'

'....खैर, कोई बात नहीं। बहुत अवसर मिलेगा। मैं प्रमाणित करके दिखा दूंगा कि पक्ष लेने वाले कोई और होते हैं। सच पूछो तो पक्ष मैं किसी का कभी ले ही नहीं सकता। न्यायशील व्यक्ति का कोई पक्ष अलग से नहीं होता। जैसे सत्य सदा निर्लिप्त होता है, वैसे ही न्याय का कोई नाता नहीं होता।'

इस प्रकार गौरी के यहाँ से लौटकर शरत अपने आप में खोया बना रहा।

दूसरे दिन शरत ने कहीं माधुरी के साथ गौरी को देख लिया। दोनों बस पर एक साथ बैठी हुई थीं। शरत कुछ पीछे था। जब आर्यनगर आया और शरत पहले उतरने लगा तो गौरी तो कुछ न बोली, पर माधुरी ने पूछ दिया—"श्रीमान ने हमारी बात दीदी से कही थी?"

शरत ने सीढ़ी से उतरते हुए उसकी ओर देखा और जब माधुरी निकट आगई तो बतला दिया—"कहा तो था। पर जब कोई सुनने वाला हो।"

उसने जान बूझकर गौरी की ओर दृष्टि नहीं डाली। फिर जब तीनों नीचे आ गये, तो माधुरी ने पूछा—"मेरे घर नहीं चलोगे शरत?"

शरत ने गौरी की ओर उन्मुख होकर धीरे से कह दिया—"चलना तो चाहता था, मगर....!"

माधुरी अब अपनी गली की ओर मुड़ गयी, तो गौरी शरत के पास आकर बोली—"क्यों, गये नहीं अपनी लैला के साथ?"

शरत ने मुसकराते हुए कह दिया—"जाओ, मैं तुमसे नहीं बोलता।"

"अरे तो यहाँ मनाता कौन है मजनूं को!"

चिंतित सी गौरी ने धीरे से उत्तर दिया—"हम लोग जो सोच रहे हैं, उसका भविष्य किसने देखा है? अच्छा हो, मैं तुम से.... !"

शरत ने उत्तर दिया—"देखो गौरी, जमीन पर जहाँ कंकड़ बिछे हों, वहाँ सोना पड़े, या पलंग पर; साग-भाजी से उदर की हाँडी भर लेनी

पड़े या स्वादिष्ट भोजन मिल जाय; फटे-फटे वस्त्र पहनने पड़ें या दिव्य रेशमी तथा ऊलन, महापुरुष लोग पहले सफलता देखते हैं जीवन की, दुःख-सुख नहीं। तुम समझती क्या हो मुझ को मेरी पारो ? देवदास मरेगा भी तो पारो के मकान के पास आकर।"

गौरी की आँखें शरत की पुतलियों से खेलने लगीं। फिर यकायक उनमें पानी की चमक उत्पन्न हो गयी।

गजाधर हेमन्त बाबू के यहाँ आँगन की ओर जा रहा था। शरत ने सोचा—'कोई काम बताया होगा डैडी ने।'

फिर द्वार-मंच पर आकार कोई गाड़ी खड़ी हो गई और शरत के मन में आया—'उहँ, लोग तो आते ही रहते हैं। डैडी का भी स्वभाव पड़ गया है; किया क्या जाय ? न्यायाधीश को कभी घर पर मिलना चाहिए किसी से ? चाहे जो हो, मैं जब न्यायाधीश बनूंगा, तब किसी को भी घर पर मिलने की अनुमति नहीं दूंगा। यह लिखकर द्वार पर तखती टँगा देनी होगी कि 'किसी मामले के सम्बन्ध में मिलना व्यर्थ है।' न्यायाधीश सो न्यायाधीश; जैसे कहा जाय, हिमालय की चोटी—एवरिस्ट। उससे मिल पाना कोई साधारण बात है ! जो मन में आये सो कहने और करने में जो सर्वथा निर्द्वन्द्व हो, उसकी शान और गरिमा की बात ही और होती है। मैं न्यायाधीश बनूंगा तो इन सभी बातों का ध्यान रखूंगा। क्या मजाल कि कोई मेरी छाँह भी छू सके। सच पूछो तो, इस विषय में, मित्रों को भी मैं, शत्रु की दृष्टि से देखूंगा।

—सब बचकानी बाते हैं। मैं यह क्या सोच रहा हूँ। न्यायाधीश के सामने कभी कोई शत्रु नहीं होता। अजातशत्रु उसकी संज्ञा होती है। सबका मित्र होता है वह। फिर वह किसी को मिलने से मना क्यों करे ? और यह तो बात ही अलग हुई कि कहने को चाहे जो कहो, करूँगा मैं अपने मन की।

तब तो डैडी ठीक रास्ते अर्थात् नितान्त उचित मार्ग पर हैं—हम जिसे गांधी मार्ग भी कह सकते हैं।

अब रात के नौ बज रहे थे और उसे भूख सताने लगी थी। गजाधर आकर बोला—"कुमार साहब, माँजी आपको बुला रही हैं।"

शरत ने अन्यमनस्क की भाँति उत्तर दिया—"पूछ आओ, क्या काम है ?"

पर गजाधर जब जाने लगा, तो उसने कह दिया—"मगर ठहरो गज्जू दादा ! बहुत दौड़कर मत चलो ।"

लज्जित गजाधर निकट आकर बोला—"कुमार साहब, आप ऐसा कहेंगे, तो हम कहाँ रहेंगे ?"

शरत जैसे स्वप्न-भंग की स्थिति में जा पहुँचा हो । मुसकराते हुए बोल उठा—"अरे तो तुम मुझे समझे नहीं, मेरा अभिप्राय वैसा कुछ न था । मैं तो सिर्फ यह जानना चाहता था कि डैडी क्या कर रहे हैं ? मेरा मतलब जल्दी समझ लिया करो दद्दा !"

साथ में उसने मन में कह लिया—हालाँकि कभी-कभी मैं चाहता तो हूं स्याही, मगर माँगता हूँ कलम ।

गजाधर ने सहजभाव से उत्तर दिया—"उनको अभी फुरसत कहाँ है ! माँ जी मेरे ख्याल से खाने के लिए बुला रही होंगी । और साहब ने तो अभी जो बाबू लोग आये हैं उनके लिये चाय बनवाने का ऑर्डर दिया है । रसोई वाली माताजी पता नहीं क्यों आज सिर के केश छित-राये हुए आयी हैं । उन्होंने स्टोव पर चाय का पानी चढ़ा दिया है । कौन जाने बाबू लोगों के साथ साहब भी चाय पीने लगें । फिर पता नहीं कब तक बैठक जमी रहे और बातचीत चलती रहे । साढ़े नौ होने को आया, दस बजें, ग्यारह बजें । कोई हद तो है नहीं कि इतने बज गये, अब उठना ही होगा ।"

शरत ने सोचा—क्यों न एक बार डैडी से पूछ लिया जाय कि खाना आप कितनी देर में खायेंगे । परन्तु वहाँ जो लोग उपस्थित होंगे, उनके सामने मैं उनसे यह बात कैसे पूछ पाऊंगा ? फिर उसका ध्यान जो फाटक की ओर गया, तो वह अपने आप से पूछने लगा, 'द्वार पर वे चपरासी सोने माली के कान में न जाने क्या कह रहा है ।'

तब तक उसने देखा, ममी उनकी बैठक से बाहर निकल रही हैं । इसी समय एक बार उसे गौरी का ध्यान हो आया कि जब मैंने देवदास

के मरण वाली बात कही तो उसकी आँखें भर आयी थीं ! हूँ, तब तो जान पड़ता है, उसे मुझसे अधिक चिन्ता है।

. अब उसको यह समझने में देर न लगी कि ममी ने खाने के सम्बन्ध में उनसे अवश्य बात कर ली होगी। रसोई वाली माताजी नौ बजते ही चल देती हैं और डैडी को ठण्डा खाना खाना पड़ता है। क्या जीवन है ! जो व्यक्ति नगर के सारे जन समुदाय की जीवन रक्षा और न्याय का प्रमुख अधिकारी हो, वह समय पर खाना भी न खा सके। उधर विधायक लोग विधान-सभा में मानो नशा करके बैठते हैं। ऐसा न होता, तो वे प्रशासन पर यह लांछन क्यों लगाने लगते कि सरकार जनता की भावना का अनादर करती है।

'डैडी वास्तव में बहुत सीधे हैं। मैं जब न्यायधीश बनूंगा, तब अपने साथ अर्थात् अपने जीवन के साथ, न्याय सबसे पहले करूंगा। मैं चाहे न्यायाधीश बनूं, चाहे जिलाधीश; यह भी हो सकता है मुख्य मन्त्री बनूं। बहरहाल जो भी बनूं, अपनी सुविधा सबसे पहले देखूंगा अर्थात् अन्य किसी काम में भले ही देर हो जाये, पर खाना तो समय से ही खा लिया करूंगा।'

इन्हीं विचारों के साथ शरत अपनी माँ के पास जा खड़ा हुआ, जो उस समय डायनिंग रूम में खड़ी खाना लगवाने की व्यवस्था कर रही थीं।

शरत को देखकर वह बोलीं—"गौरी अभी आयी थी। उसकी माँ रमेश के साथ दिल्ली चली गयी। वासुदेव बाबू अब खाना यहीं खायेंगे, जब तक जीजी नहीं लौटेंगी। पर हो सकता है, वे उनके साथ खाना खायें। तू तब तक क्यों नहीं बैठ जाता ? अभी थोड़ी देर में रसोईवाली देवी जी भी चली जायेंगी। और मेरा है आज उपवास का दिन। वैसे मैं उनको बता तो आयी हूँ कि आज रविवार है। पर देखो कब बैठक समाप्त होती है।"

शरत सोचने लगा—'गौरी आयी और चली गयी। कहाँ से आयी और किधर से निकल गई मुझे पता ही न चला। मैं जरा उसे देख ही लेता तो उसका क्या बिगड़ जाता ? मैं उससे कुछ छीन तो लेता नहीं !'

अब बराण्डे में रखे हुए फोन की घण्टी बज रही थी और कोई

रिसीवर उठा नहीं रहा था। गजाधर डायनिंग रूम की लम्बी टेबिल साफ कर रहा था और सोने माली सलाद तैयार कर रहा था। हेमन्त बाबू एक पत्र का प्रारूप तैयार करने में व्यस्त थे। शरत तुरन्त भोजन-शाला से भाग कर फोन पर जा पहुँचा और रिसीवर कान में लगाकर बोला—"यास्स, शरतकुमार द सन आव हिज़ मैजिस्टी स्पीकिंग। ···· बट ही इज़ टू बिज़ी नाऊ। प्लीज़ देन रिंगअप एनीटाइम टुमारो मॉर्निंग। ····दैट्स आलराइट, दैट्स आलराइट।"

फोन पर शरत का उत्तर सुनकर हेमन्त बाबू पहले चश्मा उतारकर कुछ मुसकराये, फिर ठाकुर साहब की ओर देखते हुए बोले—"ठाकुर साहब सुनी आपने, चिरंजीव की बातचीत ?"

शरत सोच रहा था, 'जब देखूँगा कि चाचाजी गौरी का विवाह कहीं करने ही जा रहे हैं, तब मैं ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करूँगा। मैं ममी से स्पष्ट कह दूँगा कि पारो—पारो माने गौरी—मेरी है। मैं उसके बिना रह नहीं सकता, जी नहीं सकता।

'लेकिन वह कम्बख्त इस समय मुझे मिली क्यों नहीं ? देखता हूँ, धीरे-धीरे वह और भी अधिक लाजवन्ती बनती जा रही है !'

ठाकुर दिलदारसिंह का ध्यान दूसरी ओर था। वे स्वप्न देख रहे थे कि साहब मेरे पक्ष में लिख देंगे, तो प्रीतम की जान तो बच जायगी कम-से-कम।

वह कुछ ऐसी घड़ी थी कि उनको शरत तो क्या दीन-दुनिया का बिल्कुल ध्यान न था। अतः जब वे साहब की बात सुनकर हक्के-बक्के रह गये, तो लाज-रक्षा का कोई अन्य उपाय न देख उन्होंने कह दिया—"मेरा ख्याल है, बात करने का ढंग भैया का बहुत उत्तम है।"

"आप जिसे उत्तम मानते हैं मेरी समझ से तो वह बिल्कुल निकृष्ट है।"

हाथ में चश्मा लिये हेमन्त बाबू बहुत गम्भीरता के साथ बोले—"किसी भले आदमी के साथ एक तो मेरे लिए 'पिताजी' के बजाय हिज़ मैजिस्टी शब्द का व्यवहार करना, दूसरे व्यस्तता की ओट लेकर यह कहना कि आपसे बात करने का उन्हें जरा भी अवकाश नहीं है, कहाँ

की सभ्यता है?" पहले शरत सब कुछ चुपचाप सुनता रहा, फिर तुरन्त उठकर बोला—"माफ़ करिए डैडी! मैं सभ्यता की इस परिभाषा से ऊब गया हूँ। आपको मालूम है, आज रविवार है। आपको यह भी मालूम है कि रविवार को हमें कायदे से रसोईवाली देवी को इस वक़्त की छुट्टी दे देनी चाहिए। ममी का आज उपवास का दिन ठहरा। और आप हैं कि छुट्टी के दिन भी वक़्त से खाना नहीं खाते। जबकि दुनिया के सारे पाप भोजन की थाली के नाम पर ही हुआ करते हैं! मैं असल में आपको खाने के लिए ही बुलाने आया था।"

गौरी उस समय अपनी मेज पर रामकृष्ण परमहंस के इस कथन पर विचार कर रही थी कि प्रेम के दो लक्षण हैं: प्रथम है बाह्य जगत को भूल जाना और द्वितीय अपने शरीर तक को भूल जाना।

उसका बायाँ हाथ मस्तक से लगा था और उसका मन कह रहा था कि हम अपने शरीर को भूल सकते हैं?

चपरासी चाय की ट्रे लेकर अन्दर आ पहुँचा, फिर सभी उपस्थित लोग उठकर खड़े हो गये और कई महाशयों ने एक साथ कह दिया—"हम सभी लोग बैठे हैं। पहले आप खाना खा लें। कृपया तभी बैठक में आयें।"

असमंजस में पड़कर हेमन्त बाबू हँसने लगे। शिष्टाचार के भाव से उन्होंने इतना भर कह दिया—"ऐसी तो कोई जल्दी थी नहीं मुझे।"

पर फिर सबने एकमत होकर यही कहा—"नहीं साहब, पहले आप खाना खाइए। कुमार बाबू आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं।"

अब हेमन्त बाबू भोजनशाला की ओर जा रहे थे। और शरत सोच रहा था, "रमेश दिल्ली चला गया, चाची उसके साथ गयी हैं। चाचाजी नित्य यहाँ खाना खायेंगे। शेष रही गौरी! अच्छी बात है, आने दो उसको!"

तब तक हेमन्त बाबू के मुँह से निकल गया—"आक् छीं।"

छींक के अर्थ की कल्पना में पीछे चलता हुआ शरत मन-ही-मन मुसकराने लगा। मतलब यह है कि मुझे उससे किसी तरह की बात करनी नहीं चाहिए। धीरे-धीरे डैडी को इस बात का पता चल ही

जायगा कि दोनों के सम्बन्ध कितने घनिष्ट हैं। लेकिन क्या इस विषय में मम्मी से कुछ कहा नहीं जा सकता ?

गजाधर रास्ते से हटकर अलग हो गया था। हेमन्त बाबू भोजन-शाला में प्रवेश कर ही रहे थे कि नमिता बोली—"कौन जाने जीजी बासू बाबू और गौरी के लिए काफी पूरियाँ बनाकर रख गयी हों, या हो सकता है, जल्दी में यों ही चली गयी हों।" फिर दायें घूमकर बोली—"गज्जू, जरा देखना तो। हो सकता है, बासू बाबू—स्टेशन से लौट आये हों।" उन्होंने फिर जज साहब को लक्ष्य करके कह दिया—"खाने पर गौरी को भी साथ बिठा लेना।" जान पड़ता है, अब भी उन का आशय परिपूर्ण हो नहीं पाया था। अतः उन्होंने गज्जू की ओर देखते-देखते इतना और कह दिया—"और देखो, घर सूना न रहे, इस लिये सोने से कह देना, तब तक वहीं बैठे।"

ठाकुर साहब सोचते थे, 'जिस ढंग से अभियोग की पैरवी चल रही है, सम्भव है, प्रीतम सर्वथा निर्दोष प्रमाणित हो। मुख्य अपराधी प्रीतम के रक्षापक्ष की गवाहियों में उन्होंने जी खोलकर व्यय किया था। अपराधी के विरोध में सरकारी पक्ष के गवाहों को तोड़ने में भी उन्होंने कोई बात उठा न रक्खी थी। वे समझते थे कि रुपये के बल पर हम प्रीतम को साफ छुड़वा देंगे।'

कालका नाम के जिस व्यक्ति की हत्या की गई थी, वह ठाकुर साहब का शत्रु था। यों तो वह जाति का बनियाँ था, लेकिन गाँव की दलबन्दी में उसका प्रमुख भाग रहता था।

इस सम्बन्ध में सबसे अधिक दुःखद प्रसंग यह था कि अभियोग-सम्बन्धी अपराधों में पूर्ण रूप से सम्मिलित रहने पर भी चातुर्य और तिकड़म से वह साफ बच जाया करता था। क्षेत्रीय जनता उसके आतंक से सदा भयभीत और कम्पित रहा करती थी। शान्ति और व्यवस्था स्थिर रखने की दृष्टि से उसकी हत्या गाँव की जनता के लिए एक

अपूर्व संयोग बन गयी थी। किन्तु हत्या के बाद उसका शव तालाब के अन्दर गड्ढा खोदकर छिपा दिया गया था और उसके ऊपर कंकड़-पत्थर डाल दिये गये थे। कालान्तर में जब उस स्थान के आस-पास दुर्गन्ध बढ़ने लगी, तब पुलिस को सन्देह हो गया।

इस अभियोग में सबसे अधिक चिन्त्य प्रसंग यह था कि प्रमाण-पक्ष के साक्षियों में से एक ने कहीं यह भी बतला दिया था कि रात को जब वह द्वार पर आकर उस नाली के पास लघुशंका करने बैठा, जो उसी तालाब की ओर जाती थी, तभी सहसा उसने देखा कि पश्चिम की ओर कई आदमी जमा हैं। नवम्बर का महीना था और जाड़ा पड़ने लगा था। उस समय रात के ग्यारह बज रहे थे। अपनी समझ से ठाकुर साहब ने इस साक्षी को तोड़ने की बहुत चेष्टा की थी; किन्तु एक बार वह जो वक्तव्य दे चुका था, उससे इनकार करना उसने किसी प्रकार स्वीकार नहीं किया था।

ठाकुर साहब की मानसिक स्थिति कभी-कभी बड़ी गम्भीर हो उठती थी। वे जब कभी ठण्डी साँस भरते तब उनकी आँखें यकायक बन्द हो जातीं। भान होने लगता, जैसे वे किसी ऐसी पीड़ा का अनुभव कर रहे हों, जिसे भुलाना उनके लिए दुष्कर हो।

हेमन्त बाबू ठाकुर साहब के बाल-सखा थे। अपराधी को दण्ड देने के विषय में यद्यपि सिद्धान्ततः वे बड़े कठोर और निर्मम थे; किन्तु ठाकुर साहब ने उनको यह विश्वास दिला दिया था कि प्रीतम ने हत्या नहीं की। वह ऐसा आदमी ही नहीं है, जो ऐसा दुष्कृत्य कर सके।

हेमन्त बाबू का कहना था कि प्रमाण पक्ष अगर प्रीतम के विरोध में जाता है, तो उसका बचना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त जब यह प्रमाणित हो चुका है कि जो लोग उस रात को वहाँ खड़े दिखाई पड़े थे, उनमें प्रीतम भी था; क्योंकि साक्षी ने उसकी बोली पहचान ली थी, तब अधिक सम्भावना यही है कि वह हत्या के दण्ड से (किसी प्रकार) मुक्त न हो सके।

हेमन्त बाबू ने ठाकुर साहब को स्पष्ट रूप से यह भी बतला दिया था कि आपको मुझसे किसी प्रकार के पक्षपात की आशा करनी ही न

चाहिए। उत्तरदायित्व के नाते मैं वास्तव में न्याय का ही अनुचर हूँ। न्याय की ही कमाई मैं खाता हूँ। इसलिए मुझ पर अनुचित प्रभाव डालने की चेष्टा तो दूर रही, कामना भी आपको नहीं करनी चाहिए।

अभियोग लगभग साल भर तक चलता रहा था। ठाकुर दिलदार सिंह जब कभी उनके यहाँ आते, वार्तालाप करने का अवसर पाने की प्रतीक्षा में, धैर्य के साथ घंटों बैठे रहते। समय-समय पर वे चाय पीते और जलपान भी करते। इसके प्रतिदान में एक-आध बार तो उन्होंने मिठाइयाँ और फल भी हेमन्त बाबू के यहाँ भेंट करने की चेष्टा की; किन्तु हेमन्त बाबू ने वह सामग्री ज्यों की त्यों लौटाते हुए, साथ में यह भी कह दिया कि यदि आप मुझ पर अनुचित प्रभाव डालने की चेष्टा करेंगे, तो मैं आपसे मिलना भी छोड़ दूंगा। मैं चाहता तो नहीं कि सुहृद होने के नाते मैं आपको कोई आघात पहुँचाऊँ किन्तु अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिये मुझे आपके साथ इस प्रकार का व्यवहार करने को विवश हो जाना पड़े तो आश्चर्य नहीं।

उस दिन के बाद ठाकुर साहब ने उनके यहाँ आना-जाना त्याग दिया था। पर अन्त में जब प्रीतम को प्राण-दण्ड का आदेश मिल गया, तब न चाहते हुए भी विवश होकर उनको हेमन्त बाबू के यहाँ आना पड़ा।

जिस समय ठाकुर साहब ने उनके द्वार-मंच में प्रवेश किया, उस समय दिन के पाँच बज रहे थे। न्यायालय से लौटे हुए अभी उन्हें पूरा एक घण्टा भी न हो पाया था कि बंगले के अन्दर आते-आते, हेमन्त बाबू को सामने खड़ा देखकर ठाकुर साहब एकदम से फूट पड़े और तीव्र स्वर से बोले—"गजब हो गया साहब, गजब हो गया।"

हेमन्त बाबू ने इस अवस्था में उनको कभी नहीं देखा था। उनके सिर के केश बिखरे हुए थे। उनके होंठ काँप रहे थे और ऐसा जान पड़ता था कि वे अपने होश में नहीं हैं। इतना तो निश्चित है कि वे सहज सामान्य अवस्था में नहीं हैं।

हेमन्त बाबू जल्दी में तै नहीं कर पा रहे थे कि उनके साथ क्या व्यवहार किया जाय। प्रत्येक दशा में शान्त रहना उनका सहज स्वाभाविक गुण था। संकट के समय भी वे धैर्य न खोते थे। उनकी मान्यता

थी कि उदार बनने की अपेक्षा अडिग न्यायशील बना रहना ही श्रेयस्कर है।

वे बोले, "सावधानी के साथ बात कीजिए और धीरज रखिए। फाँसी का दण्ड प्रीतम को दिया गया है, आपको नहीं। और यह बात तो मैं आपको पहले भी बतला चुका था कि मैं इस विषय में कुछ न कर सकूँगा। अन्त में जो होना था, सो हो गया। अब आपको यहाँ आकर इस तरह चिल्लाना और शोर मचाना शोभा नहीं देता। मित्रता का यह अर्थ तो नहीं होता कि आप यहाँ असभ्यता से पेश आयें और बिना सोचे-समझे बकना शुरू कर दें।"

हेमन्त बाबू का इतना कहना था कि ठाकुर साहब की आँखें भर आईं, आँसुओं की बूँदें पहले नाक के पास थोड़ी रुकीं और फिर गिरने लगीं टप-टप !

अब तक ये बातें बैठक के भीतर खड़े-ही-खड़े हो रही थीं। शोर सुनकर नमिता और शरत के अतिरिक्त रसोईवाली देवी, सोने माली और गजाधर ही नहीं, चपरासी भी उनके पास आ पहुँचा।

फिर जब हेमन्त बाबू उनको भीतर ले आये तो गजाधर की ओर उन्मुख होकर उन्होंने कहा—"जाओ, दो-तीन गिलास नीबू का शर्बत बना ले आओ।"

सभी लोग तितर-बितर हो गये।

ठाकुर साहब अब कुछ बोल नहीं रहे थे। उन्होंने अपने आँसू भी पोंछ डाले थे। पर दस मिनट बाद जब नीबू के शर्बत का गिलास उनके आगे रख दिया गया, तब उन्होंने कहा—"हेमन्त बाबू, अब मैं शर्बत नहीं पियूँगा। हाँ, एक बात जरूर है कि आप चाहें, तो मुझे विष पिला सकते हैं।"

हेमन्त बाबू को कभी क्रोध नहीं आता था। लेकिन उस समय वह एक दम से फूट पड़े—"बदतमीज कहीं के। निकल जाओ यहाँ से ! गेट आउट, आई से गेट आउट !"

ठाकुर साहब कुर्सी से उठकर खड़े हो गये और एकदम से काँपते और थरथराते हुए स्वर में बोले—"मैं चला तो जाऊँगा ही और यह

भी ठीक है कि फिर कभी नहीं आऊँगा। किन्तु अगर आप मेरी एक बात सुन लेते, तो आपकी क्या हानि हो जाती और मैं आपसे क्या छीन लेता ?"

ठाकुर साहब की इस बात पर हेमन्त बाबू ने धीरे से उत्तर दिया —"अच्छा, मैं आपकी बात सुनूँगा; पहले आप शर्बत तो पी लीजिए।"

ठाकुर साहब ने विवश होकर शर्बत पीना स्वीकार कर लिया। गिलास खाली करके टेबिल पर रख कर रूमाल से मुँह पोंछते हुए मन्द स्वर में उन्होंने कहा—"अभी आपने कहा था कि जैसा मैंने कहा था, वैसा ही हुआ। लेकिन मैं आपको बतलाना चाहता हूँ, आप मानें चाहे न मानें, बात नयी ही नहीं, गम्भीर भी है।"

हेमन्त बाबू को स्मरण आ गया—'अभी इन्होंने कहा था, आप चाहें तो जहर पिला सकते हैं। इस व्यक्ति को इतना भी शऊर नहीं कि कहाँ कैसी बात करनी चाहिए।'

"देखिए ठाकुर साहब," हेमन्त बाबू बोले—"यह मेरी बैठक है, रंग-मंच नहीं।"

पहले तो ठाकुर साहब हेमन्त बाबू की ओर देखते रह गये। फिर यकायक साहस के साथ उन्होंने कह दिया—"हेमन्त बाबू, यहीं आप गलती पर हैं। एक न्यायधीश होने के नाते आप सदा एक-न-एक नाटक खेलते रहते हैं। आज भी आपने एक नाटक ही खेला है। जिन शब्दों के साथ आपने मुझे शर्बत पीने के लिए मजबूर किया, वे बिल्कुल नाटकीय थे।"

ठाकुर साहब का यह उत्तर सुनकर हेमन्त बाबू ने पुनः कुछ निर्भय होकर कहा—"ठाकुर साहब आप मूल बात पर ही रहिए। मेरे पास इतना फालतू समय नहीं है कि मैं आपसे बहस करूँ। बोलिए—आप क्या कहना चाहते हैं ?"

ठाकुर साहब बोले—"इस अभियोग को पूरी शक्ति के साथ लड़ने में मैंने कोई प्रयत्न बाकी नहीं रखा, आपको मालूम ही है !"

"अच्छा हाँ, मालूम है। फिर ?"

"फिर भी मुझे कहना है कि प्रीतम को फाँसी हो जाने के बाद

उसकी बीबी और बच्चों के लिए दस बीघे जमीन देने का भी मैं निश्चय कर चुका हूं।"

"हो सकता है आपका कहना ठीक हो। मगर आपकी इस उदारता का इस मामले के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। आप चाहे जिसको, चाहे जो दे डालें, मेरे लिए इसका कोई महत्व नहीं। और कुछ?"

ठाकुर साहब बोले—"तो अब भी मुझे यही कहना है कि इस मामले में प्रीतम के साथ न्याय नहीं हुआ।"

"देखिए ठाकुर साहब, दुनिया में ऐसे लोगों की कमी नहीं, जो इस तरह के बहुतेरे गम्भीर विषयों में होने वाले न्याय पर विश्वास नहीं करते; लेकिन विश्वास तो लोग ईश्वर की सत्ता पर भी नहीं करते। मैं पूछता हूं आप कोई नयी बात ले आये हैं अपने साथ? आखिर आप कहना क्या चाहते हैं?"

ठाकुर साहब ने अन्त में कह दिया—"नयी बात यह है कि वास्तव में अपराधी प्रीतम नहीं, मैं हूं! यह हत्या मैंने की थी! प्रीतम मेरा आसामी है। वह मेरे साथ में जरूर था, जब यह हत्या की गई थी। लेकिन इस हत्या में उसका हाथ बिल्कुल नहीं था। वह तो केवल मेरे साथ चला आया था।"

ठाकुर साहब की यह बात सुनकर हेमन्त बाबू स्तब्ध हो उठे।

उन्हें चुप देख कर ठाकुर साहब बोले—"अब मैं आपसे पूछता हूं, एक निरपराध व्यक्ति को फांसी का दण्ड दिलाने में अगर आपका हाथ नहीं, आपके अनुभव ज्ञान, विवेक और न्याय का हाथ नहीं, तो फिर किसका है?"

ठाकुर साहब का उत्तर सुनकर हेमन्त बाबू के मुंह से निकल गया—"हो सकता है, आपकी बात सही हो। लेकिन अब हो क्या सकता है?"

इतने में ठाकुर साहब उठकर खड़े हो गये और बोले—"यह तो मैं भी जानता हूं कि आपका न्याय कुछ नहीं कर सकता।"

कथन के साथ फिर वे एक निःश्वास लेते हुए बोले—"अच्छा, अब मैं चलता हूं। नमस्कार!"

कर्तव्य के प्रति एक विमूढ़ भावना लये हुए हेमन्त बाबू ठाकुर साहब के पीछे-पीछे द्वार-मंच तक चले आये।

अन्त में जब ठाकुर साहब सीढ़ियों से उतरने लगे, तब उन्होंने कह दिया—"अभी आप जा नहीं सकते। चलिए, बैठिए मेरे यहाँ। आपको पता नहीं, मुझे रात भर नींद नहीं आयेगी। अब तक जो मैं नहीं कर सका, आगे वही सब करने की चेष्टा करूँगा। कह नहीं सकता, क्या परिणाम होगा। लेकिन इतना आप जान लीजिए कि मैं न्याय करने का केवल प्रयत्न करता हूँ। फल के विषय में मैं भी भगवान का ही सहारा लेता हूँ।"

"भगवान का सहारा तो मुझको भी बहुत था। क्या मैं यह नहीं सोचता था कि जब प्रीतम अपराधी नहीं है तो उसको दण्ड भी नहीं मिलेगा? लेकिन न्याय का नाटक खेलने वाले आप और आपके साथी उस सत्य का उद्घाटन कहाँ कर सके, जिसकी हम सब आशा करते थे।"

"आशा तो सभी लोग अपने-अपने पक्ष की करते हैं। मैं कभी आप से ऐसी आशा नहीं करता था कि मुख्य अपराधी होने पर भी आप अपने किसी दीन-हीन सहायक को फँसाकर एक निर्लज्ज की भाँति यहाँ अपना दुखड़ा रोने बैठेंगे। मैं पूछता हूँ, अदालत में आपने यही बात क्यों नहीं कही?"

"जज साहब, आपको पता होना चाहिए कि जिस आदमी की हत्या की गयी है, वह इसी योग्य था। उसने हमारी लाज की हत्या की थी।"

"क्या मतलब? आप की लाज के साथ उसका क्या सम्बन्ध था?"

ठाकुर साहब विचार में पड़ गये।

हेमन्त बाबू ने गरजते हुए पूछा—"बतलाइए न!"

ठाकुर साहब कुछ न कहकर रो पड़े। रुद्ध कण्ठ से उन्होंने केवल इतना कहा—"अब यह न पूछिए जज साहब! भगवान न करे किसी को यह दिन देखना पड़े।"

थोड़ी देर बाद भोजन की टेबिल पर केवल तीन व्यक्ति बैठे थे—

हेमन्त बाबू, शरत और नमिता। विचारों के इतने बवण्डर हेमन्त बाबू के मानस-लोक में उठ रहे थे कि उनके चिन्तन का संतुलन कभी-कभी बहक जाता था। पहला कौर वे उठा ही रहे थे कि एकाएक वह उनके हाथ से छूट पड़ा। उनके कल्पना-लोक में बिजली-सी कौंध उठी। सिर उठा कर उन्होंने पुकारा—"गजाधर !"

उसके पास आते ही उन्होंने कह दिया—"जाओ, बैठक से ठाकुर साहब को बुला लाओ।"

ठाकुर साहब के अन्दर आते ही केवल गजाधर ही नहीं, सोने माली, शरत और नमिता सबके सब सोचने लगे—यही वह आदमी है, जिस को आज अभी थोड़ी देर पहले साहब ने कुत्ते की भाँति दुतकारते हुए कहा था, "गेट आउट !"

हेमन्त बाबू को चुपचाप खाना खाने की आदत न थी। वे सदा सपरिवार भोजन पर बैठते थे। साथ में एक-न-एक अतिथि अवश्य रहता था। पर उस समय कोई बोल नहीं रहा था। हेमन्त बाबू रह-रहकर सोचते जाते थे।

'ठाकुर साहब ने यह हत्या अवश्य ही किसी उद्देश्य से की होगी। यह आवश्यक नहीं कि उनका उद्देश्य बुरा ही हो। ऐसा भी तो हो सकता है कि कोई हत्यारा वास्तव में पापी न हो। बहुतेरे अपराध ऐसे जघन्य होते हैं जो पापों की एक परम्परा स्थापित कर जाते हैं। इस प्रकार एक पाप अनेक पापों को जन्म देने का मूलाधार बन जाता है। ऐसे पापी की हत्या कर देना हमारे न्याय-विधान में भले ही अपराध हो, पर संसार की कल्याण-कामना की दृष्टि से हम उसे अपराधी कैसे कह सकते हैं।

'और न्याय का मुख्य हेतु है संसार का कल्याण और मानवता का संरक्षण।'

'पापी तो अज्ञान और मूर्खता के कारण अपराध करता है, लेकिन उस व्यक्ति का अपराध क्यों कम विचारणीय है जो विद्वान बनने का गौरव रखता है।'

भोजन धीरे-धीरे चल रहा था। हेमन्त बाबू के आगे परवल की सब्जी समाप्त हो रही है, यह देखकर शरत बोला—"पापा को सब्जी।"

सामने रखी डिश से परवल की सब्जी उठाकर नमिता जो उनके प्लेट में छोड़ने लगी तो आँखों में आँसू भरे हुए ठाकुर साहब रुद्ध कण्ठ से बोल उठे—"क्षमा कीजिए, मुझसे और न खाया जायगा।"

हेमन्त बाबू उनकी ओर इकटक देखने लगे।

इतने में फोन की घंटी बजने लगी।

ठाकुर साहब वाश बेसिन के पास जा पहुँचे थे।

: ७ :

हेमन्त बाबू के बँगले का द्वार गर्मी के दिनों में चार बजे खुल जाता और जाड़े के दिनों में छः बजे। वे रात को जरा देर से सोते; अतः सूर्योदय से पूर्व उठना उनके लिए दुष्कर था। लेकिन वे चाहते यही थे कि उनका शरत जल्दी सो जाया करे, ताकि प्रातः काल बिना उठाये जल्दी उठ सके। इसके सिवा वे महराजिन को देर तक रोकना अनुचित समझते थे। विशेष रूप से रात को। यही कारण था कि उन्होंने शरत के आग्रह करने पर खाने पर बैठ जाना तुरन्त स्वीकार कर लिया था।

इस बंगले में मानव-प्राणियों के अतिरिक्त कुछ और भी प्राणी रहते थे। बाँस की खपच्चियों का बना झँझरीदार एक कटघरा था, जिसमें शशक पले हुए थे। यह कटघरा आँगन के पासवाले बरामदे में उत्तर की ओर रखा रहता था। नमिता इन शशकों की देख-रेख तो करती ही थी, उनकी सुरक्षा विषयक चिन्ता भी रखती थी। उनके शरीर के बड़े-बड़े मुलायम केशों और लोमों के ऊपर हाथ रखकर जब कभी उनको थपथपाती हुई प्यार करती, तब उसको शरत का शिशुत्व याद आ जाता।

और शरत को उनकी गोल-गोल नीली आँखों और एकदम गुलाबी रंग की मुख छवि को देखकर बड़ा सुख मिलता। भाँति-भाँति के पत्ते और फल उन्हें चखाने की चेष्टा करता रहता। धीरे-धीरे ये शशक बिस्कुट भी पसन्द करने लगे थे। शरत जब कभी उनको बिस्कुट कुतरते और खाते हुए देर तक देखता रहता।

नमिता ने एक दिन कहीं कह दिया—"भगवान की रुचियाँ कितनी सुन्दर हैं, जिन्होंने इतनी मनोहर सृष्टि की है।"

शरत ने उत्तर दिया—"ममी, तुमको भी भगवान ने बड़ी रुचि से बनाया होगा, क्योंकि फिर तुमने मेरी रचना की, और मैं कृतार्थ हो गया।" जब नमिता ने उसकी इस बात पर कुछ न कहा, तब शरत गम्भीर हो गया।

नमिता शरत को चाहे जितना मना करती, किन्तु शरत एक बार खिड़की खोलकर उन शशकों को बाहर निकाले, प्रेम से खिलाये और चूमे बिना कभी न मानता। यद्यपि उस बँगले में बिल्ली का प्रवेश निषेध था; किन्तु एक चितकबरी बिल्ली कभी-कभी फेरा लगा ही जाती थी। नमिता का आदेश था कि कभी किसी भी दशा में बिल्ली को अन्दर न आने दिया जाय; यहाँ तक कि नौकरों तक को यह बात मालूम थी। फिर भी वह अवसर तककर कभी-कभी वहाँ पहुँच जाती।

शशकों के इन कटघरों के अतिरिक्त नमिता ने एक तोता भी पाल रखा था, जिसका पिंजड़ा मनुष्य की लम्बाई से एक बालिश्त ऊपर टँगा रहता था। शरत ने इस तोते का नाम जयन्त रख लिया था और शशकों का लाल और गुलाल। यों तो सोने को बागबानी के लिए ही रखा गया था; किन्तु अपने इस अनिवार्य कार्य से छुट्टी पाते ही, अवसर देख-कर वह अन्य कार्यों में भी हाथ डाले बिना न मानता था। गज्जू बाहर के कामों में ज्यादा लगा रहता था। इसलिए घर के काम प्रायः कम किया करता था। सोने को हमेशा इस बात का उलाहना बना रहता कि गज्जू काम कम करता है, बात अधिक।

गर्मी के दिनों में पुष्पों के पौधों की क्यारियों में सोने जब पानी छिड़कता, तब कभी-कभी उसे ऐसा बोध होता, मानो यह पेड़-पौधे

बड़ी देर के प्यासे हैं। खोदी हुई मुरमुरी मिट्टी की क्यारियों में जब पानी की ढलान कायम हो जाती, तो उस मिट्टी पर छोटे-छोटे फेनिल मोती फूट पड़ते। एक-आध बार शरत जो कभी वहाँ आकर खड़ा हो जाता, तो वह उन्हें देखता रह जाता।

एक दिन कहीं उसने सुन लिया कि मनुष्य का जीवन तो पानी के एक बगूले के समान है। बस, उसके बाद वह बड़ी देर तक इन मोतियों को देखता रहा। कुछ ही क्षणों के बाद जब वे मोती फूट कर मिट्टी में मिल गये, तो वह विचार में पड़ गया।

बँगले के अन्दर नित्य कोई-न-कोई ऐसा प्रसंग उपस्थित हो जाता, जिस पर शरत घण्टों सोचा करता। एक दिन कहीं सोने ने नमिता से कह दिया कि आज दुपहर में पुताईवाले लोग जब खाने की छुट्टी पर चले गये, तब अचानक लाल-गुलाल के पास बिल्ली आ पहुँची थी। तोता पंख फड़फड़ा कर टाँव-टाँव करने लगा था। गज्जू बीड़ी पीता सब कुछ देखता बैठा रहा। उससे यह भी न हो सका कि दौड़कर बिल्ली को भगा देता।

नमिता को सदा इस बात की चिन्ता बनी रहती कि किसी भी प्रकार शरत का जी कभी न दुखने पाये। उसके लिए वस्त्रों की व्यवस्था वह स्वयं करती। भोजन के सम्बन्ध में उसकी रुचियों का ध्यान कभी न भूलता। खाना बनाने के लिए जो महराजिन आती उसकी अवस्था यद्यपि चालीस पार कर गई थी, लेकिन साग हो कि दाल, नमक कभी-कभी ज्यादा हो ही जाता था। ऐसे अवसरों पर दही का पुट देकर अधिक नमक हो जाने का दोष दूर कर देने का ध्यान उसे सदा बना रहता। भंडार-गृह में चूहों के खाने और कुतरने योग खाद्य-सामग्रियों की कमी न रहती। इसलिए चूहे जो कभी बढ़ जाते तो उनको पिंजड़े में कैद कर के मील-दो-मील दूर किसी पार्क या कूड़ाघर में छोड़ आने का क्रम महीने-दो-महीने बाद आ ही जाता। बँगले के पीछे भैंस और गाय के लिए टीन का एक छायादार घर बना दिया गया था। शरत जो कभी वहाँ जाकर खड़ा हो जाता तो नाक-भौं सिकोड़ कर यह कहते हुए उसे देर न लगती कि यहाँ तो बदबू आ रही है। कभी लाख चेष्टा करने

पर भी चितकबरी बिल्ली अवसर पाकर एक चक्कर लगा ही जाती, तो घर के सभी लोग और सेवक चौंक उठते। भंडार-घर के दरवाजे पर कभी अधखाया हुआ चूहा पड़ा मिलता तो उसको उठाकर कूड़ाघर में फेंक देने के लिए न गज्जू तैयार होता, न सोने। ऐसी दशा में मेहतरानी को बुलाना पड़ता। पैसों के लोभ में पड़कर वह आ तो जाती, किन्तु इतना कहे बिना वह भी न मानती कि 'जी सबका एक-सा होता है। पेट जो भी न करा ले थोड़ा है।'

इन अवसरों पर जो कभी शरत उपस्थित रहता तो उसकी उदासीनता विशेष रूप से बढ़ जाया करती।

एक दिन कुछ ऐसा हुआ कि जब बिल्ली चूहे को मुँह में दबाये हुए बँगले के बाहर जा रही थी, उसी समय सड़क पर कोई कुत्ता एकाएक भूंकने लगा। उसकी पहली ही भौंक पर जब दूसरी ओर से एक अल्सेशियन कुत्ता दौड़ पड़ा, तो चूहा धपसट में बिल्ली के मुँह से छूट कर नाली में गिर पड़ा और फिर सवेरे तक पड़ा रहा। अभी ठीक तरह से सवेरा भी न हो पाया था कि गज्जू ने आकर नमिता को यह सुसमाचार देते हुए कह दिया कि मेहतरानी तो आज आयेगी नहीं, उसका बच्चा बहुत बीमार है।

संयोग की बात कि यह समाचार शरत के कान में पड़ा गया। वह चुपचाप उठा और रसोईघर में जाकर एक चिमटा उठा लाया, फिर उस मरे हुए चूहे को पकड़कर वह चुपचाप कूड़ेघर में फेंक आया। सहसा उसके मन में आया कि चिमटे को भी वह यहीं फेंक दे। यह अब इस योग्य नहीं रह गया कि रोटी पकाने में महराजिन को इसका उपयोग करने दिया जाय। तब उसे उसने वहीं छोड़ दिया। थोड़ी देर बाद गज्जू ने कहीं आकर नमिता को यह समाचार दे दिया कि जान पड़ता है, मेहतरानी उसे उठा ले गई है। पर दूसरे दिन मेहतरानी जब आई और उससे पूछा गया कि वह मरा हुआ चूहा तूने उठाया था तो उसने इनकार कर दिया।

अब यह प्रश्न उठा कि आखिरकार उसे उठाया किसने? क्योंकि

कहते हैं बिल्ली एक बार जिस चूहे को छोड़ देती है, उसे दुबारा अपना आहार नहीं बनाती।

भरत पहले तो सब बातें चुपचाप सुनता रहा; पर जब अन्त में किसी सूत्र से यह न मालूम हो सका कि वास्तव में उसे फेंका किसने है और महराजिन के आने पर यह भी विदित हो गया कि बरतनों में एक चिमटा गायब है, तब भरत ने माँ के सामने आकर कह दिया, "यह चखचख अब बन्द हो जानी चाहिए। उस मरे हुए चूहे को चिमटे से पकड़कर बाहर कूड़ेघर में फेंकने मैं खुद गया था।"

तत्काल नमिता के मुख से निकल गया—"हाय ! तूने यह क्या किया ?"

"मैं न करता तो फिर करता कौन ?"

"कोई भी करता। तुझे तो उसे छूना भी नहीं चाहिए था !"

भावुकता के कारण भरत यों ही काफी उदास हो चुका था; माँ की इस बात पर उसने उत्तर में कह दिया—"जी सबका एक सा होता है अम्मा ! तुम चाहे भूल जाओ, लेकिन पिछली बार मेहतरानी ने यह बात कही थी और तुम इस बात का कोई उत्तर न दे पायी थीं।"

कथन के साथ भरत का कण्ठ भर आया था और वह रूमाल से आँसू पोंछने लगा था। फिर इसी क्रम में भरत सोचता रहा—'मेहतरानी से जो काम समाज लेता है, वह भी उसकी ज्यादती है। सच पूछिए यह कार्य हम सबको स्वयं करना चाहिए। क्या कभी ऐसा दिन आयेगा, जब यह वर्ग इस गुलामी से मुक्त हो जायगा ?'

उसी दिन गौरी को रमेश का पत्र मिला कि अब एक-आध दिन में वह लौट आयगा। दद्दा की तबीयत ठीक हो गयी है। अब सामान्य रूप से उसने भरत के यहाँ जाना छोड़ दिया था। यह संवाद देने के बहाने वह नमिता के पास जा पहुँची। लेटी हुई नमिता रविबाबू का एक नाटक पढ़ रही थी।

नमिता के पास वह दस मिनट तक बैठी रही। भरत इस समय वहाँ उपस्थित न मिला तो उसको कुछ अच्छा न लगा। जब वह उठने

को हुई तो नमिता ने बतलाया—"शरत की भावुकता से मैं तंग आ गयी हूँ। एक दिन मरा हुआ चूहा वह खुद ही फेंक आया। कल कह रहा था कि मेहतरानी से हम लोग जो घृणित काम लिया करते हैं, उसका हमें कोई अधिकार नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता, उसे कैसे समझाया जाय! माना कि उसका काम घृणित है, पर फिर सफाई का यह काम कौन करे? समाज की जो व्यवस्था हजारों वर्ष से चली आ रही है उसे हम कैसे तोड़ सकते हैं?"

गौरी बोली—"चाची, यह न समझना कि मैं उनका पक्ष ले रही हूँ, पर सच पूछो तो उनका कहना ठीक ही है। कम से कम इतना अधिकार तो उन्हें होना ही चाहिए कि अगर वे चाहें, तो यह काम छोड़ दें और कोई अन्य धन्धा करें। रह गयी सफाई की बात। सो सीवर प्रणाली ने इस मामले में इतनी सुविधा तो कर ही दी है कि कभी-कभी सफाई की जो आवश्यकता पड़ जाती है, उतना तो हम लोग खुद कर सकते हैं।"

गौरी का यह उत्तर सुनकर नमिता सोचने लगी—'सचमुच युग बदल गया है। बच्चे ऐसा कुछ सोचने और समझने लगे हैं जिसे हम लोगों ने या तो कभी सोचा नहीं या अगर सोचा भी तो उसे कोई रूप नहीं दे पाये।'

इसके बाद गौरी जो उठने लगी, तो नमिता ने पूछा—"मुझे चाय बनाकर नहीं पिलायेगी?" गौरी हँस पड़ी और चाय बनाने को उठ गई।

गाय का नाम था 'जमुना'। उसका रंग काला था। वर्षा के दिन थे और उस दिन तो साथ में वायु का वेग भी बढ़ा हुआ था। पिछले दिन बहुतेरा मट्ठा बच गया था। वर्षा के कारण कोई लेने नहीं आया और बासी हो जाने से वह बहुत खट्टा भी हो गया था। गज्जू ने सानी के साथ वही मट्ठा जमना को दे दिया। परिणाम यह हुआ कि जमना सर्दी खा गई। उसका चारा-दाना छूट गया। शरत पशुओं के डाक्टर के पास स्वयं चला गया। डाक्टर ने इन्जेक्शन दिया और साथ में जमना को गुड़ के साथ अजवायन दे दी गई।

जमना दो दिन बीमार रही। तीसरे दिन जब उसने चारा-दाना ग्रहण किया, तब कहीं शरत की उदासीनता दूर हुई। दोनों दिन वह

नाश्ते के समय अनुपस्थित हो जाता और नमिता के पूछताछ करने पर उनसे झूठमूठ कह देता, "मैं रमेश के घर से नाश्ता कर आया हूं।"

शरत दिन में दस बार जमना के पास गया, वहां खड़ा रहा, उसकी आंखों की कोरों को ध्यान से देखता रहा, अन्त में उसके मुंह को अपनी गोद में भर लिया, उस पर हाथ फेरा और उसकी ग्रीवा देर तक सहलाता रहा।

इन घड़ियों में शरत ने किसी से कुछ कहा नहीं। किन्तु यह बात उसके मन से दूर न होती थी कि जमना इस समय गर्भावस्था में है, अगर इसके जी को कुछ हो गया तो गर्भस्थ शिशु भी किसी प्रकार न बच सकेगा।

प्राणीमात्र के प्रति शरत के ये मनोभाव न तो हेमन्त से छिप पाये थे, न नमिता से।

खाना अभी चल रहा था। इतने में गज्जू ने आकर सूचना दी कि वासुदेव बाबू आ गये हैं।

गज्जू जब यह बात कह रहा था, तब शरत की दृष्टि उसके मुख पर थी।

शरत सोच रहा था—'आखिर को गौरी नहीं आयी न!'

इसी समय नमिता ने प्रश्न कर दिया—"और गौरी? वह नहीं आई?"

वासुदेव बाबू अन्दर आ गये और बोले—"मेरे कहने से तो आ नहीं रही है।" फिर सोचने लग गये—'आज के लड़के कितने स्वतन्त्र हो गये हैं। मेरी समझ में नहीं आता, कैसे बेड़ा पार होगा।'

आश्चर्य के साथ नमिता ने पूछा—"क्या मतलब? आप कहें और वह न आये, यह बात कुछ समझ में नहीं आती!"

नमिता जानती थी कि जरा-जरा सी बात पर यद्यपि दोनों में कहा-

खुली हो जाती है, लेकिन फिर दो ही एक दिन में दोनों परस्पर मिलना-जुलना, हँसना-बोलना प्रारम्भ कर देते हैं।

गौरी अब कुर्त्ता और सलवार धारण करना छोड़ चुकी थी। सलवार का स्थान अब साड़ी ने ले लिया था और कुर्त्ते का स्थान बिना बास्तीन के ब्लाउज ने। गौरी जब कभी आती, तब सीने-पिरोने के काम से लेकर बुनाई-कढ़ाई ही नहीं, भाँति-भाँति के स्वादिष्ट पदार्थ बनवाने में नमिता को सहयोग दिये बिना न मानती। कभी-कभी दोपहर के बाद तीन बजने पर यदि कोई बाहरी अतिथि आ जाता और उस समय महराजिन अनुपस्थित रहती, तो नमिता गज्जू को भेजकर गौरी को बुलवा लेती और गौरी भी अन्य किसी काम के अतिरिक्त पढ़ने में भी लगी रहती, फिर भी वह उनका आग्रह न टालती थी।

नमिता सोचती थी, 'ऐसी दशा में गौरी क्यों नहीं आ रही है, इसका कुछ-न-कुछ आधार तो होना ही चाहिए।' शरत के मन में आया कि वह स्वयं उसके पास चला जाय और बहुत गम्भीर न बनकर उससे पूछे—'क्या बात है ?'

किन्तु जान बूझकर इस विषय में अकारण कूद पड़ना उसने उचित न समझा। पर जब कोई अन्य उपाय नमिता को न सूझ पड़ा, तो उसने शरत की ओर उन्मुख होकर कह दिया, "जा रे शरत, देख तो, क्या बात है ?"

हँसी-खुशी के साथ शरत गौरी के घर चला गया और नमिता ने गज्जू से कह दिया—"जाओ, तुम उन्हीं के यहाँ बैठो।"

गौरी इतिहास की पुस्तक लिये बैठी थी और मुहम्मद तुगलक का पृष्ठ उसके सामने था। शरत ज्योंही सामने पहुँचा, उसने पूछा, "क्यों, खाना नहीं खाना है ?"

गौरी पहले तो एकटक शरत के मुख की ओर देखती रह गई। फिर उसकी आँखों से आँखें मिलाकर थोड़ी मुसकराई और यह कहती-कहती रुक गई कि 'जैसा मैंने सोचा था वही हुआ। मैं जानती थी कि अन्त में श्रीमान् को आना पड़ेगा।' कुर्सी से उठकर वह बोली—"खाने का मन तो नहीं था; लेकिन खैर, चलो थोड़ा-सा खा ही लें।"

भरत ने चाहा कि वह भी अकड़कर कह दे, 'मेरे ऊपर एहसान करना हो तो खाने की आवश्यकता कतई नहीं है। बैठो, पढ़ो। सारी रात पढ़ती रहो। मैं ये चला।'

किन्तु गौरी ने बिना कोई तेवर दिखाये जिस मुसकराहट के साथ चल देना स्वीकार कर लिया, भरत उसकी अवमानना न कर सका।

सदा ऐसा ही होता आया था। जब कोई कठोर बात उसके मुँह से निकल जाती, तो वह अपनी ओर से विनयावनत न होकर सदा इस बात की चेष्टा करती कि भरत कभी बुरा न माने; मैं चाहे जो कहती रहूँ।

एक बात और थी। भरत की प्रकृति धीरे-धीरे कुछ इस प्रकार की बन गई थी कि अपनी सहज आत्मीयता को वह अहम् के आगे झुकने नहीं देता था। लेकिन गौरी के विषय में उसकी नीति प्रायः स्थिर न रह पाती थी। यद्यपि ऐसे अवसरों पर भी वह अपना एक पृथक् व्यक्तित्व रखे बिना मानता न था।

गौरी के साथ वह जब बाहर निकल रहा था, तब तक मज्जू बरामदे में पहुँच चुका था। भरत थोड़ा आगे बढ़ गया था कि एकाएक घूम कर उसने कह दिया, "तुमको अभी दरवाजा बन्द करने और ताला लगाने में शायद देर लग जाये। पर वहाँ सब लोग खाने पर बैठ चुके हैं। इसलिए······।"

उसका वाक्य भी अभी पूरा न हो पाया था कि गौरी ने कह दिया, "ठहरो।" फिर झट से दरवाजे पर ताला बन्द करते हुए वह उसके पास आकर बोली—"मुझे मालूम है, तुम्हारा समय बड़ा कीमती है। इसके सिवा मेरे साथ चाचाजी के सामने पड़ने में तुम हिचकते भी हो।"

भरत कुछ नहीं बोला।

तब तक गौरी ने कह दिया, "अरे, मुझे सब मालूम है। भरत बाबू मैं तुम्हारे मन की रत्ती-रत्ती भर बात जानती हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि आजकल सभी जीवधारियों के प्रति दया तथा ममता की भावना तुम में बहुत जोर पकड़ रही है।"

शरत को कुछ सोचने की आवश्यता नहीं पड़ी। उसने सड़क पर आकर गौरी के कन्धे पर हाथ रखते हुए कह दिया—"तुम पगली हो गौरी! तुम जीवन को सुगन्धित पुष्प भर मानती हो। तुमको क्या पता कि हमारा जीवन टीसता हुआ एक घाव है और कभी-कभी पीब से रिसता हुआ एक नासूर बन जाता है।"

"मुझे मालूम है कि तुम ड्रामा पढ़ना ही नहीं, खेलना भी सीख रहे हो। और किताबी भाषा बोलने में तुम्हें अच्छा भी बहुत लगता है। लेकिन···।"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। बहुत हो चुका। अब यह बकवास बन्द करो और जिस समय···।"

जिस समय बकवास बन्द करने वाली बात का यह टुकड़ा शरत के मुंह से निकल रहा था, उस समय वह भोजन कक्ष के द्वार पर पहुँच चुका था।

हेमन्त बाबू के कानों में जब शरत के कथन का यह अंश जा पड़ा, तब वे कुछ बोले तो नहीं, लेकिन उनके मुख पर एक मन्द मुस्कराहट आ गई और साथ ही एक विशेष अभिप्राय से वे नमिता की ओर देखने लगे।

नमिता ने गौरी को आया जान कह दिया—"आओ, इधर मेरे पास आ जाओ।"

हेमन्त बाबू बोले, "क्यों, जहाँ बैठ रही है, वहीं बैठने दो न?"

नमिता ने टोक दिया, "नहीं, दोनों साथ-साथ बैठेंगे, तो यहाँ भी लड़ेंगे। तुमको कुछ नहीं मालूम।"

तब हेमन्त ने शरत की ओर उन्मुख होकर पूछा, "क्यों शरत? ऐसी कुछ बात है क्या?"

गौरी तिरछी चितवन से शरत को देखने लगी।

शरत ने सिर लचाकर सकुचाते-सकुचाते कह दिया—"नहीं तो, ममी तो यों ही जो मन में आता है कह दिया करती हैं।"

तब तक गौरी नमिता के पास जाकर बैठ चुकी थी।

ठाकुर साहब बैठक में आ चुके थे। वे सोच रहे थे, 'मैं जज साहब को आज तक समझ न सका।'

: ८ :

बहुधा ऐसा होता है कि जब कोई ऋणी व्यक्ति किसी एक तारीख को रुपया लौटाने का वचन देता है तब रुपया चुकाने की तारीख जल्दी आ जाती है। इसके विपरीत जिसको रुपया मिलनेवाला होता है, उसके लिए वह तारीख बीच के दिनों को कुछ और अधिक लम्बा कर डालती है। यद्यपि न कभी दिन बढ़ते हैं और न कोई तारीख दौड़कर शीघ्र सामने आ खड़ी होती है। परिस्थितियों का रूप ही उत्सुकता और आवश्यकता के अनुसार कुछ इस प्रकार बदलता हुआ जान पड़ता है कि हम उसे जल्दी और देर के आकार-प्रकार में देखने लगते हैं।

वासुदेव ने जिस व्यक्ति को दस तारीख को रुपया देने का वादा किया था, उसका कद बहुत लम्बा और शरीर भी काफी गठा हुआ था। दाढ़ी-मूछ के केश काफी बढ़े और बिखरे हुए थे। उन्हें चिपकाने के लिये आप फिक्सो का उपयोग करते थे। लेकिन ऐसा अवसर महीने में मुश्किल से दो बार आता था। आपकी मूंछें इतनी बढ़ी हुई रहतीं कि चायपान करते समय उसका थोड़ा-बहुत भाग जबरदस्ती ग्रहण किये बिना मानती न थीं। चाय के बादामी रंग की वे छोटी-छोटी बूंदें जब खिचड़ी मूंछों पर आसीन हो जातीं, तब आपकी मुखछवि दर्शनीय हो उठती थी। आपने सूद पर रुपया देने का धन्धा अपना लिया था और आपके सूद की दर होती थी एक आना रुपया मासिक।

वासुदेव बाबू ने आपसे सौ रुपये ऋण के रूप में लिये थे। रुपये लेते समय कहीं उनके मुंह से निकल गया था, "रुपये आपको मैं जल्दी ही लौटा दूंगा।" लेकिन उनकी आमदनी सीमित थी और जो खर्चे

आकस्मिक रूप से आ जाते, उनका अवरोध और नियन्त्रण वे कर न पाते। परिणाम यह होता कि उनका वचन जब कभी पूरा न होता तो उनको आपके कटु वचन भी सुनने पड़ जाते।

दस तारीख को आते देर न लगी। अभी तक रमेश अपनी माँ के साथ लौटा न था। वासुदेव के आफिस के खजान्ची बाबू ने अपनी धर्म-पत्नी की बीमारी के कारण छुट्टी बढ़ा ली थी। कार्यालय में जो रुपया नकद आता, वह तो बैंक में भेज ही दिया जाता था। लेकिन सहस्रों रुपयों की जो निधियाँ चेक के द्वारा आतीं, वे मैनेजिंग डायरेक्टर के हस्ताक्षर से बैंक में भेज दी जाती थीं। एक दिन इकट्ठे होकर आफिस के कई बाबुओं ने मैनेजिंग डायरेक्टर मि० भाटिया के पास पहुँच कर कर्मचारियों का वेतन भुगतान कर देने की प्रार्थना भी की; परन्तु उनको उत्तर यही दिया गया कि दो-चार दिन की तो बात है, कैशियर बाबू के लौटने पर वेतन बाँट दिया जायगा।

जो लोग मैनेजिंग डायरेक्टर मि० भाटिया से मिलने गये थे, उनमें वासुदेव बाबू भी थे। वे जानते थे कि आज वे महाशय आयेंगे और रुपया प्राप्त न होने की प्रतिक्रिया में कोई भाला जरूर मेरी छाती में भोंकेंगे। अतः उन्होंने अन्य किसी व्यक्ति के बोलने की प्रतीक्षा न करके स्वयं ही आगे बढ़कर कह दिया—"यह बात बड़ी गैरजिम्मेदारी से भरी हुई है। किसी भी एक पदाधिकारी के चले जाने पर अगर इस प्रकार कारोबार रोक दिया जाय, तो दुनिया के बहुतेरे काम एक साथ ठप हो जायँगे! सारे कार्यालयों में हर मास की पहली तारीख को वेतन बँट जाता है। आपने चार दिन पहले से ही बढ़ा रखे हैं। पहले खजान्ची बाबू दस तारीख तक आने वाले थे। अब वे पन्द्रह तक आयेंगे। यह भी सम्भव है कि वे पन्द्रह को न आकर बीस को आयें।"

डेपुटेशन के दूसरे सदस्य वेदप्रकाश जी बोल उठे—"और भगवान न करे कि ऐसी कोई दुर्घटना हो जाय, लेकिन मान लीजिए कि खजान्ची बाबू की धर्मपत्नी ऐन पन्द्रह तारीख को देवलोक सिधार गईं, तब उनकी शान्ति-क्रिया के लिए पन्द्रह दिन की छुट्टी और बढ़ जायगी!"

ठीक इसी क्षण तीसरे सदस्य बोल उठे—"अब तो हम लोग आज

वेतन लेकर ही जायेंगे। जो रुपया नकद और चेक के रूप में आता है, उसको तो बैंक में जमा होते हुए देर नहीं लगती और हम लोगों के वेतन का भुगतान करने में आप आनाकानी करते हैं। मैं पूछता हूं, मुख्य खजाञ्ची बाबू के स्थान पर उनके सहायक जो तिवारी जी हैं, वेतन चुकाने का काम वे नहीं कर सकते ?"

कई लोग एक साथ बोल उठे। किसी ने कहा—"कर सकते हैं।" कोई बोला—"अवश्य कर सकते हैं", और किसी ने कह दिया, "क्यों नहीं कर सकते ? उन्हें करना पड़ेगा।"

कई लोगों के एक साथ बोल उठने पर भाटिया साहब का दिल धड़कने लगा और एकाएक उनके मुंह से निकल गया—"आप लोग शोर न मचायें। एक-एक करके अलग-अलग बोलें। अगर आप लोग हल्ला मचायेंगे और डिसिप्लिन तोड़ेंगे तो हमको भी तत्काल ऐक्शन लेना पड़ेगा।"

वासुदेव ने अपने साथियों को समझाते हुए कह दिया—"साहब ठीक कहते हैं। शोर मचाने से सुव्यवस्था के पंख झड़ने लगते हैं। हम नहीं चाहते कि ऐसी कोई चिन्ताजनक परिस्थिति उत्पन्न हो। इसलिए अच्छा हो कि आप सब लोग धीरज रखें और शान्त बने रहें।"

फिर वे भाटिया की ओर उन्मुख होकर बोले—"हाँ, भाटिया साहब, तो कृपा करके कोई ऐसा यत्न कीजिए कि हम लोगों का वेतन आज ही मिल जाय।"

तभी एक महाशय ने टोक दिया—"कृपा करके क्यों ? अपना कर्तव्य और ड्यूटी समझ कर क्यों नहीं ? हमको समय पर वेतन लेने का पूरा अधिकार है। अपने इस अधिकार की पूर्ति में हम किसी की कृपा स्वीकार करने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हैं।"

कार्यालय के इन बाबू लोगों की भाव-भंगिमा, मति-गति और रूप-रेखा देख कर भाटिया साहब मन-ही-मन कम्पित हो उठे। अन्य कोई उपाय न देखकर अपनी नई खरीदी हुई रिस्टवाच को देखते हुए वे बोले —"इस समय पौने दो बज रहा है। अगर मैं बैंक से रुपया मँगना भी

चाहूँ तो वह आ नहीं सकता। इसलिए आज तो नहीं, लेकिन कल आप लोगों को तनख्वाह मिल जायेगी।"

सामान्य रूप से सब लोगों को भाटिया जी कि यह बात मान लेनी चाहिए थी। लेकिन इतने में वासुदेव को उन महाशय के चेहरे का स्मरण हो आया जिनको उन्हें रुपया देना था। फलतः उनके मुँह से निकल गया —"काश, यही प्रबन्ध आप आज कुछ देर पहले कर लेते।"

अब भाटिया साहब तो अपनी कुर्सी से उठकर प्राइवेट रूम की ओर चल दिये, एक महाशय ने कह दिया—"अपने आनन्द-विनोद में मस्त रहकर हम लोगों की दीन-हीन परिस्थितियों का आप बिल्कुल ध्यान नहीं रखते। अभी एक सप्ताह पहले की बात है, तारीख तीन को आपने कम्पनी से पचास हजार रुपया ड्रा किया था। यह रुपया अगर आपको अब तक न मिलता, तो आपकी क्या हालत होती ?"

इसी क्षण एक दूसरा व्यक्ति उसकी ओर देखते हुए बोल उठा— "बको मत, पर्सनल अफेयर्स की बात हमें नहीं उठानी चाहिए। हाँ साहब, हम यह जानना चाहते हैं कि जो इन्तजाम आप कल करना चाहते हैं, वह आपने आज क्यों नहीं किया ?"

और वासुदेव बाबू बोले, "अब जाने दो इन बातों को। कल वेतन मिल जायेगा।" भाटिया साहब जा चुके थे और वह व्यक्ति बोल रहा था, "अगर आप अगले वर्ष भी कर्मचारी-संघ की प्रेसीडेंटशिप के लिए खड़े हुए, तो हम लोग आपको कदापि वोट न देंगे। हमें मालूम हो गया कि आप ढुलमुल-यकीं हैं। यह सब गड़बड़ आप ही की कमजोरी से होती है। जो डेपुटेशन आप यहाँ आज ले आये, वही आपको पाँच नहीं तो छः तारीख को लाना चाहिए था। मैं फिर कहूँगा कि वेतन के मामले में एक दिन की भी देर हम लोगों को स्वीकार नहीं करनी चाहिए, बिल्कुल नहीं करनी चाहिए।"

और वासुदेव ने मुस्कराते हुए जवाब दिया, "अच्छा बाबा, आप हमको वोट न दीजिएगा, बस !"

शाम के सात बजे थे और वे महाशय मोटरबाइक पर फट-फट करते हुए वासुदेव के द्वार पर आ गये थे। दरवाजे पर ज्योंही उन्होंने खुट-खुट किया, त्योंही वासुदेव ने दरवाजा खोल दिया। वे अन्दर आने लगे, तो वासुदेव बाबू बोले—"खजान्ची बाबू तो आये नहीं, अपनी पत्नी की बीमारी के कारण उन्होंने छुट्टी बढ़वा ली।"

अपनी बिखरी हुई मूंछों पर हाथ फेरते हुए सरदार जी ने उत्तर दिया—"आपकी अड़चनें और दिक्कतें सुनने के लिए मैं यहाँ नहीं आया हूँ। मैं तो रुपये के लिए आया हूँ।······और आज लेकर ही जाऊँगा। इसके लिए मैंने आपको उसी दिन आगाह कर दिया था।"

वासुदेव बाबू ने उत्तर दिया—"आप मेरी बात तो पूरी सुन लीजिए। उस दिन हम सबने मिलकर मैनेजिंग डायरेक्टर मि० भाटिया को घेर लिया था। काफी बातें हुईं; बल्कि थोड़ा-बहुत हल्ला भी मचा।"

तब उन महाशय ने कह दिया—"यह तो हमें मालूम हुआ कि कुछ आपने कहा, फिर कुछ उन्होंने कहा, फिर कुछ आपने कहा, फिर कुछ उन्होंने कहा, इस तरह काफी कहा-सुनी हुई। मगर अब सवाल फिर वही उठता है कि नतीजा क्या निकला ? पे आपकी मिली कि नहीं ?"

"आज तो नहीं मिली; मगर उम्मीद है कल जरूर मिल जायेगी।"

"मैं ऐसी उम्मीद पर लानत भेजता हूँ। उम्मीद तो मुझे भी आज पूरी थी कि आप मुझे पैसा दे देंगे। अब चाहे जहाँ जाइए, पैसा लेकर आइए। मैंने पहले ही कह दिया था कि मैं पैसा लेकर ही जाऊँगा।"

"आज तो किसी तरह नहीं मिल सकता।"

"आज ही मिलेगा। आपको मालूम होना चाहिए कि रुपया देते वक्त मैं जितना शरीफ रहता हूँ, वसूल करते वक्त उतना ही सख्त बन जाता हूँ। आप मुझे अभी जानते नहीं हैं।"

वासुदेव बाबू यह सोचते हुए हतप्रभ खड़े थे कि अब मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ ?

इतने में फाटक से शरत आ पहुँचा। वासुदेव बाबू को संकेत से अलग बुलाकर उसने पूछा—"इस आदमी को कितने रुपये देने हैं आपको ?"

वासुदेव बाबू बोले—"एक सौ छः रुपये पचीस नये पैसे।"

भरत ने दस-दस के ग्यारह नोट देते हुए कहा, "यह रुपये ममी ने दिये हैं। कुछ बातें उनके कान में पड़ गई थीं। वे उस वक्त अनार के पेड़ के पास खड़ी थीं।"

उसने स्पष्ट रूप से यही 'नहीं बताया कि यह रुपये मैं ममी से माँग कर लाया हूँ और ये सारी बातें उन्होंने नहीं' मैंने सुनी हैं।

वे महाशय रुपया लेकर चले गये और वासुदेव बाबू अन्दर जाकर हथेली पर मत्था रखकर विचारलीन हो गये।

अन्दर गौरी आँसू पोंछती हुई रो रही थी और भरत उसके पास बैठा हुवा कह रहा था, "अभी कल की बात है, मैंने तुमसे कुछ कहा था न!"

गौरी रुद्ध कण्ठ से बोली—"हाँ, कहा था। मैं इस समय वही बात सोच रही थी।"

: ९ :

सत्यवती इधर कई महीने से खट्टी और खटमिट्ठी चीजें और विशेष रूप से अचार खाने में कुछ अधिक रुचि रखने लगी थी। उसने नन्दलाल बाबू को कुछ बतलाया न था, लेकिन वे स्वयं सब-कुछ जान गये थे और मन-ही-मन बहुत उत्साहित और प्रसन्न रहने लगे थे। बहुत दिनों से सेई-पाली हुई उनकी एक आशा अब फलवती होने जा रही थी। गमलों में पौधों के खिले हुए फूल, जो पहले कभी उनकी आँखों में खटकते प्रतीत होते थे, अब बहुत सुहावने लगते थे।

सुरेश के लिए चार-छः मुसम्मी नित्य आती थीं। जब उनका रस निचोड़ा जाता, तो गिलास भर जाता। पहले तो यह कार्य नन्दलाल

बाबू स्वयं करते थे, किन्तु दो दिन के बाद सत्यवती ने यह भार अपने ऊपर ले लिया था।

सेवा के इस कार्य में सत्यवती को बड़ा रस मिलने लगा था। आधा गिलास रस सुरेश को देते हुए उसने बड़े मजे से कह दिया था—"सभी फल एक से सरस नहीं निकलते। देखो न, आज चार मुसम्मियों में आधा गिलास रस ही निकल पाया। अब कल से तुझे आठ मुसम्मियाँ मँगवानी पड़ेंगी।"

कावेरी ने सुरेश की चारपायी के पाये पर हाथ रखते हुए पूछा—"कै मुसम्मी तुम्हारे लिए रोज आती थीं?"

सुरेश कुछ विचार में पड़ गया—'वस्तुस्थिति का यथार्थ मर्म प्रकट कर देना कहाँ तक उचित होगा? चाचाजी को बुरा न लगेगा।'

वह कोई उत्तर नहीं दे पाया था और कावेरी उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी।

इतने में सत्यवती वहाँ आ पहुँची। उसे इस बात की शंका बनी ही रहती थी कि सुरेश कहीं अपनी माँ से कुछ न कह दे। इसलिए जब कभी ऐसा अवसर आता, वह किसी-न-किसी बहाने उसके निकट पहुँच ही जाती थी।

कावेरी विचार में पड़ गयी—'सुरेश ने कोई उत्तर नहीं दिया! जरूर कहीं दाल में काला है।'

थोड़ी देर बाद सुरेश ने बहुत सोच-समझ कर उत्तर दिया—"मुसम्मी कितनी आती हैं मुझे नहीं मालूम। बड़ी अम्मा नित्य उसका एक गिलास रस मुझे दिया करती हैं।"

जिस समय सुरेश ने यह उत्तर दिया, सत्यवती कमरे के अन्दर आ चुकी थी। इसलिए वह बोली—"रस निकलने के मामले में फलों का निश्चित परिमाण से रस देने की क्षमता पर मेरा विश्वास उठ गया है। इसलिए दो-तीन मुसम्मी मैं ज्यादा ही मँगा लेती हूँ, जिससे रस एक गिलास से कुछ ज्यादा ही निकले, कम न पड़े।"·······मगर क्यों? संख्या जानने की जरूरत कैसे पड़ गई?"

कावेरी पहले तो जेठानी का यह प्रश्न सुनकर सकपका गई, लेकिन

फिर सँभलती हुई बोली—"पूछने की जरूरत इसलिए पड़ी कि जब मैं आ गई हूँ, तब खान-पान पथ्य की चीजों और दवाइयों को मँगाने का थोड़ा-बहुत जो भी खर्चा हो, मैं ही करूँ।"

"नहीं छोटी, ऐसी क्या बात है! जैसे और सब खर्चा चलता है, यह भी चलेगा। हाँ, अगर तुम्हारे पास पैसा बढ़ रहा हो, तो लाओ, दो-चार सौ रुपये।"

कावेरी को याद आ गया कि गृहस्थी उसे किन कठिनाइयों से गुज-रते हुए चलानी पड़ती है। तब वह मुँह नीचा करके सोचने लगी, 'धन-सम्पदा का अभिमान कितना निर्मम होता है! जीजी ने सहज भाव से ऐसी बात कह डाली, जिसको मेरी सामर्थ्य कभी गवारा नहीं कर सकती।'

सत्यवती अब उस कमरे से बाहर चली आयी थी।

सुरेश नमित मुख, मौनभाव से सब कुछ सुनता रहा। फिर बोला —"मैं चाहता तो मुझे नौकरी मिल सकती थी अम्मा! मैंने टाइप करना सीख लिया है और अब तो मेरी स्पीड भी बढ़ गई है।"

कावेरी बोली—"नहीं बेटा, इतनी जल्दी मैं तुझे नौकरी न करने दूंगी।"

अभी मुश्किल से आठ बजे होंगे कि सत्यवती ने पलंग पर लेटे-लेटे बुलाया, "छोटी!"

कावेरी झट जेठानी के पास जा पहुँची। वह कुछ कहे, इसके पूर्व वह स्वयं बोली—"रोटी मैं बना लूंगी। दद्दा तो नौ बजे चले जाते होंगे।"

"हाँ, मैंने तुमको इसीलिए बुलाया था। मैं यही बात कहने जा रही थी तुमसे। यों तो मैं ही बना लेती; लेकिन इधर कई दिनों से मेरी तबीयत गड़बड़ चल रही है और आज भी जान पड़ता है, ज्वर आने वाला है।"

"ज्वर तो न आना चाहिए ऐसी दशा में जीजी! भगवान की कृपा से एक युग के बाद कहीं गोद भरने का समय आया है, तो निर्विघ्न रूप

से नैया भी पार लग ही जायगी। मेरे ख्याल से किसी लेडी डाक्टर को दिखलाना चाहिए।"

सत्यवती ने जो बात स्वामी को भी नहीं बतलायी थी, वह जब देवरानी से छिपी न रह सकी, तो वह मन-ही-मन संकुचित हो उठी।

जब उसकी मुसकराहट किसी प्रकार रोके न रुकी तो बोली—"नहीं छोटी, यह बात मैंने अभी तक उनको भी नहीं बतलायी। तुम भी इस को मन में ही रखना।"

कावेरी हँसती-हँसती चिबुक पर अंगुली रखकर कहने लगी—"तुम भी कैसी बातें करती हो जीजी! ऐसी खुशी की बात कहीं छिपाये छिपती है। मान लो, अब तक तुमने दद्दा को कुछ भी न बतलाया हो, पर क्या वे सब कुछ जान न गये होंगे? जो भी हो; मेरे ख्याल से तो उनसे कुछ छिप नहीं सकता। पर जब तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो सचमुच मैं किसी से कुछ न कहूँगी। अच्छा, तो अब मैं पहले साग चढ़ा दूँ।"

"भैया क्या कर रहा है?" सत्यवती ने पूछा।

"अभी तो पढ़ रहा था।" कावेरी बोली।

"आज उसे पथ्य दिया गया है। इसीलिए उसे बहुत सावधान रहने की जरूरत है। घंटे-दो-घंटे नींद न आने दे तो अच्छा है।"

सत्यवती को मगद के लड्डू, सो भी देशी घी के बहुत भाते थे। सेर-दो-सेर वह अपनी अलमारी में सदा रखे रहती। पर इधर गर्भावस्था के प्रारम्भ में उसे मिठाई से अरुचि हो गयी थी। अतः कई दिन से वह इस सोच में थी कि अब इन्हें समाप्त कैसे किया जाय? नाश्ते के रूप में, चाय के साथ, वह स्वामी को दो लड्डू दे दिया करती थी। आज भी उसने उन्हें दो लड्डू [illegible] दाल-सेव वाला नमकीन मँगवा लिया [illegible] उसने मैं ग्रहण कर [illegible]। पर इस समय कावेरी [illegible] ढंग से, उसकी मनोकामना [illegible] होने की प्रसन्नता में सहजभाव से [illegible] लिया, वह उसके लिए नया [illegible] इसलिए पुलकित मन से पास [illegible] कावेरी से [illegible] जरा यह अलमारी तो खोलना छोटे

कावेरी ने झट अलमारी खोल दी।

सत्यवती बोली—"इसमें शीशे का एक अमृतबान रखा है। उसमें मगद के लड्डू होंगे। उसी में से चार लड्डू निकालकर पहले खालो, तब रसोई में जाओ।"

"मगर मैं तो अभी चाय पी चुकी हूँ।"

"उससे कुछ नहीं होता। ले लो, ले लो छोटी! मेरा कहना मत टालो।"

"अच्छा तो दो लिये लेती हूँ।"

"दो नहीं, पूरे चार। एक भी कम नहीं।"

"अच्छा, ये लो एक और सही।"

"राम राम! तीन का कभी नाम न लेना। तीन तिकट महा विकट, पूरे चार ले लो। तुम्हें हमाई सौं।"

कावेरी लड्डू खाने जा बैठी। उसने अनुभव किया कि जीजी सच-मुच मिठाई खाने में बड़ी तेज हैं। यद्यपि अब उन पर फफूंदी दौड़ने लगी थी। पोंछ-पाँछकर उसने दो लड्डू खा डाले। पर चारों लड्डू उस से खाये न गये। दो बचाकर उसने अपने ट्रंक में रख लिये। इस स्थिति में उसने सुरेश को खिलाना उचित नहीं समझा।

पानी पीती हुई वह सोच रही थी, "जब तक सुरेश दो-चार दिन मेरे साथ न रहेगा, तब तक इस बात का पूरा भेद मिलना कठिन ही रहेगा कि उसे यहाँ, इस घर में, कभी कोई कष्ट तो नहीं हुआ!"

कावेरी को खाना तैयार करते देर न लगी। अरहर की दाल देर से गलती है। इसीलिए उसने चूल्हे तथा स्टोव पर घुले हुए उड़द की दाल, चावल और आलू-मटर-टमाटर का साग बना लिया था।

नन्दलाल बाबू खाना खाते हुए कहने लगे—"वैसे तो मैं सोचता था कि तुमने नाहक यहाँ आने का खर्चा बढ़ाया। पर अब मैं अनुभव कर रहा हूँ कि तुम्हारे आने की वाकई जरूरत थी। यों सुरेश ठीक हो ही गया था। थोड़ी-बहुत कसर जो थी, वह दो-चार दिन में दूर हो जाती, लेकिन फिर माँ का हृदय भी तो एक चीज होती है।

कावेरी सब सुनती रही।

थोड़ी देर बाद अवसर देख उसने नन्दलाल की थाली में थोड़ी सी दाल फिर छोड़ दी। फिर उसमें घी की भी पुट दे दी। साथ में घी से चुपड़कर दो फुलके उनकी थाली में बढ़ा दिये।

नन्दलाल बाबू बोले—"आज बहुत दिनों के बाद मुझे ऐसा स्वादिष्ट भोजन मिला। मन तो करता है कि अब तुम्हें जाने न दूं छोटी। यहाँ की सारी जिम्मेदारी आखिर कौन सम्हालेगा? लेकिन फिर गौरी, रमेश और छोटे भैया पर क्या बीतेगी? सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा में लाख ऐब रहे हों, किन्तु ऐसे अवसरों पर उसका महत्व बारम्बार याद आता है।"

यद्यपि कावेरी की अवस्था अब अड़तीस की हो गयी थी, लेकिन उसका शरीर अब तक स्वस्थ और सुडौल बना हुआ था। घूंघट की ओट से दांतों की विद्युच्छटा छिटकाती हुई बोली—"महीना भर पहले मैं चली आऊँगी दद्दा! तुम्हें किसी तरह की चिन्ता करने की जरूरत नहीं।"

नन्दलाल अब पैंतालीस के ऊपर हो चुके थे। एक युग के बाद उन्हें यह दिन देखने को मिला था। सहसा उनकी आँखें चमक उठीं। रुद्ध कण्ठ से बोले—"मैं जानता हूँ, छोटी! तुम जरूर आ जाओगी।"

कुछ सोचकर उनकी आँखें भर आयी थीं।

: १० :

भरत का मन यों भी छोटी-छोटी घटनाओं से बड़ा अधीर और व्याकुल हो जाता था। प्रायः वह सोचा करता—'ये घटनाएँ क्या रोकी नहीं जा सकतीं?' विचार करते-करते आप-ही-आप वह इस निष्कर्ष पर जा पहुँचता कि मनुष्य हर विषय में सदा सावधान नहीं रह पाता। उससे कभी-न-कभी कोई भूल हो ही जाती है।

एक दिन फिर ऐसा प्रसंग आ गया कि बरामदे में लगी हुई बिजली की बत्ती का सफेद गोला निकालकर उसका बल्ब बदलना पड़ा। रात के दस बज चुके थे। गज्जू और सोने मिलकर सीढ़ी को उठा तो लाये थे, लेकिन फिर बल्ब बदल देने पर जब रोशनी हो गई, तब सीढ़ी वहीं रखी रह गई। माली ने कहा भी कि इसको अभी उठाकर मालगोदाम में रख देना चाहिए। लेकिन गज्जू ने जवाब दिया कि ऐसी क्या जल्दी है? सबेरे रख देंगे।

दूसरे दिन जब सवेरा हुआ तब तक तोते का पिंजड़ा खाली हो चुका था। उसकी खिड़की खुली रह गई थी।

सहसा प्रश्न उठा—तोता कैसे उड़ गया?

फिर यह भी प्रश्न उठा कि अगर उसको कोई कष्ट नहीं हुआ तो वह उड़ ही क्यों गया?

बात जज साहब तक पहुँची तो थोड़ी देर बाद वे बोले—"हम चाहें जितना सावधान रहें, लेकिन हमसे गलतियाँ कभी न हों, ऐसा नहीं हो सकता। माना कि गज्जू सीढ़ी को यथास्थान रखने में आलस्य न करता; तो यह घटना न होती। मगर फिर सवाल उठता है कि घटना कैसे न होती? मेरी राय तो यही है कि तोता स्वयं नहीं उड़ गया, उसे बिल्ली उड़ा ले गई है।"

अन्त में गज्जू की इस असावधानी को लेकर, नमिता और हेमन्त बाबू में भी विचार-विमर्श होता रहा। संयोग से उस समय शरत भी वहाँ उपस्थित हो गया।

नमिता कह रही थी—"गज्जू बड़ा कामचोर होता जाता है।"

इतने में शरत बोला—"ऐसे कामचोर आदमी को तुरन्त निकाल देना चाहिए।"

नमिता ने उत्तर दिया—"निकाल तो देना चाहिए, मगर फिर....।"

अब हेमन्त बाबू बोले—"सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि उसकी जगह पर जो भी आदमी रखा जायगा, इस बात की क्या गारण्टी है कि वह कभी गलती नहीं करेगा, उससे भूलें न होंगी? ऐसी दशा में क्या यह उचित न होगा कि उसको एक वार्निंग दे दी जाय; उससे यह

स्पष्ट कह दिया जाय कि अगर फिर ऐसी कोई असावधानी उससे होगी, उसमें तत्परता की त्रुटि पाई जायगी, तो मजबूर होकर हमें उसको जवाब देना ही पड़ेगा।"

इस प्रकार उस समय गज्जू को सावधान कर दिया गया और फिर यह विषय यहीं समाप्त हो गया।

अब रात के ग्यारह बज रहे थे। बँगले के सभी सदस्य गहरी नींद में डूब चूके थे। एक शरत ही ऐसा था, जो अभी तक सो नहीं सका था।

अधिक रात हो जाने के कारण ठाकुर साहब को हेमन्त बाबू ने आग्रह करके गाँव जाने से रोक लिया था। जिस कमरे में उनके सोने का प्रबन्ध किया गया था, उसमें एक विभागीय तख्ता खड़ा हुआ था, जिसके बीच में एक खिड़की थी। एक ओर ठाकुर साहब लेटे थे, दूसरी ओर शरत। वास्तव में पहले इस कमरे में नमिता और हेमन्त बाबू इच्छानुसार शयन किया करते थे। दाम्पत्य जीवन के वे दिन धीरे-धीरे अब अतीत के अगाध अन्तरिक्ष में मिलते जा रहे थे। हेमन्त बाबू की व्यस्तता इस सीमा तक बढ़ चुकी थी कि उनके साथ नमिता का नैश-मिलन आकस्मिक और स्वेच्छापूर्वक न होकर पूर्वनियोजित होने लगा था। जब कभी कोई ऐसा संयोग आता तो वे दोनों मिलकर समय, स्थान और सुविधा ढूँढ़ लिया करते थे।

इसका भी एक कारण था। हेमन्त बाबू सोचते थे, 'माना कि जीवन के यौनपरक सम्बन्ध बन्द नहीं हो सकते, किन्तु उनकी ऐसी संयोजना तो की ही जा सकती है कि शरत को उनका कभी आभास न मिले!'

उस दिन शरत को नींद नहीं आ रही थी। विभाजन के ठीक ऊपर पंखा इस प्रकार टँगा था कि उसकी हवा दोनों भागों को समान रूप से मिलती थी।

लेटे-लेटे एकाएक शरत ने सुना, ठाकुर साहब सोते-सोते बड़बड़ा रहे हैं।

"गुलाब""मिस गुलाब, नहीं पन्ना""सुनो पन्ना···तुमने कोई भूल नहीं की। भूल तो मैंने···मैंने की। राक्षस मैं हूँ, क्योंकि विलासिता का खून मेरे होठों में लग चुका था···और···तुमको मालूम नहीं, जिस कालका ने तुमको यह दिन दिखलाया""तुम्हें कोठे पर···!""हाँ-हाँ, मैंने उसे रसातल भेज दिया है। उसकी हत्या मैंने की है, प्रीतम ने नहीं। और यह आत्मघात जो तुमने किया, इसकी जिम्मेदारी भी···। आत्मघात तो दरअसल मुझे करना चाहिए था।""मुझे, मुझे, मुझे···। अरे कोई है···प्रीतम जगा पानी देना—पानी।"···मुझे प्यास लगी है, मैं प्यासा हूँ।"

ठाकुर साहब का यह प्रलाप शरत ध्यान से सुन रहा था। यह तो वह समझ गया कि कोई लड़की जिसका असली नाम पन्ना है, आत्मघात कर चुकी है। वह यह भी जान गया था कि यह पन्ना कोई मिस गुलाब है, जिसके साथ उनका कोई निकट सम्बन्ध रहा है।

अभी तक उसको ठाकुर साहब की बातचीत से इतनी ही जानकारी प्राप्त हो सकी थी कि उनका कोई आसामी है, प्रीतम नाम का, जिसने उनके दुश्मन कालका की हत्या की है। अब इस प्रलाप से उसको यह भी विदित हो गया कि इस हत्याकाण्ड के अतिरिक्त मिस गुलाब नाम की एक वेश्या का भी कोई सम्बन्ध ठाकुर साहब से था, जिसने हाल ही में आत्मघात किया था और इतना तो उसको पहले से भी विदित था; क्योंकि उसका समाचार एक स्थानीय दैनिक पत्र में छप चुका था। किन्तु इस प्रलाप के अन्त में ठाकुर साहब ने अकस्मात् जाग कर पीने के लिए पानी माँगा है। हो सकता है सचमुच वे प्यासे हों, उन्हें प्यास लग आई हो।

गज्जू शरत के पलंग के नीचे सदा एक सुराही पानी और गिलास रख जाता था। अतः उसने पूछा—"ठाकुर साहब!"

"हाँ, बेटे?"

"अभी आप कुछ बड़बड़ा रहे थे; फिर पानी के लिए आपने पुकारा था। दे जाऊँ?"

ठाकुर साहब विचार में पड़ गये—'मैंने कुछ कहा था अभी ? क्या शरत ने उसे······ ।'

"अच्छा, मैं खिड़की खोल रहा हूँ, पानी मेरे पास है। अभी लाया।"

शरत ने तुरन्त उठकर स्विच टटोला, लाइट ऑन की, खिड़की खोली और गिलास में पानी लेकर वह उनके पास जा खड़ा हुआ।

ठाकुर साहब ने गिलास अपने हाथ में ले लिया। पर वे सोच में पड़ गये। क्या वह अब तक जाग रहा है ? वह पानी पी रहे थे और शरत सोच रहा था—'जान पड़ता है, इनका जीवन बड़ा रहस्यात्मक है।'

शरत ने गिलास वहीं छोड़ दिया। लौटकर उसने खिड़की बन्द कर ली और फिर बत्ती भी बुझा दी। वह अभी लेटा ही था कि उसने सोचा—'अगर मैंने ठाकुर साहब के प्रलाप की टेपरिकार्डिंग कर ली होती···।' अब वह उस घड़ी की प्रतीक्षा में था, जब ठाकुर साहब पुनः बड़बड़ाना शुरू कर दें।

ठाकुर साहब सोच रहे थे—'प्रीतम की जान अगर मैं न बचा सका, तो फिर मेरे जीवन में कोई हौसला न रह जायगा। पन्ना के आत्मघात का मूल आधार होने का पाप ही मेरे लिए बहुत था। अब प्रीतम को प्राणदण्ड दिलाने का अपराधी भी मैं बन जाऊँगा। लेकिन कालका को मरवा डालने में मैं किसी प्रकार का पाप नहीं देखता। संसार भले ही न माने और न्याय भी चाहे मेरे विरुद्ध ही हो, लेकिन ऐसे अपराधी को समाप्त करवा देने में मैं समाज की भलाई ही देखता हूँ।'

फिर उन्होंने एक दाह का अनुभव किया—'पन्ना की जान चली गई। मेरी अपेक्षा उसमें नैतिक मान्यताओं के प्रति अधिक आस्था थी। काश मैं भी ऐसा कुछ कर सकता।'

सोचते-सोचते अब वे निःश्वास ले रहे थे। थोड़ी देर बाद चिन्तन की धारा वेग के साथ फिर प्रवहमान हो उठी। 'ऐसे जीवन का होगा क्या ? छप्पर हो कि मकान, एकाएक लग जाने वाली आग तो कभी-न-कभी बुझ ही जाती है, लेकिन पन्ना ने आत्मघात करके मेरे अन्तर में जो आग एक बार सुलगा दी है, वह सदा ही दहकती रहेगी।'

फिर वे मन-ही-मन जैसे अलग हटकर अपने आपसे कहने लगे—"नींद नहीं आ रही है, तो करवट बदल कर देखो ठाकुर ! इस पापाग्नि से तुम्हारा उद्धार अब इस जीवन में तो होने से रहा। अब तो रात-दिन तुमको इसी प्रकार जलते रहना है !"

उन्होंने बाईं से दाईं करवट ले ली, चिन्तन का क्रम चलता रहा—'बड़े आश्चर्य की बात है कि शरत बेटे ने मेरी बात सुन ली, लेकिन वह बात तो मैं सुषुप्तावस्था में कह रहा था। इसने कैसे सुन ली ? तब तो सम्भव है कि उसने और भी कुछ सुन लिया हो। कहीं ऐसा तो नहीं है कि···नहीं-नहीं ! खैर सुन भी लिया हो तो कोई हर्ज नहीं। अवसर आने पर जज साहब को मैं खुद ही सब कुछ बता दूंगा। मान-सम्मान की तृष्णा भी अब मुझे नहीं रह गई। जो कालिमा पन्ना ने मेरे मुँह पर पोत दी है···। मगर पन्ना ने क्यों ?···अपराधी तो वास्तव में मैं हूँ। कुत्ता कहीं का···थू !'

मन चाहे जैसा जल गया हो, लेकिन शरीर का धर्म अपनी गति से सतत् अग्रसर होता रहता है।

तो अब हमें सो जाना चाहिए।

लेकिन नीली बत्ती क्या इसी प्रकार जलती रहेगी ?

'जलती रहे, हमारा क्या लेती है। दुःखी और निराश तो कभी होना ही न चाहिए।'

प्रातःकाल शरत और ठाकुर साहब की नींद तब खुली, जब गज्जू दूसरी बार उन्हें चाय के लिए जगाने आया था।

अक्सर ऐसा होता कि बेड-टी लेने के बाद ही शरत नित्यक्रिया में लग जाता। जब निश्चिन्त होकर अन्दर जाने लगता तो वह चहार-दीवारी के पास खड़ा होकर उत्तर की ओर एक दृष्टि अवश्य डाल लेता। गौरी और शरत दोनों में दैनिक वार्तालाप की कोई सुनिश्चित योजना न भी होती, यद्यपि एक दूसरे को देख लेना भी अपने आप में

बड़ा प्रेरक रहता; फिर भी या तो गौरी ही कह देती—"आज रात को मुझे नींद नहीं आयी।" या फिर शरत ही पूछ बैठता—"रात को कै बजे तक पढ़ना चलता रहा ?" कभी पेन की बात कही जाती कि रात को नोट्स तैयार करते-करते पेन हाथ से छूटकर नीचे फर्श पर गिर पड़ा तो उसका निब टूट गया। कभी कह दिया जाता कि बिजली गायब हो गयी थी या स्याही चुक गई थी। फिर आज तो छुट्टी का दिन रविवार है। कभी गौरी ही बतला देती—"मेरे पेन का निब बहुत घिस गया है। हस्तलिपि बड़ी मोटी हो जाती है। लिखने में मन नहीं लगता। तुम्हारा पेन तो काफी पतला है। और नन्हीं लिखावट ही मुझे पसन्द है।" इन बातों का ढंग कुछ इस प्रकार का होता है।

सोचकर शरत मुस्कराने लगता है। यद्यपि गौरी उसकी इस मुस-कान के मर्म को बिल्कुल न समझ पाती थी।

दो साल की बात है, गौरी जब नमिता के यहाँ से ऊन ले आई थी और कावेरी से यह बात छिपी न रह सकी थी, तब उसने कहा था—"शरत के लिए स्वेटर बुनने को ऊन तुझे नमिता दीदी से लेनी नहीं चाहिए थी।" तब सलाई को होंठ से लगाकर गौरी सोचती रह गई थी—'ओः यह बात मेरे मन में क्यों नहीं आयी ? क्या इसका यह अर्थ नहीं कि मेरी वृत्तियाँ अब तक क्षुद्र बनी हैं ? अब क्या किया जाय ? रुपये चाचीजी लेंगी नहीं और अब अगर मैं आग्रह करूँ, तो सम्भव है वे बुरा मानें।'

इसलिए गतवर्ष ज्योंही कार्तिकी पूर्णिमा आई, त्योंही माँ से कहकर उसने शरत के लिए ऊन मँगवा ली थी। नमिता ने स्वेटर देखा, तो वह प्रसन्न तो बहुत हुई; पर साथ-ही-साथ विचार में पड़ गई—'अगर ऐसा कुछ न हो सका, विधि-निषेध ही सामने आ खड़ा हुआ तो ? उनको तो कुछ दिखाई देता नहीं। हालाँकि आपस में जितना हेल-मेल चलता रहता है, उतना ही बहुत है। हम लोगों का जमाना और था।'

वही दिन अब फिर लौट रहे थे। स्मरण आते ही शरत ने चाहा कि वह किसी बहाने से गौरी को पन्द्रह-बीस रुपये दे दे, किन्तु ऐसा कोई संयोग या अवसर उसको सुझाई न दिया कि वह उसे रुपये दे सकता।

फिर यह बतलाना भी उसके लिए एक संकोच की ही बात थी कि किस अभिप्राय से वह उसे रुपये दे रहा है।

माथे पर लटकते हुए सिर के केशों को ऊपर फेंकता हुआ वह सोचने लगा—'लेकिन कोई नहीं जानता कि संयोग कब हमारे बीच में आ खड़ा होगा।'

एकाएक शरत ने जो प्रश्न कर दिया कि रात पढ़ाई के बहाने कै बजे तक जागरण होता रहा, तो गौरी ने पहले नीचे का होंठ दाँत से दबा लिया, फिर नाक थोड़ी-सी सिकोड़ ली और कृत्रिम विरक्ति से कह दिया—"आप से मतलब ?"

शरत ने स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा कि क्या मतलब के बिना कोई बात कभी होती नहीं।

तब तक गौरी ने कह दिया—"घुमा फिरा कर बात करना या सरोवर में मिट्टी डालकर भाग जाना मुझे नहीं आता।"

गौरी ने सावधान होकर वक्ष प्रदेश को अंचल से ढक लिया। फिर वह अपलक मुस्कान-माधुरी बिखरेती हुई बोली—"असल में मैं यह कहने जा रही थी कि···खैर जाने दो।"

शरत ने अब भी कुछ नहीं कहा। तब गौरी बोली—"बात यह है कि तुम बड़े ईर्ष्यालु हो। मैं जब बड़ी रात तक कभी पढ़ती भी हूँ, तो तुम ईर्ष्या से जल उठते हो!"

"तुम मेरे साथ अगर न्याय नहीं कर सकतीं तो अन्याय तो न करो।"

"मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है तुमने मुझको समझने की कभी कोशिश नहीं की। मान लो तुम्हीं बी० ए० फाइनल में टॉप करो, तो मुझसे अधिक खुशी किसे होगी ? ···हाँ, मुझे एक समाचार ने कल सुबह से बहुत परेशान कर रखा है। क्या तुम्हारे ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा ? मेरा तो अजीब हाल हो गया है। कल जब से अखबार देखा है, मैं बड़ी चिन्तित हूँ। बारबार कोई कानों में कहने लगता है—'हम कहाँ जा रहे हैं ?' "

"क्यों ? ऐसी क्या बात है ?"

"अरे वही वो मिस गुलाब के आत्मघात वाला समाचार। तुमने

पढ़ा तो होगा। उसका जो फोटोग्राफ छपा है, उसके फेस कट से तो यही जान पड़ता है कि यह पन्ना नाम की वही लड़की है, जो गर्भ रह जाने के कारण गाँव से भगा दी गई थी।"

आश्चर्य से शरत बोला—"अच्छा ! मुझे तो कुछ पता नहीं, मैं तो पाँच वर्ष की उम्र से ही शहर चला आया था। इसलिए तुम्हारा अनुमान सही हो सकता है। मैं निश्चित रूप से तो कुछ नहीं कह सकता, लेकिन हमारे घर में जो ठाकुर साहब कल रात आये थे, जान पड़ता है, उनका मिस गुलाब से कोई सम्बन्ध रहा है।"

"जितनी बातें प्रकट हुई हैं वे वास्तव में बड़ी भयानक हैं। खैर, जाने दो। कल तुमने पिताजी की जो सहायता की, मैं उसे जीवन भर न भूलूँगी। उनका वेतन आज मिल जायगा और रुपये भी वे दे ही देंगे; लेकिन इससे क्या है ! तुम अगर उसी समय बढ़कर आण्टी से रुपये न ले आते, तो उनकी स्थिति वास्तव में बड़ी दयनीय हो जाती।"

शरत मुस्कराता हुआ बोला—"तुम हमारे सामने पुरखिन बनने की चेष्टा न किया करो। मैं ऐहसान पर विश्वास नहीं करता। मानवी धर्म की बात और है। यों मुझमें भी कम कमजोरियाँ नहीं हैं। कल मैंने तुमको अपना पेन देते-देते अपने आपको जो रोक लिया, इसका बाद में मुझे बड़ा पश्चात्ताप रहा। इस वक्त मेरे पास दो पेन हैं, एक शेफर्स दूसरा पारकर। शेफर्स नया है, पारकर पुराना। तुम जो चाहे ले लो।"

"तुम सचमुच मन से ऐसा कह रहे हो, या केवल मुझे प्रभावित करने के लिए चारा डाल रहे हो ? मुझसे कभी किसी प्रतिदान की आशा न करना !"

गौरी को जली-कटी सुनाने में बड़ा मजा आता था।

शरत जानता था—यह तो एक शैली है इसकी। मुसकराता हुआ बोला—"अच्छा बाबा, नहीं करूँगा। अब तो खुश हो !"

बात कहकर शरत पुनः गम्भीर हो गया।

"तो फिर मैं पुराना पैन क्यों लूँ ?"

"अब तो मन-ही-मन मैंने चुनाव कर दिया है। तुम्हें मेरा पुराना

पारकर ही लेना होगा। उसकी काली बाडी तुम्हारे गौर वर्ण के साथ खूब फबेगी!"

"देखो, डोरे मत डालो मुझ पर। मुझे मालूम है, माधुरी के साथ तुम्हारी खूब पटती है। उस दिन मेरे यहाँ होकर तुम फिर उसके घर जरूर गये होगे।"

"तुम मुझे बहुत गलत समझती हो गौरी!"

बंगले की जो दीवार वासुदेव बाबू के घर की ओर थी, उसमें रक्त-वर्ण फूलों की एक घनी बेल छाई हुई थी। उसी के पास अनार का पेड़ था। शरत उसी स्थान पर खड़ा बातचीत कर रहा था, वहीं केले का भी एक पेड़ था। जिसकी घौद शरत के ऊपर लटक रही थी।

गौरी ने सहज भाव से पेन को, थोड़ा-सा मुड़ कर, ब्लाउज में खोंस लिया। जब वह घर की ओर घूमकर बढ़ने लगी, तब उसे पुनः शरत के वे शब्द याद हो आये, "तुम पगली हो गौरी, तुम्हें पता नहीं···।"

तत्काल उसकी गम्भीरता चिन्ता में परिणाम हो गई, 'कहीं ऐसा तो नहीं है कि शरत का कहना ही अन्त में चरितार्थ होकर रहे!'

जब वह घर के अन्दर पहुँच गयी तो उसने देखा कि चौके में अँगीठी पर रखी हुई दाल में उबाल आ रहा है और चूल्हा बुझता जान पड़ता है।

गौरी का लोम-लोम जैसे कम्पित हो उठा—'मैंने इनसे यह क्यों कह दिया कि मुझसे कभी किसी प्रतिदान की आशा न करना।

'पहले तो प्रतिदान की बात मेरी जिह्वा पर आयी क्यों? क्या मैं उसे मन में रख नहीं सकती थी?

'मगर मैंने यह भी कहा था कि मुझे प्रभावित करने के लिए चारा डाल रहे हो। फिर यह भी कहा था—देखो, डोरे मत डालो मुझ पर!'

वह अपने कमरे में पहुँचकर पलंग के बिस्तर पर औंधी लेट रही। परीक्षा उत्तरोत्तर निकट आती जाती है और उसका ध्यान प्रतिदान की स्थितियों के मर्म, विलय और विकलता पर चला जाता है।

तकिये को उसने अपने वक्ष से लगा लिया है और वह सोचती है कि यह मिलना-जुलना ही सारी गड़बड़ी उत्पन्न कर देता है।

ठाकुर साहब अब द्वार-मंच की सीढ़ियाँ उतरकर फाटक की ओर बढ़ रहे थे और हेमन्त बाबू सिगरेट का कश लेते हुए कह रहे थे—"वैसे मुझे कोई विशेष आशा तो नहीं है, फिर भी मैं कोशिश करूँगा।"

शरत फिर विचार-लीन हो गया—'पन्ना गाँव की लड़की थी। प्रेगनेण्ट हो जाने पर उसे गाँव से भागना पड़ा था। फिर वह मिस गुलाब बन गयी। ठाकुर साहब उसके यहाँ जिस रात गये, उसके दूसरे दिन मिस गुलाब ने आत्मघात कर लिया।'

अब शरत को ठाकुर साहब के प्रलाप के शब्द याद आ रहे थे—'भूल तो मैंने की है। राक्षस मैं हूँ। यह आत्मघात जो तुमने किया, इसकी जिम्मेदारी भी ···।'

'तो मिस गुलाब के रूप में उनका पन्ना से जो यौन-सम्बन्ध हुआ, उसी में क्या कोई भूल हो गयी कि उसे आत्मघात करना पड़ा? क्या इसके मूल में कोई ऐसी बात है, जो यह प्रकट करती है कि दोनों कभी पूर्व परिचित थे। परिचित ही क्यों, उनमें कोई ऐसी निकटता थी जिसे सहवास के बाद गुलाब सहन न कर सकी थी!

'अस्तित्वों और आस्थाओं के द्वन्द्व की ऐसी हिंसक लीला! आज भी सभ्यता ने हमें यही दिया है!

'किन्तु ठाकुर साहब का इसमें क्या दोष है? मिस गुलाब के रूप में अगर वे पन्ना को न पहचान सके, तो गुलाब के आत्मघात की जिम्मे-दारी उन पर कैसे आ सकती है?

'परन्तु गुलाब ने अन्त में उन्हें पहचान ही लिया। उसका आत्मदान इसी घटना के परिणाम-स्वरूप हुआ है।'

ठाकुर साहब चले गये थे, लेकिन उनका सामान—बेडिंग और सूट-केस—पड़ा रह गया था!

: १२ :

मोहनबाबू सौन्दर्य के बड़े पारखी तो थे ही, मनस्वी भी कम न थे। वे मन में ऐसी बातें भी सुरक्षित बनाये रखते थे, जो भीतर से विस्फोट के लिए कुलबुलाती रहती थीं। यहाँ तक कि उनके सम्बन्ध में जबान हिलाना भी उनके लिए कठिन रहता था। उनका सिद्धान्त था कि हाजमा दुरुस्त रहना बड़ा जरूरी है; चाहे खाने से सम्बन्धित हो और चाहे गोपनीय प्रसंगों से अथवा घटनाओं में। खाना न पचा तो बीमार पड़े और बात न पची तो गये काम से।

धन्धे में वे कलाकार थे और तबला बहुत अच्छा बजाते थे। तबला-वादन के समय इस बात का वे विशेष ध्यान रखते थे कि तबले पर उन की अंगुलियाँ भले ही चलती और उठती-गिरती रहें, लेकिन अंग-प्रत्यंग अपनी वाद्य कला पर झूम उठने के बजाय शान्त और स्थिर बना रहे। अपनी वाद्य कला पर वे विश्वास पूरा रखते थे, लेकिन उस पर मोहित होकर झूम उठना उन्हें स्वीकार न होता था। आत्मश्लाघा में वे ओछापन देखते थे और आत्म-विज्ञापन से उन्हें चिढ़ थी।

पन्ना जिस दिन नाचना सीख रही थी, उसी दिन उन्होंने एक बात मन-ही-मन स्थिर करके गाँठ में बाँध ली थी। वास्तव में वे एक संकल्प कर बैठे थे। वे पन्ना के सौन्दर्य पर आसक्त थे। यह आसक्ति एक प्रकार के सर्वस्व समर्पण में परिणत हो गई थी। रूप-लिप्सा की उनमें कमी न थी किन्तु उनके आत्मदान की प्रक्रिया तनाव से रिक्त नहीं थी। इसी लिए वे पन्ना के रूप-लावण्य पर जब कभी मुग्ध हो जाते तो अपनी विकलता कभी प्रकट नहीं करते थे। उनका संकल्प था कि पन्ना को प्राप्त करने का प्रस्ताव मेरी ओर से कभी न होगा। एक दिन वह घड़ी अपने आप आ जायगी कि पन्ना सदा के लिए मेरी हो जायगी।

बहुत दिनों से मोहनबाबू उस घड़ी की प्रतीक्षा में थे। और वे सोचते थे कि उनकी अभिलाषा पूर्ण होने का दिन आ गया है।

पन्ना एक मर्यादाशील क्षत्रिय घर की लड़की थी। उसके पिता अभी तरुण थे। एक ट्रक से कुचल कर उनकी मृत्यु हो गई, तब अवसर देखकर खेतपात और बाग उसके ताऊ ने अपने नाम करवा लिया। परिणाम यह हुआ कि पन्ना की माँ को ताऊ के यहाँ दासी कार्य करने पर विवश होना पड़ा। माँ प्रकृति की बड़ी तेजस्विनी थी। एक तो बड़ी जिठानी की कपट और धूर्तता भरी हुई चिकनी-चुपड़ी बातें उसे सहन न होती थीं, दूसरे पन्ना के छोटे भाई को उन्होंने पेड़े में जहर खिलाकर मरवा डाला था।

पहले तो इस घटना पर पन्ना की माँ को विश्वास न हुआ किन्तु कालान्तर में चूहे मारने की दवा जो लड़का बाजार से ले आया था, जब उस लड़के ने स्वयं ही बताया कि बड़ी चाची ने यह दवा मुझी से मँगवाई थी तब वह मानी। मंगल के बाजार का दिन था और अलग से उन्होंने आध सेर पेड़े भी मँगवाये थे और कहा था कि हनुमानजी का प्रसाद बाँटना है। पेड़े छोटे-छोटे बने थे और पास-पड़ोस में भी बांटे गये थे।

लड़के ने पन्ना की माँ को यह बात केवल इस अभिप्राय से बतलाई थी कि पन्ना के सम्बन्ध में उसे पहले से सावधान हो जाना चाहिए क्योंकि अब बारी उसी की है। उस लड़के का यह भी कहना था कि चाची बार बार का झंझट नहीं मोल लेगी। पन्ना और तुम्हारी जान एक ही दिन जायगी और बड़ी चाची प्रचारित यह करेगी कि पहले माँ ने बदनामी के भय से बेटी को जहर खिलाया और जब वह बेहोश हो गई तो उसने स्वयं भी जहर खा लिया।

पन्ना की माँ ने जेठानी का मकान छोड़ दिया था और वह पास के खंडहर में झोपड़ी डालकर अलग रहने लगी। अब माँ को इधर-उधर सेवा-टहल का जो कार्य मिल जाता था भोजन उसी से चलता। पन्ना उन दिनों स्कूल में पढ़ती थी। गरीबी के वे दिन बड़ी मुश्किल से कटते थे। जब घर में अनाज चुक जाता तो पन्ना कालका के यहाँ से आटा-दाल ले आती। कालका एक वर्ष पूर्व विधुर हुआ था और पन्ना को सामान उधार देने में उसे बड़ा उत्साह रहता। इस प्रकार उसकी

सुषुप्त वासना को एक प्रेरणा मिलती थी। निरन्तर वह उसकी संयोजना में लगा रहता था।

कालका ने पन्ना को वचन दिया था कि उसे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता पड़ी तो बाद में हम लोग किसी दूसरे नगर में जाकर प्रेम से रहेंगे और चैन की वंशी बजायेंगे।

लेकिन पन्ना जब उस कोठे पर गई, जहाँ मोहनबाबू की बैठक-उठक थी, तो उसको धीरे-धीरे सभी बातों का परिचय मिल गया। चार ही महीने बाद उसके बच्चा हो गया था और उसे अच्छे से अच्छा खाना मिलता, साथ ही मिठाइयाँ भी, दूध-दही-रबड़ी इच्छानुसार मिलती। तम्बाखू खाने की आदत भी उसने डाल ली थी।

पन्ना यह तो न जानती थी कि वह बहुत सुन्दर है, किन्तु नृत्यकला में कुशलता प्राप्त होने पर जब वह गायिका और नर्तकी बन गई और मुजरा सुनने वाले उसकी प्रशंसा के गीत गाने लगे तब वह अनुभव करने लगी कि संसार में सौन्दर्य का बड़ा महत्व है। यदि संयम के साथ उसका उपयोग किया जाय तो ऐश्वर्य के अतिरिक्त अपने ढंग का सम्मान भी इस पेशे में मिलता है और मिल सकता है।

मोहनबाबू की यौन-लिप्सा सामान्य कोटि की थी। इस विषय में वैविध्य के भी पक्षपाती वे न थे। अतः उनका चरित्र बहुत पतनशील न था। एक स गृहस्थ की तरह मर्यादाशील रह कर जीवन व्यतीत करना ही उनका लक्ष्य था। वे चाहते तो विवाह कर सकते थे, लेकिन तत्कालीन विवाह प्रणाली से उन्हें बड़ी विरक्ति हो चुकी थी। वे उस ढंग की जीवन-संगिनी रखने के पक्षपाती थे जो संगीत और नृत्य दोनों कलाओं में निपुण हो। सिनेमा देखने के बड़ेशौकीन थे। इस कारण वे यह मानने लगे थे कि भंगिमाओं के माध्यम से मनोभावों की जो अभि-व्यक्ति होती है उसका प्रभाव शारीरिक सौष्ठव की अपेक्षा अधिक पड़ता है।

और यह तो एक संयोग की ही बात थी कि पन्ना में शारीरिक सौन्दर्य की कमी न थी। फिर अब तो वह गायन और नृत्य दोनों कलाओं में दिनानुदिन प्रसिद्धि पाती जाती थी।

उन दिनों जाड़ा पड़ने लगा था और दूसरे दिन प्रातःकाल मौनी अमावस्या का पर्व था। एक दिन सारी बातें निश्चित हो गईं।

यों तो ठाकुर दिलदार सिंह बड़े ही प्रेमी और रसिक जीव थे लेकिन उनके प्रेम की परिभाषा विचित्र थी। इस सम्बन्ध में स्थायित्व के पक्षपाती वे कतई न थे। उनकी मान्यता थी कि हर एक क्षण का अलग-अलग अस्तित्व होता है। इसलिए वे जिस किसी नगर में जाते वहाँ सदा इस टोह में बने रहते कि क्यों न किसी सर्वथा नवीन और असाधारण व्यक्तित्व की लड़की से सम्पर्क स्थापित किया जाय तो कुछ मजा आये, भले ही वह रूप जीवा हो। फलतः वे कानपुर के एक पुराने और बदनाम मौहल्ले में जा पहुँचे, जिसमें कभी रूप का बाजार लगता था और सायं-काल वत्ती जलते-जलते संगीत, नृत्य और रूप-लिप्सा का जश्न शुरू हो जाता था।

तो ठाकुर साहब उस समय एक दुकान पर खड़े हुए पान खा रहे थे। उनकी वेश-भूषा पुराने रईसों जैसी देखकर कल्लन दलाल उनके निकट आकर धीरे से बोला—"हुजूर कहीं चलेंगे? वह चीज है कि तबीयत खुश हो जायगी।"

ठाकुर साहब ने उससे पूछा—"रात को ठहरने का भी प्रबन्ध है?"

कल्लन बोला—"हुजूर, अब तो बस मुजरा भर आप सुन सकते हैं। बाकी तो इन गांधी टोपी वालों ने सब खत्म कर दिया। मगर इस से क्या? चलिए एक दफे देख तो लीजिए। आँख मिल जाने पर मुरव्वत आ ही जाती है। फिर मिलने का रास्ता भी निकल आता है।"

ठाकुर साहब जब कुछ न बोले तो कल्लन बोला—"पसन्द आने पर ही इनाम दीजियेगा। तबीयत लगे तो रुकियेगा, वर्ना और जगह ले चलूंगा।"

फलतः ठाकुर साहब सोचने लगे—'हर एक प्रयोग में साहस की आवश्यकता होती है।'

इस प्रकार कल्लन ठाकुर साहब को गुलाब के कोठे पर लिवा गया। वहाँ उसका मुजरा चल रहा था। कई तरह के लोग बैठे हुए थे। दिल-

दार सिंह ने कल्लन को दस का नोट देते हुए कहा—"एक अद्धे का प्रबन्ध करो उस्ताद !"

वेशभूषा देखकर कंगनाबाई ने आगे बैठने का आग्रह किया। इस प्रकार ठाकुर साहब भी उस बैठक में शामिल होकर मुजरा सुनने लगे। बार-बार उनका ध्यान गुलाब के मुख पर चला जाता था। उसकी आँखें उन्हें प्यारी लग रही थीं। होठों पर पान की लाली कुछ कहती जान पड़ती थी। सहसा उन्हें ध्यान आया कि वह बहुत दिनों से इस नगर में रहते हैं, कभी ऐसा अवसर नहीं मिला था कि······।

थोड़ी देर में गुलाब ज्योंही ठाकुर साहब के सामने आई, ठाकुर साहब उसे एकटक देखते रह गये। उस समय वह एक फिल्मी गीत गा रही थी—'यह रात फिर न आयेगी, जवानी बीत जायेगी।'

तभी बोतल आ गयी। इतने में ज्यों ही गाना खत्म हुआ ठाकुर साहब गुलाब के सामने बोतल रखते हुए बोले—"अब तुम्हीं गिलास में डाल दो गुलाब !" गुलाब ने उत्तर दिया—"पीने को मैं मना नहीं करती हुज़ूर, मगर नशे में निकली बात आदमी बड़ी जल्दी भूल जाता है।"

ठाकुर साहब बोले—"दिल की भी आँखें होती हैं गुलाब ! मगर दिमाग का उनको पता नहीं चल पाता।"

गुलाब सोचती रह गई। यह ठाकुर साहब ने कह क्या दिया !

थोड़ी देर बाद ठाकुर साहब ने पहला घूँट कण्ठगत करके दस का एक नोट गुलाब की ओर बढ़ा दिया।

दस मिनट बाद उसका गाना शुरू हुआ—'मर जायँ तो अच्छा हो।' ठाकुर साहब ने फिर एक दस का नोट उसके आगे बढ़ा दिया। पीते-पीते जब गिलास खाली हुआ और ठाकुर साहब नशे में धुत्त हो गये तो उन्होंने इशारे से कंगनाबाई को अपने पास बुलाकर उसके कान में ऐसा कुछ फुसफुसा दिया कि वह मुसकराने लगी। उसने धीरे से उत्तर दिया, जिसके जवाब में सौ-सौ के पाँच नोट अन्टी से निकालकर ठाकुर साहब ने उसकी ओर बढ़ा दिये।

इतने में कल्लन बोल उठा—"और हुज़ूर मेरा इनाम ?"

ठाकुर साहब ने एक पाँच रुपये का नोट उसकी ओर भी बढ़ा दिया।

दो घंटे बाद ठाकुर साहब बोले—"अब हमारे खाने का प्रबन्ध करो। रुपये पर्स से निकाल लो।"

थोड़ी देर बाद ठाकुर साहब जब खाना खा चुके तो गुलाब उनको हाथ धुलाने के लिए एक ऐसे रास्ते से ले गई, जहाँ मार्ग में एक अलमारी के अन्दर भगवान कृष्ण की एक मूर्ति रक्खी हुई थी। फिर उसके आगे करताल बजाकर नाचती हुई मीरा का चित्र था।

ठाकुर साहब उसको देखकर बोले—"तुम और भगवान? पूजा-पाठ का यह ढकोसला तुम्हारे यहाँ भी चलता है?"

बात अभी पूरी नहीं हुई थी कि गुलाब ने उत्तर दिया—"आप समझते हैं कि हम लोग अब मनुष्य नहीं रह गये! हमारे अन्दर नारी का हृदय ही नहीं रह गया या हमारे जीवन में कहीं कोई दुःख-दर्द बाकी नहीं बचा? मगर आपको इन सब बातों से मतलब? आपकी भी दिल-जोइयाँ हो गई! आप यह सब कर करा के कल ही मन्दिर में जाकर भगवान के आगे हाथ जोड़ेंगे। अपने पापों की शान्ति के लिए गंगा-स्नान करेंगे। पर हम जो एकान्त में बैठकर, दस-बीस मिनट के लिए, अपने को भूलकर भगवान के चरणों में मत्था टेक भी लेंगीं तो यह ढकोसला हो जायगा! हम यहाँ कैसे किन मजबूरियों में आ फँसे इसको आप क्या जानें? चलिए, चलिए, हाथ धोइए सेठ जी, कहीं घर पहुँचने में देर न हो जाय आपको।"

ठाकुर साहब सोचने लगे—कल्लन ठीक कहता था—मैंने किसी वेश्या को इस रूप में न कभी देखा था और न ऐसा तीखा जवाब पाया था।

ठाकुर साहब ने बांये हाथ से दांये हाथ का कुर्ता कोहनी तक समेट

लिया था। गुलाब उनके हाथ धुला रही थी। इसी समय उसकी दृष्टि जो दाँये हाथ की कलाई पर पड़ी तो उसने देखा कि उसमें जो नाम गुदा हुआ है, वह उस लड़के का है जो बचपन में उसका चचेरा भाई था !

फिर ठाकुर साहब तो दो-चार ही मिनट में चले गये। लेकिन गुलाब की दशा चिन्ताजनक हो उठी।

गुलाब को वे दिन याद हो आये जब वह पन्ना थी—पिता यह स्वप्न देखते-देखते मर गये कि मैं अपनी पन्ना का विवाह किसी ऐसे जमींदार के यहाँ करूँगा, जहाँ वह पलँग पर बैठी-बैठी हुकूमत करेगी। मैं उस समय आठवीं कक्षा में पढ़ती थी और अपने दरजे की लड़कियों पर मेरा इतना अधिक प्रभाव था कि कई सहेलियाँ तो शब्दार्थ और भावार्थ पूछने के लिए मेरे घर आया करती थीं। फिर अचानक मेरा भाग्य पलटा खा गया। पन्ना की आँखों में आँसू आते-आते रुक गये। ध्यान आया—संसार का सुख पाने की यह जितनी भी लालसा है, बस यही तो पाप है। और गुप्त पाप का पश्चात्ताप मरते दम तक भला कहीं भूल सकता है !

सोचती हुई पन्ना औंधे मुंह उसी पलँग पर जा गिरी जिस पर अभी थोड़ी देर पहले वह दिलदार सिंह के साथ अपना सर्वस्व लुटा चुकी थी।

सिसकियाँ लेती हुई अब वह सोच रही थी कि अपनी इस दुर्दशा से तो यह कहीं अच्छा होता कि छोटे भैया की भाँति बड़ी चाची, अम्मा और मुझको एक साथ समाप्त कर देतीं।

हृदय में ज्वाला की लपटें थीं, आँखों में आँसू। सोचने का क्रम जारी था—फिर मैं कालका के जाल में जा फँसी। सत्यानाश हो उस का जिसने मुझको भरोसा दिलाया था कि तुम फिकर मत करो। इतनी जल्दी ऐसा कुछ नहीं होता। उम्र पाने पर सब कुछ होता है और तुम्हारी अभी उमर ही क्या है ! दुःखद स्मृतियाँ बिना बुलाये आ जाती

हैं। हम चाहे जितनी चेष्टा करें कि वे न आयें। मगर वे तो आती हैं—घूम-फिर कर आती ही रहती हैं।

हाय फिर बच्चा मेरे पेट में आया, कालका ने इस कंमन बाई के हाथ मुझे बेच दिया। फिर तो नरक का द्वार ही मेरे लिए खुल गया। मुझे नाच-गाना सिखाया गया। और अब जो मेरे हुस्न और नाजो-अन्दाज के ऊपर सैकड़ों रुपये निछावर होने लगे तो एक यह दिन भी आ पहुँचा। हाय मैं कितनी गलती पर थी। हमारा मुजरा सुनने के लिए ऐसे लोग भी आते हैं जिनका कहना है कि दुनिया के सारे कला-कार सौन्दर्य-भोग के मामले में एक हैं। एक ही थैली के चट्टे-बट्टे। कला के ये उपासक यौनतृप्ति के मामले में नैतिकता का कोई बन्धन ही नहीं मानते ! मैं किस खेत की मूली हूँ ?

लेकिन आज मेरे लिए सभी आदमी जानवर हो गये। आदमी की पहचान ही मेरी आँखों से ओझल हो उठी। हालांकि शक तो मुझे पहले भी कुछ-कुछ हुआ था, लेकिन मैं उस समय पन्ना थी और ये दिलदार भैया। पढ़ने के सिलसिले में शहर में चले आये थे। उस समय उनके चेचक भी तो न निकली थी। और शराब के नशे में तो वे पहले ही से थे।

सिसकियाँ लेती हुई वह उठकर बैठ गई और भगवान कृष्ण की मूर्ति के सामने जा खड़ी हुई। अब अपना लोम-लोम उसे जलता हुआ जान पड़ता था। एक-एक पग इतने धीरे से पड़ रहा था और भावनाओं के ज्वार इतनी तीव्रता से उठ रहे थे कि वह सोचती थी कि ऐसा कुछ नहीं हो सकता कि भूकम्प आ जाय और मैं इसी समय धरती में समा जाऊँ।

उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि अन्तरिक्ष से कोई कह रहा है कि अब पछताने से क्या होता है ? पतन की सीमा तुमको देखनी थी, सो देख ली। अब तुम्हारे लिए इस धरती में कहीं स्थान नहीं है। अब तो कुशल इसी में है कि तुम सदा के लिए दिलदार भैया की हो जाओ। आँखें खोलकर देखो तो पता चलेगा कि इस दुनिया में सब कुछ होता है। यहाँ हर आदमी जानवर है। वह भी आदमी ही होता है जो इस दुनिया को समझने के सिलसिले में अपनी कोई कोरकसर बाकी नहीं रखता। लेकिन आदमी जब

सब तरह से पराजित और असहाय हो जाता है, तब उसे भगवान की याद आती है।

वह भी भगवान कृष्ण की मूर्त्ति के सामने खड़ी थी और अब उसने उनके चरणों में मत्था टेक दिया था। आँसू बहते रहे और वह रोती रही। आँसुओं से शब्द बनते थे, शब्दों से स्वर निकलता था। स्वरों से एक ध्वनि निकलती थी।—तुम तो पतित-पावन कहलाते हो, तब तो तुम्हारी शरण में आने वाले के लिए भी परित्राण का कोई-न-कोई मार्ग निकल आता होगा।

—बोलो प्रभू, मेरे लिए तुम्हारी क्या आज्ञा है? तब सहसा वह उठकर बैठ गई। टकटकी लगाकर भगवान के नेत्रों की ओर देखती रही। उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि भगवान कुछ आज्ञा तो करने वाले हैं, पर कर नहीं पा रहे हैं।

इसी समय उसने देखा कि पूजा की पावन घड़ियों में उसने स्वयं गुलाब के जो अछूते फूल उनके ऊपर चढ़ाये थे, वे अपने आप खिसक कर नीचे गिर पड़े हैं। ओः तो भगवान का अभिप्राय शायद यह है कि मेरी पूजा उन्हें स्वीकार नहीं है।

वह एकदम से उठकर खड़ी हो गई। ठीक तो है! मेरी पूजा उनको क्यों स्वीकार हो? जो व्यक्ति आत्मा का स्वर नहीं पहचानता, वह एक दिन इसी गति को प्राप्त होता है। एक दिन उसे रोना ही पड़ता है। —पहले दिन कालका को भी मैंने यही जवाब दिया था कि नहीं, ऐसा कुछ नहीं होगा। मैं तुम्हारी मिठाई-इठाई का यह दौना अभी सड़क पर फेंक दूंगी। मगर उसने मुझे फुसलाते हुए कहा था—'पन्ना यह मत समझना कि मैं तुम्हारे साथ कोई पाप करूँगा।' लेकिन फिर मुझे न जाने क्या हो गया कि मैं उसके झाँसे में आगई और मैंने रसगुल्ले खाना स्वीकार कर लिया। उस समय कौन जानता था कि इन्हीं रसगुल्लों के प्रलोभन में पड़कर मैं लुट जाऊँगी।

और तब मैं लूट ली गयी।

मुझे यह दिन क्यों देखना पड़ता, अगर मैं उसके धोखे में न आ जाती।

फिर अगर मेरे घर में खाने को होता, तो मैं आटा-दाल उधार लेने के लिए उसके यहाँ भला क्यों जाती ?

दुनिया के सारे खेल निराले हैं। एक ओर तो यह गरीबी हमारी लाज लुटवा लेती है दूसरी ओर ये पुजारी लोग कहते हैं कि भगवान गरीबों को ही अपना प्यार देते हैं।

एकाएक उसने आँसू पोंछ डाले और उसके मन में आया—उस दिन भी मैं ना-ना करती रही। पर तब तक कालका मेरे साथ बलात्कार कर बैठा !

—तो मेरा दोष है कहाँ ? मैंने पाप किया कब ? लेकिन इतने पर भी भगवान मेरी रक्षा कर सकते थे। और ये तुम, जो आज मेरी पूजा के फूल स्वीकार नहीं कर रहे हो, क्या मेरी रक्षा नहीं कर सकते थे ? फिर इस प्रकार की गलती से क्या सभी लड़कियों के गर्भ रह जाते हैं ? हाय ! तुमको मेरी दुर्दशा पर जरा भी दया न आई ?

लानत है ऐसी जिन्दगी पर ! अच्छा तो लो मैं तुम्हारी इस मूर्ति के सामने बैठकर जहर खाऊँगी।

चिन्तन के इसी विस्फोट के साथ पन्ना जो कमरे में आई तो क्या देखती है कि मोहनबाबू तकिये पर सिर रखे हुए द्वार की ओर एकटक देख रहे हैं। एक हाथ सिर के नीचे है और दूसरा पास रक्खे तबले पर।

मोहनबाबू का यह नित्य का कार्यक्रम था। कौन आता है और कौन जाता है, आने-जाने वालों की अपनी-अपनी किस-किस प्रकार की सीमाएँ हैं ? और उन सीमाओं के साथ उनका निज का सम्बन्ध कहाँ तक है ? यदि उनके साथ उनका कोई संघर्ष है, तो उसके निर्वाह की भी कोई सीमा है या नहीं ? इससे उन्हें सरोकार न था।

मोहनबाबू परिस्थितियों के साथ झुकने और उनसे समझौता करने के अभ्यासी थे। ऐसा भी नहीं है कि उनको क्रोध, क्षोभ, मोह और ग्लानि न होती हो। धीरे-धीरे वे इस परिणाम पर पहुँच रहे थे कि काजल की इस कोठरी में पन्ना का जीवन नष्ट हो रहा है। वे ये भी अनुभव कर रहे थे कि यदि निकट भविष्य में, इस प्रकार के पतित जीवन से, उसे मुक्त न किया गया, तो उसका दुष्परिणाम वह तो भोगेगी ही, हो सकता

है, मुझे भी भोगना पड़े। इसीलिए वे अवसर की प्रतीक्षा में रहते थे। लेकिन उनकी आकांक्षा थी कि मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा पन्ना ही प्रकट करे। यद्यपि वे यह अनुभव करते थे कि यह भी एक प्रकार की दुर्बलता ही है कि मुक्तिपथ जैसे महत् कार्य के लिए भी यह सोचा जाय कि पन्ना ही प्रथम प्रेरक बने, तभी कोई बात बन पायेगी। श्रेय की प्राप्ति में भी जो व्यक्ति चाहता है कि दूसरा ही पहले म्याऊँ का ठौर पकड़े, वह मानवता जैसी महान् वृत्ति की भी उपेक्षा और अवमानना करता है। इसी कारण कभी-कभी उनके मन में आता था कि मुझे पखावजी होने और कलावन्त कहलाने का मोह त्यागकर इस गली-कूचे और मकान को सदा के लिए नमस्कार कर लेना चाहिए। किन्तु ऐसा निश्चय करने के अनन्तर ज्यों ही पन्ना से भेंट हो जाती त्यों ही उसकी रूपसज्जा को विमुग्ध भाव से देखकर उनका यह निर्णीत संकल्प भी विकल्प का रूप धारण कर लेता था। धीरे-धीरे यह स्थिति इतनी आगे बढ़ गई थी कि वे पन्ना का मुँह देखते थे और उसकी भाव-भंगिमाओं के माध्यम से उसका मनोभाव जानने और परखने की चेष्टा में ही रत रहने लगे थे।

ज्यों ही पन्ना बाहर आई, त्यों ही मोहनबाबू की दृष्टि उसके मुख पर जा पड़ी। सहसा आश्चर्य में पड़ गये। दुःख की वेगाकुल अधिकता के कारण उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे और सिसकियाँ भीतर समा नहीं पा रही थीं। पर मोहनबाबू जीवन की कटुता का निरीक्षण इस सीमा तक कर चुके थे कि भावुकता के स्थान पर बुद्धिमत्ता की ओर झुकना ही वे श्रेयस्कर समझते थे। पन्ना को रोता हुआ देखकर एकाएक उनके मुंह से निकल गया—

"क्यों ? क्या हुआ ?"

अब रात के बारह बजकर तीस मिनट हो चुके थे। साजिन्दे पहले ही जा चुके थे। नौकर और दलाल जहाँ-तहाँ लुढ़क कर सोते हुए खर्राटे भर रहे थे।

पन्ना मोहनबाबू के पास जा बैठी। उसकी आँखों से आँसू टपटप गिर रहे थे। उसी समय पन्ना बोली—"मैंने कई बार आपसे कहा कि इस तरह का जीवन मुझे नहीं चाहिए।" उसका अभिप्राय था—जिसमें

मुझे हर घड़ी केवल पैसे के नाम पर झुकना पड़ जाय और मेरी रुचि और तुलनात्मक जीवन-मूल्यों में चुनाव का कोई महत्व ही न रह जाय।

पन्ना मोहनबाबू से आशा करती आरही थी कि जब कभी अपनी यह समस्या मैं उनके सामने रखूंगी, तब उनका सहारा मुझे अवश्य मिलेगा।

इसका एक कारण था। अन्य लोगों की भांति मोहनबाबू ने उसे प्राप्त करने का प्रस्ताव अब तक नहीं किया था। लेकिन पन्ना जानती थी कि उनका प्यार मुझे प्राप्त है, वे मुझे प्राणपण से चाहते हैं। इसलिए पहले तो एकाएक उसने आँसू पोंछ लिये, फिर कुछ सावधान होती हुई बोली—"अब आप मेरे लिए वही चीज ला दीजिए।"

मोहनबाबू ने उत्तर दिया—"कौन सी चीज ?"

तब पन्ना बोली—"मैं अक्सर देखा करती हूँ कि नारी न रहकर मैं एक गुलाम औरत बन गई हूँ जिसकी रुचियों का कोई महत्व नहीं रह गया है। जिस-तिस के साथ जिबह कर देने के लिए मुझे पाला गया है। वध के समय जानवर को तो इतनी छूट होती है कि वह एकबारगी ही मुक्ति पा जाता है। लेकिन मेरी स्थिति इससे भिन्न है। मेरी एक-एक बोटी नित्य काटी जाती है। इसलिए मैंने आज यह तय कर लिया है कि या तो मैं जहर खाकर मर जाऊँगी या और किसी तरीके से आत्मघात कर लूंगी। ऐसा भी हो सकता है कि जब कभी मौका पाऊं तो फांसी लगा-कर सदा के लिए मुक्त हो जाऊँ।"

मोहनबाबू यकायक कोई उत्तर न दे सके। तब पन्ना बोली—"आपको मालूम है कि ऐसा कई बार हो चुका है। और आज तो आत्मा से तो मैं पूरी तरह से मर चुकी हूँ। अब यह मैं नहीं, मेरी लाश की विकलता बोल रही है।"

मोहनबाबू जानते थे कि एक दिन ऐसा आ सकता है। उन्होंने उत्तर दिया—'यह तुम आज क्या कह रही हो पन्ना! तुम समझती हो कि जीवन इतना सस्ता है कि जब तुम चाहो, इसे समाप्त कर दो? तुम समझती हो कि सब कुछ अपने ही हाथ में है? विषपान करने वाले आदमी क्या सदा मर ही जाते हैं? कुये में गिरकर जान देने वाले हों

अथवा गंगा में डूबकर प्राण देने वाले प्राणी, तुम्हें मालूम होना चाहिए, भगवान की इच्छा बिना वे भी मर नहीं पाते।"

पन्ना ने उत्तर दिया—"ऐसा मत कहो मोहनबाबू ! मेरी आन्तरिक पीड़ा को समझने की चेष्टा करो। तुमको मालूम है कि मैं कैसे-कैसे सपने देखा करती थी। मैंने तो कभी तुमसे कुछ छिपाया भी नहीं।"

पन्ना एक-एक बात कहती जाती थी और बीच-बीच में रोती भी जाती थी, "मैंने कई बार आपसे कहा कि ऐसी जलील जिन्दगी में रहना अब मेरी बर्दाश्त के बाहर हो चुका है। मैं बहुत सामान्य जीवन चाहती हूँ, लेकिन प्रतिष्ठा के साथ। खाने को रबड़ी-मलाई और पहनने को हीरे-जवाहिरात मुझे नहीं चाहिए। मैं ऐसी जिन्दगी पर लानत भेजती हूँ।"

"लेकिन आखिर आज ऐसा हुआ क्या ?"

"यह सब मुझसे मत पूछो मोहनबाबू ? मैं सिर्फ यही चाहती हूँ कि तुम मुझे विष ले आओ और अपने हाथ से पिला दो।"

अब तक मोहनबाबू ने कुछ सोच लिया था। उन्होंने देखा कि यही वह अवसर है, जब हम उसे इस नारकीय जीवन से निकाल कर मुक्ति के मार्ग पर ले जा सकते हैं। तब वे बोले—"जो बात तुम कह रही हो पन्ना, वह अपने भीतर एक बड़ी जिम्मेदारी से भरी हुई है। माना कि कभी-कभी तुम आन्तरिक यन्त्रणा का अनुभव करने लगती हो, लेकिन आज की दुनिया में जिसको सुख और वैभव की संज्ञा दी जाती है, वह चरण चूमता रहता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस जीवन की क्षणिक विरक्ति से तंग आकर जब तुम सामान्य जीवन की ओर कदम बढ़ा लो, तब फिर इसी प्रकार के जीवन की याद तुमको अपने इस संकल्प से विचलित कर दे। अभाव और गरीबी से भरा हुआ तपस्या का जीवन—और मैं स्पष्ट ही कह दूँ—एक प्रकार से दीनता और हीनता का जीवन—तुम सहन भी कर सकोगी ? अच्छी तरह से सोचकर देख लो, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। क्योंकि यहाँ से निकल जाने के बाद तुम तो वापस आ सकती हो, लेकिन मेरे लिए इस प्रकार की आशा करना कि मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा, कभी सम्भव न होगा।"

"यह सब तुम क्या सोचने लगे मोहनबाबू ! मेरे अतीत के स्वप्न

तो नष्ट हो चुके, अब भविष्य का जो स्वप्न मैं देख रही हूं क्या तुम मुझको उससे अलग मानने लगे हो ? मैं तो यहाँ तक सोचती हूँ कि अगर आपका सहारा मिले और सदा के लिए मिले, तो यह जीवन क्या चीज है, अनन्त जीवन तक मैं तुम्हारा साथ देने के लिए जी-जान से तत्पर रहूँगी।"

इतना कहते-कहते पन्ना फिर फूटकर रो पड़ी और बोली—"तुमने कभी तो मुझसे कुछ चाहा भी नहीं। कभी परीक्षा करके देखते !"

मोहनबाबू बोले—"रोओ मत पन्ना, रोने का वक्त बीत चुका। कहने में अच्छा नहीं लगता, लेकिन मैं तो इसी घड़ी की प्रतीक्षा में था। मैं सोचा करता था कि वह कौन-सा दिन होगा जब तुम इस नारकीय जीवन से निकल भागने के लिए बिना किसी के सुझाये स्वयं प्रेरित होगी।"

पन्ना उठकर अन्दर चली गई। उसने देखा कि कंगनबाई सो चुकी है। कोई डंका भी बजाये, पर वह जागने वाली नहीं। तब वह तुरन्त लौट आयी और बोली—"मैं तो अभी इसी दम तैयार हूँ तुम्हारे साथ चलने के लिए।" कथन के साथ वह मोहनबाबू के और निकट खिसक आई।

मोहनबाबू ने इधर-उधर दरवाजों की ओर देखा। फिर वे उठकर खड़े हो गये और उन सभी लोगों को देखते रहे, जो रात भर जगने की ही तनख्वाह पाते थे। जब उन्होंने अच्छी तरह जान लिया कि एक भी आदमी ऐसा नहीं है—जो जाग रहा हो, तब उन्होंने मन्द स्वर में उत्तर दिया—"इस प्रकार निकल भागना निरापद न होगा। कंगनबाई के अनुरोध पर पुलिस हम लोगों का पीछा करेगी और तब हमारे सामने एक नयी समस्या आ खड़ी होगी। इससे तो यह कहीं उत्तम होगा कि तुम जिस प्रकार रोज गंगा-स्नान को जाती हो, कल भी जाओ। मगर फिर यहाँ लौटने के बजाय उस पार पुल के पास मुझे एक ग्रामीण सुहागिन नारी की वेश-भूषा में मिल जाओ। सबेरे-सबेरे मन्दिर के फाटक पर मैं तुम्हें सेन्दुर, बिन्दी, बिछिया, कड़े-छड़े और मामूली सी रंगीन धोती ला दूंगा। अपनी यह वेशभूषा घाट पर छोड़कर घूंघट काढ़ के निकल जाना। मैं

वहाँ घाटिये से पूछूँगा कि यहाँ गुलाब आई थी ? तुम्हारे कपड़े देखकर वह समझ जायगा कि तुम डूब गई। फिर लौटकर गंगापार मन्दिर के पास कहीं-न-कहीं तुम्हें मिल जाऊँगा।"

इस प्रकार पन्ना भाग गई। इस घटना पर कुछ लोगों ने कहा कि गुलाब गंगा में डूबकर मर गई और कुछ लोगों का विचार हुआ कि वह इतनी धार्मिक थी कि ऐसे जीवन की अपेक्षा आत्मघात कर लेना उसने अधिक उत्तम समझा।

और सचमुच दूसरे दिन मोहनबाबू ने कंगनबाई के यहाँ पहुँचकर सबसे विदा लेते हुए कहा—"जब गुलाब ही न रही तो मैं आकर क्या करूँगा ? इसलिए अब मेरा आप लोगों को अन्तिम आशीर्वाद है।"

कंगनबाई आँसू पोंछते हुए बोली—"आज तो मुझे कुछ सुझाई नहीं दे रहा है पंडित जी ! इसलिए मैं कुछ कह नहीं सकती। मगर आप यहाँ आना-जाना कहीं न छोड़ दीजिएगा। आप जानते ही हैं, पेट के लिए आदमी क्या नहीं करता !"

: १३ :

उस दिन ऑफिस से आकर नन्दलाल बाबू सीधे उस कमरे में जा पहुँचे जहाँ पलँग पर सत्यवती लेटी हुई थी और हमरे कमरे में बैठी हुई कावेरी घुइयाँ छील रही थी

सत्यवती ने पूछा—"क्यं

नन्दलाल बाबू ने उत्तर

चुन्नीलाला को दे आया ह

उससे कह दिया है कि मेवा लेकर रिक्शे पर आ जाना। बस के लिए क्यू में खड़े रहने की जरूरत नहीं है।"

सत्यवती बोली—"उस दिन तुम कह रहे थे कि मैटर्निटी हास्पिटल में चलना पड़ेगा, उसके लिए क्या सोचा है?"

"अभी तो मैंने कुछ नहीं सोचा! न मेरा जन्म हास्पिटल में हुआ था, न तुम्हारा और न तुम्हारे बाप का। छोटी कह रही थी कि भगवान सब पार कर देगा। और फिर वो मिडवाइफ किस दिन के लिए है? जब से उसको मालूम हुआ है कि खुशी का मौका आने वाला है, तब से कम्बख्त जब कभी मिलती है, झट से सलाम ठोंक देती है! हास्पिटल वाला नुस्खा एक तो बड़ा लम्बा बनेगा, दूसरे मिसेज जोजेफ अलग नाराज हो जायँगी। इधर अपने राम की हालत यह है कि दुनिया में और चाहे जो हो जाय, मगर कोई भी यंग लेडी कभी मुझसे नाराज न हो।"

बात करते-करते नन्दलाल बाबू जो हँस पड़े, तो सत्यवती मुंह बना-कर रूठने का भाव प्रकट करती हुई बोली—"ऊँ···हटो, जाओ, मुझको बनाने की कोशिश मत करो।"

"अरे मैं सच कह रहा हूँ मैडम, मिनटों में पार लग जाओगी। वह ऐसी दवा जानती है कि तुमको पीड़ा का बोध ही न होगा।"

"तब तो ठीक है। हास्पिटल में भी तो नर्सों के हाथ में सारा प्रबन्ध रहता है।"

नन्दलाल बाबू बोले—"फिर तुम हमेशा घर में रहोगी तो मैं तुमको हमेशा देख तो सकूंगा और फिर उन दिनों मैं दफ्तर से छुट्टी भी ले लूंगा।"

सत्यवती सोच रही थी कि उन दिनों अगर मैं हास्पिटल में रही तो वहाँ सचमुच इनके बिना मेरा मन न लगेगा।

इसी समय कावेरी चाय व नाश्ता लेकर आ गई तो नन्दलाल बाबू सकपका कर पलँग से उठते हुए बोले—"मेज पर रखो। तब तक मैं कपड़े बदल लूं।"

कावेरी के वापस जाने पर जब नन्दलाल बाबू चाय पीने लगे तो

सत्यवती उनके हाथ पर हाथ रख कर बोली—"मैं सोचती हूं कि छोटी को अगर किसी प्रकार रोक लिया जाय तो बड़ा अच्छा हो। मुझसे तो कामकाज होता नहीं। सच पूछो तो उठने का मन ही नहीं होता। छोटी रहेगी तो तुमको भी समय पर खाना मिल जाया करेगा और मेरा भी मन लगा रहेगा। जब कहीं आना-जाना न हो तो अकेले घर में समय काटना मुश्किल हो जाता है।"

नन्दलाल बाबू बोले—"हाँ! हम लोगों को आराम तो हो जायगा, मगर फिर छोटे भैया कैसे रहेंगे? उनको तकलीफ न होगी?"

सत्यवती बोली—"वहाँ गौरी सब सम्हाल लेगी और फिर उनको भला क्या आपत्ति होगी?"

इस प्रकार वासुदेव बाबू को चिट्ठी देकर उन्होंने रमेश को गाड़ी में बिठा दिया।

बड़े भाई की चिट्ठी पाकर वासुदेव बाबू बड़े प्रसन्न हुए। मालूम तो उनको कावेरी के पत्र से ही हो गया था। रमेश से बाकी सब हाल मिला तो उन्होंने मन-ही-मन कहा—'चलो पत्थर पर दूब तो जमीं। रमेश का वहाँ रहना उनको फल गया। भगवान करे बच्चा सकुशल हो जाय और वह जिये जागे, उसके बाद देखा जायगा।'

थोड़ी देर बाद वासुदेव बाबू हेमन्त बाबू के यहाँ जा पहुँचे, जो उस समय स्नानागार में थे।

वक्ष पर रेशमी साड़ी का पल्ला डालती हुई नमिता बोली—"रमेश आ गया? जीजी क्यों नहीं आई, सुरेश की तबीयत तो ठीक है?"

वासुदेव बाबू बोले—"सुरेश की तबीयत ठीक है लेकिन कावेरी को बड़े भैया ने रोक लिया है; क्योंकि भाभी के बालगोपाल होने वाले हैं।"

हेमन्त बाबू स्नानागार से निकल ही रहे थे कि नमिता मुसकराती मुसकराती अपने स्वामी को सुनाती हुई बोली—"लो सुनो, वासुदेव बाबू

की मामी का पैर भारी हो गया। ब्याह होने के पच्चीस वर्ष बाद पहली बार खुशी का मौका आया है।"

हेमन्त बाबू बोले—"किसी ने कहा है कि भाग्य के सम्बन्ध में एक बात को छोड़कर और सब अनिश्चित है और वह बात यह है कि उसका क्रम और रूप कभी न कभी बदलता जरूर है। मैं प्रायः सोचता रहता था कि नन्दलाल बाबू का कभी न कभी भाग्य अवश्य उदय होगा।"

नमिता बोली—"कहाँ गये बच्चे? खाना तैयार है।"

वासुदेव बाबू ने उत्तर दिया—"वो बात कुछ ऐसी हुई कि रमेश के लौटते ही गौरी ने चूल्हा जलाकर दाल चढ़ा दी।"

नमिता ने उलहने के स्वर में उत्तर दिया—"ऐसी भी क्या बात थी। यहाँ तो खाना बना ही था। गौरी की पढ़ाई का हर्ज न होगा, वह कालेज कैसे जायगी टाइम पर? नहीं, नहीं, जब तक जीजी नही आतीं, आप सब यहीं खायेंगे।"

वासुदेव बाबू को कुछ भी कहने का अवसर न देकर अन्त में नमिता ने यह भी कह दिया—"मेरी समझ में नहीं आता कि आप इतना संकोच क्यों करते हैं? कभी मेरी तबीयत खराब हो जाती थी, तो जीजी अपने यहाँ से बनाकर मेरे यहाँ कैसे भेज देती थीं?"

"वासू बाबू आप संकोची बहुत हैं। जब एक बार यह बात निश्चित हो गई थी कि आप लोग खाना यहीं खायेंगे, तब फिर यह क्या बात हुई? आपको गौरी को मना कर देना चाहिए था।" कहते हुए हेमन्त बाबू कमरे की तरफ बढ़ गये और बोले—"मैं कपड़े बदल कर तैयार होता हूँ। तब तक आप लोग भी आ जायेंगे। निम्मी तुम जाकर मना कर दो। अभी तो चूल्हा भी न जला होगा।"

थोड़ी देर बाद जब सब लोग खाना खा रहे थे तो गौरी भरत की थाली से भरा हुआ मिर्चा उठाकर दाँत से लगाती हुई कह रही थी—"मुझे यह भरा हुआ मिर्चा बहुत पसन्द आता है।"

शरत ने उत्तर दिया—"इसीलिए तुम्हारी बातों में तीखापन अधिक मुखरित रहता है।"

"आपको पता भी है कि मिर्च खाने से तितिक्षा का बोध जल्दी हो जाता है।"

"तुम्हारी बातों में ज्ञान का दम्भ भरा रहता है, सो भी कुटिल।"

"और तुम्हारी बातों में बेला के फूल झड़ते हैं; मगर बेला के क्यों टेसू के फूल कहना चाहिए जिससे रंग भले ही बन जाय, मगर खुशबू जरा भी न आये।"

हेमन्त बाबू दोनों को देख-देख कर मुसकरा रहे थे।

वासुदेव बाबू परिस्थिति का स्वाद लेते हुए कहने लगे—"गौरी की सुरेश से भी नहीं पटती। मगर तभी तक, जब तक दोनों इकट्ठे रहते हैं। लेकिन एक दूसरे से विलग होते ही दिन में दस बार याद करते हैं।"

इतने में शरत बोल उठा—"मैं जब इलाहाबाद चला जाऊँगा, तब गौरी हनुमानजी का प्रसाद बाँटेगी। दिन में दस बार कहेगी, चलो यह बड़ा अच्छा हुआ।"

होंठ दबाती-दबाती गौरी बोली—"अपने होश की दवा करो। न मालूम मैं कितनी बार प्रसाद बाँट चुकी हूँ।"

नमिता को वे दिन स्मरण हो आये जब वह इस घर में आई ही आई थी। और कुछ ही दिनों में उसने अपने स्वामी की वासू बाबू से शिकायत करना शुरू कर दिया। मुसकराते हुए उसने कह दिया—"यह तो अपनी-अपनी शैली है। इधर तो काम के मारे फ़ुरसत ही नहीं मिलती, वर्ना इनसे झगड़ने में मजा तो मुझे भी बहुत आता था।"

वासुदेव बाबू नमिता की हास-मुखरित प्रगल्भ भंगिमा को देखते रह गये। तत्काल उन्हें गोस्वामी तुलसीदास का यह कथन याद हो आया—'मोहिं अतिशय प्रतीती जिय केरी, जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी।'

हेमन्त बाबू सोच रहे थे कि ठाकुर साहब का कोई सन्देश नहीं आया। मैंने उनसे अपील करने के लिए कह तो दिया था। इतने में उन्होंने नमिता की बात जो सुनी तो वे बिना बोले न रह सके।

"लड़ाई तो अन्तरात्मा के साथ ही अच्छी होती है। जिन लोगों से

भीतर ही भीतर लड़ाई चलती रहती है, उनके साथ प्रकट रूप से लड़ने में कोई सुख नहीं रह जाता। यों भी कभी-कभी मेरे मन में भी यह सवाल उठता है, खास तौर पर किसी फूल को देखकर, कि मैं इसे तोड़ूँ या न तोड़ूँ। और वासुदेव बाबू मैं आपसे ईमानदारी के साथ कहता हूँ कि मैं उसे तोड़ना कभी पसन्द नहीं करता।"

नमिता सोच रही थी—"बस, इनकी इन्हीं बातों से मैं इनके फन्दे में आ गई थी। अगर मैं जानती कि न्यायाधीश बनकर ये लोगों को फांसी देने का काम करेंगे, तो मुझे भी एक बार सोचना पड़ जाता—करूँ कि इनकार करूँ।'

ऊपर सर पर पंखा चल रहा था, नीचे बान-सा कूटा जा रहा था।

नमिता बोली—"अरे हटो, वे बातें चली गईं। अब तो एक ही लालसा रह गई है कि तुम नौकरी को छोड़ कर अपने पुराने पेशे वकालत पर आ जाओ। जान लेने के बजाय अपराधी को फांसी से छुड़ा देने के पुण्य की बात ही और होती है।"

इसी समय चपरासी ने एक तार लाकर उनके सामने रख दिया, जिसमें लिखा था—'अपील एडमिटेड्, रीचिंग टुमारो मानिंग।'

खाना खाने के बाद जब सब लोग आचमन कर रहे थे, तभी मौका देखकर शरत ने गौरी से धीरे से पूछा—"आज जो बातें हो रही थीं, उनका मनोवैज्ञानिक पहलू क्या था? कुछ समझ में आया, छिपकली की दुम।"

गौरी तमक कर जोर से बोली—"देखो शरत, मैंने हजार बार मना किया कि तुम मेरे लिए ऐसे गन्दे और भद्दे विशेषण कभी मत लगाया करो। अब बात मत करना मुझसे। मैं तो तुम्हारी शकल तक न देखूंगी। तुमने अपने को समझ क्या रखा है?"

गौरी को इस तरह बहकते देखकर हेमन्त बाबू विचारमग्न हो उठे। तत्काल उन्होंने गौरी से पूछा—"क्या बात है गौरी?"

गौरी की आंखों में आंसू आ गये और वह बोली—"चाचाजी, मैं आप ही से पूछती हूँ कि इनको मुझे 'छिपकली की दुम' कहने का क्या हक ?"

हेमन्त बाबू इस लड़ाई का मजा लेते-लेते थोड़ा मुसकराये और उन्होंने शरत से कह दिया—"हाँ शरत, यह तो बड़ी भद्दी बात है।"

शरत बोला—"डैडी, एक तो यह मेरी प्रायवेट बात है। दूसरे अब मैं पूछता हूँ कि इसी को मुझसे यह कहने का क्या हक है कि मैं इससे बात तक न करूँ क्योंकि यह मेरी शकल से ही नफरत करती है। जबकि बात दरअसल कुछ और है।"

"तुमने भी बहुत बड़ी बात कह डाली गौरी! तुमको भी ऐसी कड़ी बात नहीं कहनी चाहिए।"

हेमन्त बाबू का उत्तर सुनकर गौरी तमतमाये हुए चेहरे से बोली—"चाचाजी, आप भी इन्हीं का पक्ष लेंगे, मैं आपसे ऐसी आशा नहीं करती थी।"

हेमन्त बाबू ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—"भई, मैंने तो कहीं पढ़ा था कि दोस्त बनाने से पहले उसके साथ बैठकर पाँच सेर नमक खा डालना चाहिए। मगर अब तक मेरा ख्याल है, तूने पाँच रत्ती भी न खाया होगा।"

दोनों को इस तरह से झगड़ते देखकर रमेश बोला—"वैसे न्याय की बात तो यह है कि छिपकली कहने में बुराई जरूर है, मगर छिपकली की दुम कहने में जरा भी बुराई नहीं है, क्योंकि इतना तो सिद्ध है कि वह चंचल और अस्थिर होती है। और शक्ल से नफरत करने की बात में तो कुछ भी दम नहीं है क्योंकि वह आवेश में आकर कही गई है।"

वासुदेव बाबू बोले—"बहुत हो चुका गौरी, पढ़ने जाना है कि नहीं?"

तभी नमिता ने अवसर देखकर हेमन्त बाबू से कह दिया—"और आपको कोर्ट जाना है कि नहीं?"

इस बात पर और तो सभी लोग हँस पड़े, पर गौरी मन ही मन कुछ निश्चय करती हुई चली गई।

शरत जब कालेज जाने लगा तो उसको गम्भीर देखकर नमिता ने कह दिया—'मेरे ख्याल से तुम दोनों ही गलती पर हो। क्योंकि इतना तो तुमको समझना ही चाहिए कि जो व्यक्ति बिना सोचे-समझे बोलता है, उसे अनचाही और कटु बातें सुननी ही पड़ती हैं।"

बाइबिल का एक कथन है कि माँगो तो तुम्हें दिया जायगा, खोजोगे तो तुम प्राप्त कर लोगे और खटखटाओगे तो तुम्हारे लिए दरवाजा खुल जायगा।

शरत सोचता है कि प्रेम में क्या ऐसा कुछ है कि अगर तुम चाहोगे तो तुमको नहीं मिलेगा, कह डालोगे तो सब नष्ट हो जायगा। मैंने ऐसी कौन सी बात कही थी जिसने गौरी के मर्म को आघात पहुँचाया। मेरा उसको छिपकली की दुम कह देना ही जहर हो गया। शायद गौरी सोचती है कि छिपकली की दुम कह कर मैंने उसका अपमान किया है। लेकिन गौरी ने यह नहीं समझा कि उन बातों का मनोवैज्ञानिक पहलू असल में था क्या; और इस में वह छिपकली की दुम की तरह जरा-से धक्के में कटकर रह गई। उसने यह नहीं सोचा कि भावशून्य-शब्दों की अपेक्षा शब्द-शून्य भाव प्रेम के मनोराज्य में बड़े महत्व के होते हैं।

फिर शरत सोचता है कि 'यह तो ठीक है कि सुबह की दी हुई चाभी को जो बाहर से लगाई जाती है, हम सायंकाल को, सो भी भीतर की चटखनी नहीं बना सकते। लेकिन फिर ममी और डैडी की बातों के रहस्यात्मक विचार तन्तुओं की व्याख्या में उनके आन्तरिक मर्म का उद्-घाटन तो कर ही सकते हैं। तात्पर्य यह कि अब एक तरफ तो अम्मा को हम सब लोगों के सामने यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं हुआ कि पहले कभी—शायद मेरे शैशवकाल में—बाबू से झगड़ने में उनको मजा आता था। उधर डैडी निस्संकोच बतलाते हैं कि जिस फूल को वो पसन्द करते हैं उसे स्वभावतः खिलने का अवसर देना चाहते हैं। शायद वे सोचते हैं कि अभी यह और खिलेगा। इसीलिए उसे तोड़े बिना छोड़

देते हैं। मुझे तो उनके इस कथन में भावुकता अधिक जान पड़ती है। सुगन्धित फूल को बिना तोड़े छोड़ देने में भला क्या लाभ है ? फूल अगर तोड़कर सूँघा न जायगा, तो वह टहनी में ही लगा हुआ सूख न जायगा ? उसके दल अपने आप गिर पड़ेंगे।

'तो डैडी मुझसे अगर यह आशा करते हों कि इस मामले में मैं भी उनका अनुसरण करूँ, तो यह मेरे साथ अन्याय होगा। यह तो अपनी-अपनी रुचि का प्रश्न है।

'लेकिन यहाँ उन्होंने गलती की। फूल की जगह उनको कली कहना चाहिए था सो भी अधखिली। तोड़ने योग्य हो जाने पर भी कोई व्यक्ति फूल तोड़ता नहीं है तो मैं उसे तपस्वी की संज्ञा नहीं दूँगा। और इसको आचार्य विनोबा भावे का सर्वोदय भी नहीं मानूँगा।

'मैं तो समझूँगा कि वह व्यक्ति न साधु है न सन्त, वह तो अनब्याही और अव्यहृत कंचुकी के समान है। हो सकता है कि दूध की धार की तरह पवित्र हो, लेकिन मैं उसे फर्स्ट-साइट-लव का प्रथम अप्रोच नहीं मानूँगा जो इस सृष्टि का सर्वथा मौलिक और सर्व-प्रथम हेतु होता है। मैंने गौरी से कितनी बढ़िया बात पूछी थी ! और सच पूछो तो मैं उससे अपना यही मनोभाव व्यक्त करना चाहता था। लेकिन उसने तो सब गुड़गोबर कर दिया !'

: १४ :

खाना खाने के बाद गौरी कुर्सी पर बैठी हुई अध्ययन में लीन हो जाना चाहती थी। लेकिन, उसके मन में आ रहा था—'वैसे रमेश भैया की यह बात तो कुछ समझ में आती है कि छिपकिली की दुम को अस्थिरता और चंचलता के प्रतीक में प्रयोग करने में कोई बुराई नहीं है और यह बात भी समझ में आती है कि चाचा और चाची के बात-

चीज़ के मनोवैज्ञानिक पहलू में छिपे हुए रस बोध की ओर ध्यानाकर्षण का संकेत देकर शरत ने मेरे निकट ही पहुँचने की चेष्टा की थी, जिसकी ओर मेरा ध्यान बिलकुल ही नहीं गया था।

'लेकिन चाची ने यह जो बात कही कि इनसे लड़ने में मुझे मज़ा आता था, इसका यह तात्पर्य भी तो हो सकता है कि अपने जीवनसंगी से लड़ने में एक अलौकिक रसबोध होता है। शायद उनका अभिप्राय यह हो कि प्रेमी के आकर्षण में छटपटाने और व्याकुल हो-होकर वियोग की घड़ियाँ बिताने में जो सुख मिलता है वह बड़ा अनोखा और अद्भुत होता है।

'मगर नहीं।'—गौरी सोचने लगी—'अब तो मैं कह चुकी कि अबसे मुझसे बात मत करना। मैं तो तुम्हारी शक्ल तक न देखूंगी।.... मैं जो कह चुकी सो कह चुकी। अब तो मुझे अपनी इसी बात पर डटे रहना चाहिए। लेकिन भैया का कहना है कि यह बात मैंने आवेश में कही थी, अर्थात् शान्तमन और स्थिरचित्त से नहीं कही थी।

'इसका तो सीधा अभिप्राय यह हुआ कि इस कथन में मेरी अन्तरात्मा का स्वर नहीं है यानी कह देने पर भी इस बात का कोई महत्व नहीं होना चाहिए। मतलब यह कि अगर शरत सामने आ ही जायगा तब तो उसे देखना ही पड़ेगा। बहुत दिनों से सुनती आ रही हूँ कि दैवी-सौन्दर्य को परख-परख कर अपनी भूख मिटाना ही वास्तव में प्रेम करना है। तो इस प्रकार दैवी-सौन्दर्य को परखने के लिए अगर मानवीय संघर्ष करना पड़े, यहाँ तक कि प्रेमी से लड़ाई भी कर लेनी पड़े, तो इसमें क्या बुराई है?—क्योंकि संघर्ष किये बिना आन्तरिकता की परख सम्भव नहीं है।'

गौरी को अपने आप पर तरस हो आया—सचमुच मैंने शरत से बड़ी कड़ी बात कह दी थी।—'तुम्हारी शक्ल तक नहीं देखूंगी।' मेरे इस कथन में प्रमाद के सिवा और क्या है?

—तो अब क्या हो? कही हुई बात को भला मैं कैसे मेट सकती हूँ!

—अच्छा तो अब समझ में आया कि सारे झगड़े की बुनियाद केवल छिपकली की दुम वाली बात है।

हेमन्त बाबू कोर्ट चले गये थे। नमिता को उनसे इस विषय में बात करने का अवसर नहीं मिला था। लेकिन जब भरत भी कालेज चला गया तो वह सोचने लगी कि ऐसा तो कई बार हो चुका है। दोनों झगड़ते हैं और फिर आपसे आप मिल जाते हैं। इससे तो यही ध्वनित होता है कि दोनों में एक दूसरे के प्रति प्रगाढ़ स्नेह है।

—किन्तु अगर ऐसा स्नेह दोनों में बना रहा, तो इसका परिणाम हमें चिन्ता में भी डाल सकता है। वैसे गौरी लड़की बड़ी खरी और तेजस्विनी है। स्वाभिमानिनी तो इतनी अधिक है कि जरा सी बात में बुरा मान जाती है। ऐसी लड़की निष्कपट और देहरी-दीपक होती है। उसका आलोक पिता और ससुर दोनों पक्षों में उजाला फैला देता है। मेरे कहने से मान तो जायगी शायद! मगर शायद क्यों? मान ही लेना चाहिए उसको। और भैया से तो मैं कह ही दूंगी कि तीखे व्यंग की अपेक्षा आज के युग में मधुर व्यंग का मूल्य बढ़ गया है।

नमिता भोजन के बाद थोड़ी देर सोती थी। चिन्तन के साथ उसे थोड़ी देर के लिए नींद आ गई। सोकर उठी तो तबीयत नहीं मानी। पनडब्बा निकाल कर पान लगाया और खाया। सुरती लेने के सिलसिले में वह जो अपनी चाँदी की डिबिया ढूँढ़ने लगी तो खोजती-खोजती वह भरत के कमरे में जा पहुँची। टेबुल पर कई किताबें रक्खी हुई थीं, जो भरत की पाठ्य-पुस्तकें थीं। वहीं पर एक पुस्तक पर उसका हाथ जा पड़ा। खोला, तो क्या देखती है कि उसके अन्दर एक लिफाफा रखा हुआ है। पहले तो शक हुआ कि क्या यह अब तक नहीं खोला गया। फिर उसके मन में आया कि वर्षाकाल में बहुतेरे खोले हुए लिफाफे पवन की नमीं पाकर कभी-कभी आपसे आप चिपक जाते हैं।

फिर अपने ही इस मनोभाव पर वह कुछ सोचने लगी—क्या ऐसा नहीं हो सकता कि ऐसे बहुतेरे लिफाफे हवा की नमीं पाकर आपसे आप बन्द हो जाते हों और फिर उनको खोलने की कभी आवश्यकता ही न पड़ती हो। या तो किसी पुस्तक में चुपचाप पड़े रहते हों, या कागजों के ढेर में मिल कर अपना जाग्रत-अस्तित्व ही खो बैठते हों।

दो-चार मिनट तक तो वह इसी उधेड़-बुन में लगी रही कि इसे खोल कर देखा जाय या नहीं।

तभी उसे ध्यान हो आया कि उसके सिर पर जो कीड़ा भन-भन बोल रहा है वह भ्रमर जाति का है।

इतना सोचते ही वह भँवरा सचमुच नमिता के कान के पास आकर भन-भन करता हुआ आगे बढ़ गया। तब तत्काल उसको अपना बचपन याद हो आया।

फिर सोचा कि हर एक लड़की के जीवन में एक-न-एक मधुप कान से लग कर बात करता है। ऐसी दशा में अगर भैया गौरी को छेड़ता है, तो क्या बेजा करता है!

इस तरह नमिता को भी गौरी और शरत का ध्यान बारबार आता रहा।

फिर सन्ध्या हुई। हेमन्त बाबू छै बजे तक बैठक में जमे रहे। ठाकुर साहब का तार उनकी टेबुल पर अब भी रक्खा हुआ था। एक बार उन्होंने उसको खोला, फिर बन्द कर दिया, फिर उसके ऊपर पेपर वेट रख दिया। लाल फीते वाली एक फाइल उठाई, खोली। इतने में मालूम हुआ कि शरत आ गया।

इसी समय नमिता ने देखा कि शरत किताबें लिये हुए सीधा उनके पास जा पहुँचा। उसने चिट्ठी पढ़ ली थी। लिफाफा खोल डाला था। वह चिट्ठी गौरी की थी, जो उसने शरत को इन्हीं दिनों दिल्ली जाने पर लिखी थी। सुरेश के जन्म-दिवस पर वह रमेश के साथ नन्दलाल बाबू के यहाँ गई हुई थी और पत्र लिखा हुआ था।

बहुत बहुत अप्रिय,

चलते समय मैं तुमसे मिल न सकी। यों कोई खास बात नहीं है, लेकिन तुमको एक काम सौंपना चाहती थी। परसों रविवार है और यह

चिट्ठी तुमको कल मिल जायगी। अम्मा की बड़ी खराब आदत पड़ गई है कि वे अपने मन का भेद किसी को नहीं देतीं। यहाँ तक कि बाबू से भी कुछ नहीं कहतीं। फल यह होता है कि अगर बाबू उनके लिए कुछ फलाहार बाजार से नहीं ला देते, तो वे निराहार रह जाती हैं।- और बाबू की आदत है कि दफ्तर से लौटने पर वे उपनिषद् पढ़ने लग जाते हैं। फिर उन्हें दीन-दुनिया का होश नहीं रह जाता। सो मैं तुमको यही सहेज देना चाहती हूँ कि तुम अम्मा का ध्यान रखना और रविवार के दिन नौ बजते-बजते दूध की बरफी जरूर ला देना। तुमने मेरी जेब से उस दिन जो दो रुपये का नोट झाड़ दिया था, मैंने देख तो लिया था लेकिन मना नहीं किया था। इस मिठाई के पैसे तुम उसी से खर्च कर लेना। फिर मैं तुम्हें उसके पैसों की चाट खिला दूँगी! भला भूलना नहीं।

पुनश्च— तुम्हारी—एक आँत शैतान की

इस पत्र को पढ़ने के बाद तुरन्त फाड़ कर फेंक देना।

यह पत्र नमिता हेमन्त बाबू को दिखाना चाहती थी और उनसे पूछना चाहती थी कि देख लो, भैया और इस गौरी में किस प्रकार का सम्बन्ध चल रहा है।

किन्तु अब शरत स्वयं आ चुका था। इसलिए वह चुपचाप यह सोच कर चली आई थी कि फिर कभी अवसर मिलने पर दिखा दूँगी।

शरत हेमन्त बाबू से कह रहा था—"प्रोफेसर साहब का कहना है डैडी कि प्राच्यदर्शन का गहरा अध्ययन करने के लिए तुमको संस्कृत के किसी योग्य पण्डित से उपनिषद् पढ़ने चाहिए। और सारी मुसीबत यह है कि संस्कृत व्याकरण में मैं सदा कमजोर रहा हूँ। एक तो संस्कृत का ऐसा कोई विद्वान् ट्यूटर मिलने से रहा और अगर मिला भी तो पता नहीं वह मुझे पढ़ायेगा कैसे?" और इतना कहते-कहते साथ में उसने इतना और जोड़ दिया, "मगर डैडी, मुझे यह स्वीकार करते हुए बड़ी झेंप होती है कि गौरी की संस्कृत मुझसे अच्छी है। मगर माफ

कीजियेगा गौरी का नाम मेरे मुँह से यों ही निकल गया।" और इतना कह कर पिता की प्रतिक्रिया जाने बगैर वह हेमन्त बाबू के पास से वापस आ कर नमिता के पास जा पहुँचा और बोला—"शाम को खाने की टेबुल पर अगर गौरी आई तो किसी भी तरह मैं खाना न खाऊँगा।"

शरत का इतना कहना था कि एक साल पूर्व उसके नाम लिखा हुआ गौरी का पत्र उसने उसके सामने रखते हुए कहा—"बेटा, जो तुम कहते हो, वह सब मैंने सुना और समझ भी लिया। मगर जरा इस पत्र को पढ़ कर बताओ कि तुम्हारे प्रति उसके मनोभाव कैसे रहे हैं और उससे तुम्हारा कौन-सा नाता झलकता जान पड़ता है।"

शरत पहले तो आश्चर्य में पड़ गया, फिर उसने वह पत्र खोला और वहीं नमिता के सामने ही फाड़ कर उसी लिफाफे में उसके टुकड़े रख कर जेब में रख लिया।

नमिता बोली—"देखो शरत, बहुत हो चुका। अब तुमको अपना यह लड़कपन छोड़ देना चाहिए। एक तो गौरी स्वयं बहुत मानिनी है, फिर उस पर तुम्हारा यह क्रोध देख कर और उसके साथ तुम्हारे सम्पर्क और सानिध्य की बात सोच कर मुझे पहले हँसी आती है फिर तरस। वासुदेव के घर की परिस्थिति अगर ऐसी न होती, तो वह बेचारी मेरे यहाँ खाना खाने को क्यों विवश होती और बुलाई ही क्यों जाती? इस परिस्थिति का अनुचित लाभ उठाना तुम्हारे लिए कभी शोभन नहीं हो सकता। मैं तो यहाँ तक सोच रही थी कि वो अगर रूठ गई होगी, तो उसको मनाने के लिए पिछली बार की भाँति तुम्हीं को जाना पड़ेगा। अभी-अभी उसका जो पत्र तुमने फाड़ डाला, वह मुझे बहुत पसन्द आया था। बल्कि उसको तो मैं तुम्हारे डैडी को भी दिखलाना चाहती थी।

"रह गई तुम्हारे इस तनाव की बात, सो उसका मेरे आगे कोई महत्व नहीं है। जाओ, कपडे बदलो और नाश्ते के लिए साहब को बुलाओ। मैं तब तक तैयार हुई जाती हूँ।"

: १५ :

सत्यवती जिस दिन से गर्भावस्था को प्राप्त हुई थी, यों तो उसी दिन से सुरेश के सम्बन्ध में अन्यथा सोचने लगी थी। भाँति-भाँति की कुटिल कल्पनाएँ उसके मन में आती रहती थीं—'जो लड़का अब तक यह सोचता आया है कि ताऊजी की सारी सम्पत्ति का स्वामी एक दिन मैं बनूँगा, वही अब क्यों न सोचेगा कि भाई उत्पन्न हो जाने के बाद मेरी क्या स्थिति होगी ? मेरे अस्तित्व का रूप अब कितना नगण्य हो जायेगा और कौन कह सकता है कि वह अपने उस भाई का अनिष्ट सोचने में कोई कोर-कसर बाकी रखेगा ? सदा वह मेरी आँखों के सामने तो रहेगा नहीं। दिन में तीन बार तो मैं शौच ही जाती हूँ और शौच के बाद स्नान करना लाजिमी होता है। ऐसी दशा में जब मैं उसकी आँखों से ओट रहूँगी, तब वह इस अवसर से अनुचित लाभ न उठायेगा ?'

फिर यह सोचते ही उसका यह चिन्तन-क्रम आपसे आप शिथिल हो जाता कि भगवान की कृपा से वह दिन तो आये। कोई नहीं जानता कब क्या होने वाला है। ऐसा भी तो हो सकता है कि उसका मेरे घर आना ही इस भाग्योदय का मूलकारण बन गया हो। एक बार तो उसने स्वामी को पलँग की पाटी पर बैठा हुआ देख, उनसे पूछा भी था कि "अच्छा मान लो, पुत्र ही हुआ; क्या तब भी सुरेश को यहाँ रखना उचित होगा ?"

नन्दलाल बाबू को पत्नी की यह बात अच्छी नहीं लगी थी और उन्होंने कह डाला था कि "कुत्ते की पूँछ कभी सीधी नहीं होती। भैया तुम्हारे साथ चाहे जितनी भलाई करें, लेकिन मौका आने पर तुम सुरेश का अहित सोचे बिना न मानोगी।"

सत्यवती बोली—"इसमें अहित की क्या बात है ? दौलत चीज ही ऐसी है जिसके कारण अपने और पराये का सवाल सबसे पहले उठ खड़ा होता है। हमने उनको ऐसा कोई प्रतिज्ञापत्र लिख कर तो दिया नहीं कि सन्तान हो जाने पर भी हमारी सारी सम्पत्ति का स्वत्वाधिकारी सुरेश ही होगा। फिर यह तो कोई तुक नहीं हुई कि भावुकता में आकर हम

सुरेश को जानबूझ कर उसका हिस्सेदार बना दें, प्रमाद में पड़कर स्वयं अपने पैर में कुल्हाड़ी मार लें।"

"किन्तु मेरा तो कहना यह है कि ताल खुदा नहीं, मगर आ पहुँचा। पुत्र उत्पन्न होने नहीं पाया कि तुम सुरेश को घर से निकाल देने की बात सोचने लगीं! ऐसी ही स्त्रियाँ अवसर से अनुचित लाभ उठाकर घर और कुटुम्ब का विनाश कर बैठती हैं। थोड़ा धीरज धरो। भगवान की कृपा पर भरोसा रखो। पहले डिलीवरी तो होने दो, उसके बाद जब वह धीरे-धीरे बढ़ने लगेगा, तब कहीं यह समस्या हमारे सामने आयेगी। यह कितनी भद्दी बात है कि तुम अभी से अनिष्ट का स्वप्न देखने लगीं।"

पलँग पर लेटी हुई सत्यवती अपने दायें पैर का अँगूठा ऊपर नीचे करती हुई बोली—"तुम इन सब बातों को क्या जानो! जो लोग पूजा-पाठ में ज्यादा मन लगाते हैं और आगे-पीछे सोचकर नहीं चलते, एक दिन उनके घर में कबूतर वास करते हैं। मेरे कहने का मतलब सिर्फ इतना है कि सुरेश को बहुत सिर पर मत चढ़ाओ। तुम मानो चाहे न मानो, लेकिन अगर भगवान ने मेरी प्रार्थना सुन ली तो इस मामले में फिर मैं तुम्हारी एक बात न सुनूंगी।"

अन्त में नन्दलाल बाबू को यह स्वीकार कर लेना पड़ा था कि "अच्छा-अच्छा, पहले बाल-बच्चा तो कुशल से हो, उसके बाद देखा जायगा।"

कावेरी को जेठ और जिठानी की इस अभिसन्धि का तो कुछ अनुमान न था, किन्तु वह यह बराबर देख रही थी कि सुरेश एकान्त पाते ही अक्सर कह डालता है कि मुझे यहाँ अच्छा नहीं लगता। इस बार मैं भी तुम्हारे साथ कानपुर चलूंगा। दादा अगर मुझे भेजना स्वीकार नहीं करेंगे, तो मैं बड़ी अम्मा को मना लूंगा।

और भी एक बात थी। सत्यवती कभी-कभी सुरेश के सम्बन्ध में कावेरी से इतना तो कह ही देती थी कि माना कि खाने-पहिनने और

आराम से रहने का बड़ा महत्व है, पर आत्मीय का सुख एक अलग बात होती है। और इतना तो तुम मानोगी छोटी कि अपने निज माता-पिता के द्वारा जो प्यार बच्चों को मिलता है वह बेजोड़ होता है, उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती।

सत्यवती के इस कथन पर कावेरी सोचती थी कि जीजी बदल गयी हैं। पहले की अपेक्षा उनमें अब बड़ा अन्तर आ गया है। बहुधा ऐसी बात कह डालती हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है।

दिन चल रहे थे। सत्यवती को भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजन, मसालेदार तरकारियाँ, चाय के साथ मेवे की कतरियाँ, नमकीन पकौड़ियाँ आदि सामग्री नित्य समय पर बनाने और खिलाने-पिलाने में कावेरी का सारा दिन मजे से कट जाता था।

सुरेश अपनी पढ़ाई के क्रम में उत्तरोत्तर आगे बढ़ता जाता था। इस वर्ष तो उसका इंजीनियरिंग का अन्तिम वर्ष था। रात-दिन अध्ययन में लीन रहने के कारण जो थोड़ा सा समय बचता भी, तो वह घर की व्यवस्था और बाजार से सामान लाने में इस तरह व्यतीत हो जाता था कि चारपाई पर जाते ही उसे नींद आ जाती थी।

कावेरी सोचती थी कि मैं बेकार ही चिन्तित रहने लगी थी। अगर न भी आती तो यहाँ की सुव्यवस्था में कोई अन्तर न पड़ता।

नन्दलाल बाबू सोचते थे कि खाने का सुख तो तभी तक है जब तक छोटी यहाँ बनी हुई है। उसके बाद फिर देवीजी की मनमानी-घरजानी चलने लगेगी। सवेरे वक्त पर ताजा भोजन भला क्या मिलेगा!

होते करते जब सन्तानोत्पत्ति के दिन निकट आ गये तो नन्दलाल बाबू ने किसी की एक न सुनी, एक मैटर्निटी हास्पिटल के प्राइवेट वार्ड में सत्यवती के लिए एक कमरे में रहने की व्यवस्था कर दी।

दो दिन तक कावेरी घर नहीं लौटी। उस दिन रात भर नन्दलाल बाबू को भी हास्पिटल में ही रहना पड़ा, बारह बजे मैट्रन ने उनके पास आकर कह दिया—"लड़का बड़ा खूबसूरत और हैल्दी हुआ है। इनाम में साड़ी लूँगी फर्स्ट क्लास, समझे बाबू साहब!"

समाचार सुनकर नन्दलाल बाबू इतने प्रसन्न हुए कि उनकी आँखों

में आनन्दाश्रु भर आये। उत्साह में भरकर के बोले—"ले लेना। मेरे साथ चलना और खुद अपनी पसन्द की ले लेना। यह भी कोई ठहराने की बात है!"

: १६ :

हेमन्त बाबू गाड़ी से उतर कर कोर्ट से लगे हुए अपने कमरे में प्रवेश कर रहे थे। चपरासी साथ में फाइलें लिये हुए थे और मुकुट बिहारी सिन्हा एडवोकेट उनके पीछे-पीछे बढ़े जा रहे थे।

इतने में मुकुट बाबू बोले—"जज साहब, दो मिनट।"

"कहिए कहिए मुकुट बाबू! आइए भीतर ही बैठिए।"

दोनों कुर्सी पर बैठ गये। चपरासी फाइलें मेज पर रख रहा था।

हेमन्त बाबू उसकी ओर दृष्टि डालते हुए बोले—"देखो लतीफ, दो कप चाय के लिए कह आओ।" फिर मुकुट बाबू की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"या काफी चलेगी मुकुट बाबू?"

मुकुट बाबू के चेहरे पर एकाएक मुसकराहट दौड़ गई और उन्होंने कह दिया—"जज साहब प्रस्ताव तो मैं ऐसा लेकर आया हूँ आपके पास कि आपकी चाय मँहगी पड़ जायगी मुझे।"

हेमन्त बाबू ने आश्चर्य के साथ मुसकराहट का पुट देकर उत्तर दिया—"आपको मालूम नहीं वकील साहब कि मेरे बारे में एक बात बहुत मशहूर है।"

मुकुट बाबू ने मुसकराते हुए पूछा—"कौन सी बात?"

हेमन्त बाबू बोले—"कि मैं सुनता सब हूँ। मगर समझ जरा देर में पाता हूँ। आखिर आपका मतलब क्या है?"

मुकुट बाबू का हाथ सिर पर चला गया। केशहीन चाँद पर हाथ फेरते हुए, उन्होंने कहा—"जो दरख्वास्त मैं आपके सामने पेश करने

जा रहा हूँ उसका सिलसिला तो हमारे घर में दो तीन साल से चल रहा था। लेकिन मैं मौके की तलाश में था। इसलिए आज जब मैं कोर्ट आने को तैयार हो रहा था, उसी समय यकायक आपकी लायक दोस्त श्रीमती वनमाला देवी मेरे ऊपर बरस पड़ीं।"

वनमाला का नाम सुनते ही हेमन्त बाबू गम्भीर हो उठे और बोले—"ओह! वनमाला! बहुत दिन हो गये उससे भेंट नहीं हुई। कुछ कह रही थी?"

"कहने को तो बहुत कुछ कह रही थी। मेरी तो दरअसल हिम्मत नहीं पड़ रही थी। उसी ने समझा-बुझा कर, बल्कि कहना चाहिए कि गवाह की तरह पाठ पढ़ाकर मुझसे कहा है कि आज मैं आपसे मिलकर एक अहम मसले को तय करके ही लौटूं।"

"अच्छा-अच्छा! देख लेंगे। कौन सी तारीख है?"

"वाह जज साहब वाह! क्या समझा है आपने मुझे? अरे किसी मामले मुकदमे की बात नहीं हैं जज साहब! बात दरअसल कुछ और है।"

"अच्छा, अब समझा! आप दोनों में जान पड़ता है फिर कोई झगड़ा हो गया है। कहीं मारपीट तो नहीं हो गई? कुछ भी हो, इतना मैं विश्वास दिलाता हूँ कि डाइवोर्स नहीं होने दूंगा। वरना आपकी हालत बड़ी खस्ता हो जायगी। उनकी बात मैं नहीं कहता। मेरा ख्याल है दस नहीं तो चार-पांच बच्चे तो और हो ही जायेंगे।"

हेमन्त बाबू विचार में पड़ गये। तब मुकुट बाबू बोले—"अरे नहीं जज साहब, अब भी आप नहीं समझे। एक बात बताइए। अगर मैं कोई मांग आपके सामने पेश करूं तो क्या आप इनकार कर देंगे?"

"वह तो मांग के नेचर पर निर्भर करता है जनाब!"

"मेरा मतलब यह है कि शरत की शादी के निस्बत आपका क्या ख्याल है? मैं यह सोचता हूँ कि माधुरी के साथ अगर उसका रिश्ता हो जाय तो हमारे सम्बन्धों में एक नये किस्म की मिठास फिर से पैदा हो सकती है। यानी हम लोग, बल्कि कहना चाहूँगा आप लोग जिस मामले में चूक गये, उसकी वजूहात चाहे जो रही हो, उस में हमारे ये बच्चे तो न चूकें।"

हेमन्त बाबू की स्थिति द्वन्द्वात्मक हो उठी। एक बार उन्होंने सोचा, माधुरी वनमाला की लड़की है। उस वनमाला की, जो मेरे प्रति कभी एक मधुर भावना रखती थी। 'हूँ' तब वे तत्काल सोचने लगे—'पर अपनी इस भावुकता को शरत के जीवन पर लागू करने का मुझे क्या अधिकार है? तब तो मुझे इस बात का पहले पता लगाना चाहिए कि आखिर वह क्या सोचता है?'

मगर फिर इतना सोचते-सोचते वे एकदम से आगे बढ़ गये और उनके मन में आया कि उसके हित और अहित को उसकी अपेक्षा मैं कहीं अधिक समझता हूँ। मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि माधुरी के साथ उसका जीवन बहुत सुख और शान्ति के साथ व्यतीत होगा।

इतने में पेशकार आ पहुँचा और फाइलें उठाकर चल दिया। फिर प्रेरणा जलपान-गृह का ब्याव ट्रे में काफी ले आया, खड़ा हुआ और साहब का संकेत पाकर प्याले में ढालने लगा।

मुकुट बाबू बोले—"एक बात और बतला दूँ जज साहब कि इस मामले में ना करने की बिलकुल गुंजाइश नहीं है। आपको मालूम ही है कि माधुरी मेरी इकलौती बेटी है। इसलिए मेरे पास जो कुछ है वह अन्त में उसी के लिए है और अन्त में क्यों अभी से है। लेन-देन से लेकर खातिरदारी में मैं कोई बात उठा न रखूँगा। इसका मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ।"

हेमन्त बाबू बोले—"मुकुट बाबू, लेन-देन का तो मेरे सामने कोई प्रलोभन है नहीं। मैं जरा सा आपकी भाभी साहिबा से पूछ लूँ। यों मेरा ख्याल है कि उनको कोई आपत्ति होनी न चाहिए। क्योंकि माधुरी उनको भी बहुत अच्छी लगती है।"

"अच्छा इस वक्त तो मैं आपसे इजाजत चाहूँगा। एकाध दिन में मैं फिर आपसे मिलूँगा।" कथन के बाद मुकुट बाबू उठकर चले गये।

हेमन्त बाबू ने पहले सिगरेट का पैकेट जेब से निकाला, फिर दिया-सलाई की डिब्बी। एक सिगरेट निकालकर पैकेट के ऊपर तीन चार बार ठोंकते रहे। फिर सिगरेट जलाई और कश लिया। वे अब विचार में पड़ गये—यों तो वासुदेव बाबू भी सोच सकते हैं कि गौरी और शरत

का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ और निकटतम हो चुका है। लेकिन उनके सोचने से क्या हो सकता है ? सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक शक्ति और ऐश्वर्य भी तो कोई वस्तु होती है। नहीं नहीं ! मैं इस भावुकता में नहीं पड़ूँगा।

फिर उनको शरत का ध्यान हो आया—हो सकता है कि वह भीतर से गौरी के प्रति कोई मधुर और कोमल भावना रखता आ रहा हो। ऐसी दशा में वह मेरी इच्छा और योजना को महत्व न देकर गौरी के प्रति अपने उद्दाम प्रेम का दावा कर सकता हो। किन्तु अब तक इतना तो वह भी समझ चुका होगा कि जो लड़की जीवन के साधारण व्यवहारों में भी समानता के स्तर पर आकर उससे निरन्तर झगड़ा करने को तत्पर रह सकती है, वह उसकी जीवन-संगिनी बन ही कैसे सकती है ?

इसी चिन्तन में लीन हेमन्त बाबू इजलास में चले गये।

हेमन्त बाबू के जीवन में इस प्रकार के अवसर आते ही रहते थे जब उनका मन जो कुछ कहता था उस पर नियन्त्रण रख कर उनको अपने पद के अनुरूप इजलास में बैठ कर अपना कार्य विधिवत् और सुचारु रूप से निर्वाह करना पड़ता था। जीवन के प्रति बौद्धिक उन्मेष रखना उनका आदर्श था। भावनाओं के ज्वार को वे विशेष महत्व न देते थे।

हेमन्त बाबू पाँच बजे तक अपनी कुर्सी पर जमे बैठे रहे। लंच के समय चालीस मिनट के लिए वे अपने निजी कक्ष में आये थे। उस क्षण में अलबत्ता उनको एक बार माधुरी का ध्यान आया था। इस लड़की की रूप-राशि में भोलापन अधिक है। शरत की आज्ञाकारिणी बनकर रहने में उसे कोई कठिनाई न होगी। यदि वह शरत को चाहती न होती, उसके प्रति उसके मन में विशेष आकर्षण और निष्ठाजन्य प्रीति न होती, तो उसके साथ मिलना-जुलना भी इतना अधिक न होता।

और भी एक बात है। वे सोच रहे थे कि यदि वह गौरी को अपने अधिक निकट मानता होता, तो माधुरी से मिलना-जुलना उसको स्वीकार

ही न होता। बहुतेरी बातें जो कही नहीं जातीं, शब्दों के माध्यम से फूट नहीं पड़तीं, वे केवल नैनों की भाषा से प्रकट हो जाया करती हैं। मैंने कई बार देखा है कि भरत से बातें करते-करते वह संकोच में पड़ जाती रही है। वह संकोच भी कुछ इस प्रकार का बान पड़ा है, जिसमें होठों से फूटती हुई मन्द-मन्द मुस्कान को वह चाहने पर भी छिपा नहीं सकी है, रोक नहीं पाई है। इन दशाओं में नमिता को कोई आपत्ति होनी तो न चाहिए।

पाँच बज जाने पर उन्होंने कुर्सी छोड़ दी। कुछ मामलों की तारीखें बढ़ा दी गईं। कुछ का निर्णय उन्होंने कर दिया। अन्तिम मामले की दो ही गवाहियाँ हो पाई थीं। जब वे इजलास से निकलकर अपने कमरे में जा बैठे, तब कुछ ऐसी बातें भी उनके मन में आईं, जिनको सोच कर वे अपने आप पर हँस पड़े।

बहुतेरी लड़कियाँ उनके बँगले पर आती थीं। व्यक्तित्व की दृष्टि से गौरी भी कम प्रभावशालिनी न थी। किन्तु उस समय सहसा उनके मन में आया कि माधुरी को इस दृष्टि से मैंने कभी देखा नहीं कि उसे एक दिन बहू बनाना पड़ेगा। फिर वे अपने आप से पूछने लगे कि क्या यह कोई विशेष दृष्टि होती है?

उस समय उनको नमिता का ध्यान हो आया—'वह युग और था। हमारी पारिवारिक सभ्यता भी आज जैसी न थी। पिता जी घर में चर्चा करते रहते थे। अम्मा से उन्होंने कहा था—तुम्हारा ही देख लेना काफी है, क्योंकि तुम्हारे ही मन का सन्तोष हेमू की शक्ति बनेगा। और प्रथम बार जब मैंने नमिता को देखा था तब मुझे अम्मा की सुरुचि पर अमित सुख और साथ ही साथ थोड़े बहुत विस्मय का भी भान हुआ था। अपने भाग्य की भी सराहना की थी मैंने।

'इसीलिए जरा सा इस बात का ध्यान हो आता है कि अगर नमिता भी माधुरी को पसन्द कर लेती और सब मिला कर वह उसी को अपना मत दे देती, तो कितना अच्छा होता!

'खैर, कोई बात नहीं। जब मैं अपना दृष्टिकोण उसके सामने स्पष्ट रूप से रख दूंगा, तब वह मेरी बात जरूर मान जायगी। वे कार में बैठ

कवे थे और उनका चिन्तन जारी था। वह अभी अपने बँगले के गेट पर पहुँचे ही थे कि उन्होंने देखा कि शरत केले के वृक्ष के पास खड़ा हुआ छानदीवारी के उस ओर कुछ देख रहा है। उसके बाद जब उन्होंने घर के अन्दर प्रवेश किया तब यह भी देखा कि वह उधर से लौटकर द्वार मंच की ओर आ गया है। तब एकाएक उनके मन में बिजली-सी कौंध गई कि अनबन हो जाने पर भी उसका उधर जाना, दस-पांच मिनट खड़े रहना, कुछ देखना, कुछ सोचना और आहट पाकर लौट आना बन्द नहीं हुआ। तब एक बार फिर जी कड़ा करके उन्होंने सोचा कि कुछ भी हो, मुझे मुकुट बाबू का प्रस्ताव मानने के लिए नमिता को राजी कर ही लेना होगा।

मानव-जीवन की वीरता का भी एक नैतिक पक्ष होता है। उसमें साहस की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। बहुतेरे विषयों में क्रोध और अनुशासन की दृढ़ता तो बाद में सहायक होती है, लेकिन साहस हमारे आत्मबल को प्रेरित ही नहीं करता उसे बढ़ाता भी चलता है। थैकरे ने तो यहाँ तक कहा है कि सच्चा साहस और शिष्टता सदा हमारा साथ देते रहते हैं। कदाचित् इसीलिए वीर लोग झगड़ों से बचकर साफ निकल जाने में अधिक कुशल होते हैं। पर मैं सराहना उस व्यक्ति की करता हूँ जो किसी का जी दुखाये बिना अपने ध्येय पर स्थिर रह कर सदा विजय प्राप्त करता रहता है।

वे अपने कमरे की ओर आगे बढ़ रहे थे और शरत कह रहा था—"मम्मी, आधे घण्टे से आपके इन्तजार में बैठी हैं। मैंने अभी फोन किया था। पता चला कि आप वहाँ से चल चुके हैं।"

हेमन्त बाबू की आदत थी कि पहले कपड़े बदलते थे, तब और कुछ करते थे। और बात जो कहते थे, उसका सम्बन्ध भी किसी न किसी भावना से संलग्न रहा करता था। यद्यपि उनका कहना था कि बुद्धि के ही शासन से यह विश्व चलता है। भावना तो प्रक्रिया पर बल देती है। कई बार ऐसा हुआ कि अपराधी को फाँसी की सजा का जजमेण्ट लिखकर आये हैं और कोट तो खूंटी पर टाँग दिया है लेकिन फिर शर्ट, पैन्ट ज्यों का त्यों धारण किये हुए ही आरामकुर्सी पर पैर फैला कर लेट

गये हैं। कभी दायीं बाहु की तरफ सिर टेक लिया है और कभी सिर पर हाथ रखकर एक गहन उदासीनता के साथ ऐसा कुछ व्यक्त कर रहे जान पड़ते हैं जैसे फांसी पाने वाला व्यक्ति उनका अपना सगा भाई हो।

लेकिन आज वे सीधे नमिता के पास आ पहुँचे और कुर्सी पर बैठकर हैट हाथ में ले लिया। टेबुल पर रखे हुए पानों में से दो चुपचाप खा लिये, ऊपर से सिगरेट जलाकर दो कश भी ले लिये।

तब तक नमिता बोली—"आज बड़े खुश मालूम पड़ते हो, क्या बात है?"

"आज मैंने तुमसे राय लिये बिना शरत की शादी तय कर दी।"

आश्चर्य के साथ नमिता ने पूछा—"माधुरी के साथ?"

हेमन्त बाबू मुसकराते हुए बोले—"हाँ!"

नमिता ने उत्तर दिया—"मैं जानती थी कि तुम अब पचास तक गिनती गिन जाने के बाद (इक्यावन शुरू न करके) उनचास की ओर बढ़ोगे। ऐसा होता है; यह मनुष्य-स्वभाव है। मैं यह भी जानती हूँ कि जैसा तुम्हारा अड़ियल स्वभाव है उसके अनुसार हो सकता है कि शरत चूं भी न करे। लेकिन इसका कोई उत्तम फल निकलेगा; यह सम्भव नहीं है। कम से कम मुझे विश्वास नहीं होता। यह तुम थे जिन्होंने यह जानते हुए भी कि वनमाला को बुरा लगेगा, बाबूजी से साफ कह दिया था कि उस लड़की के साथ तो मैं शादी कर ही नहीं सकता, जिसको अपने रूप का गर्व है। और आज मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ कि अपनी उसी कमजोरी के कारण तुमने आगा-पीछा सोचे बिना माधुरी के साथ शरत का सम्बन्ध स्वीकार कर लिया।"

"स्वीकार तो नहीं किया है मैडम, बल्कि कहा भी यही है कि नमिता से जरा सलाह करनी पड़ेगी। लेकिन मेरा उत्तर यह है कि विवाह को प्रेम के साथ मिलाकर देखना आज तक मेरी समझ में नहीं आया। आई रिफ्यूज टु एडमिट इट।"

नमिता परिस्थिति के अनुरूप अत्यन्त गम्भीर होकर बोलने के बदले मुसकराती-मुसकराती रस लेती हुई बोली—"इसका साफ मतलब यह

हुआ कि तुम माधुरी में वनमाला की छाया देख-देख कर अपने मन को थुलक सन्तोष देना चाहते हो। तुम सोचते हो, इससे वनमाला को भी बड़ा सुख सन्तोष मिलेगा। मगर मैं कहती हूँ कि नहीं मिलेगा। हर घड़ी तुम यह सोच-सोच कर कर अपने आप से लड़ते रहोगे कि यह वनमाला नहीं, उसकी लड़की है। एक तरफ़ उसकी लड़की है, दूसरी तरफ़ मेरी बहू।"

"यह तुमने खूब सोचा।" हेमन्त बाबू बोले। तब नमिता ने कहा—इसके बदले मैं एक नया प्रस्ताव तुम्हारे सामने रखना चाहती हूँ। तुम प्रयोग करके देख लो। हम लोग ऐसा प्रोग्राम बनायेंगे कि एक दिन मुकुट बाबू हमारे घर सपत्नीक खाना खायेंगे, फिर दूसरे दिन हम लोग मुकुट बाबू के यहाँ खाने पर बैठेंगे। ज़ाहिर है कि इस तरह हमारे सम्पर्क घनिष्ट से घनिष्ट होते जायेंगे। मैं तुमको खुली छूट देती हूँ कि तुम वनमाला के साथ अपने पूर्व सम्बन्धों को रिन्यू ही न करो, बल्कि उनको चरम सीमा तक ले जाओ। यहाँ तक आगे बढ़ जाओ कि मुकुट बाबू को डाइवोर्स करने की नौबत आ जाय। उसके बाद भी क्या तुम पूरी तरह सन्तुष्ट हो जाओगे कि वनमाला हो जायेगी? फिर तुम दोनों को इस दुनिया से कोई शिकायत न रह जायगी? आई टू रिफ्यूज टु एडमिट इट।"

नमिता की इस बात को सुन कर हेमन्त बाबू स्तब्ध हो उठे। एकाएक वहाँ से उठे और कपड़े बदलने के लिए अपने रूम में चले गये।

नमिता सोचने लगी कि मेरी बात कहीं इनको खल तो नहीं गई?—नहीं। बात में कुछ आधार न होता, तो ये अभी अपने तर्कों से मुझे निरुत्तर कर देते। मगर ये तो अकसर कहा भी करते हैं कि तर्क से सिद्ध होने वाले निष्कर्ष प्रेम के मामले में कभी खरे नहीं उतरते। पराजित हो जाने के बाद वनमाला अब इस स्थिति में आकर रो-रोकर इनके चरण भिगोना भी शुरू कर दे, तो भी यह बात तो ये कभी भूल नहीं पायेंगे कि यह वह नारी है, जिसने अपनी सखियों में घोषणा कर-कर के यह प्रचारित कर दिया था कि वे मुझसे छूट कर जायेंगे कहाँ?

एक और बात थी। जीवन के अनुभव ने बताया था कि हेमन्त बाबू

में उतनी भी वासना नहीं है जितनी एक सामान्य पुरुष में होती है। चिन्तन का उनके जीवन में इतना प्राधान्य रहा है कि वासनात्मक उत्तेजना को इन्होंने कभी उभरने नहीं दिया। इसलिए आज जिस प्रयोग का प्रस्ताव इनके सामने मैंने रखा है उसमें रस न लेकर वे अपने पतन की ही काल्पनिक छाया देखेंगे। साल में एक बार भरत के जन्म-दिवस पर वनमाला देवी यदि यहां आई भी हैं तो मुझको कहना पड़ा है कि यदि आप लोग चुप ही बने रहेंगे तो मैं उठ कर चली जाऊँगी। तब इन्होंने हँस कर टाल दिया है। जो कुछ भी बातचीत हुई है वह केवल मुकुट बाबू से। तात्पर्य यह कि ये यह ही मानते आ रहे हैं कि जो कुछ भी हुआ वही उचित भी था। ऐसा भी हुआ है कि मुझे कभी कुछ कहना न पड़े, इसलिए इतना ही पूछ लिया है—'कहिए वनमाला जी, आपको बचपन प्यारा लगा कि सावन में पड़े हुए द्वार के झूले में पेंग बढ़ाता हुआ यह तारुण्य ?' अगर यह बात भी पूछी कि आपको यह जीवन लगा कैसा, तो इस प्रश्न को भी प्रायः इसी शब्दावली में लपेट कर पूछा है कि गुलाब के काँटों ने आपकी आँखें खोल कर, आपको अधिक से अधिक सजग बना कर अपना प्यार दिया कि अपने स्वाभाविक रंग और बिखेरते हुए सौरभ के नव-नव दलों ने ? कभी पत्ती को तर्जनी और अँगूठे की पोरों के बीच मसल कर भी देखा कि उसमें खुशबू है कि नहीं ? उसकी तुलना में दोनामरुआ की पत्ती को बीच से तोड़ कर उसके सौरभ को नासिका से ग्रहण कर के कभी सोचा कि सौन्दर्य, रंग और रूप में अधिक है, अथवा अधिक टिकाऊ खुशबू के भाव बोध में ? कभी कुछ छिपाया नहीं। सदा एक दार्शनिक दृष्टि ही झलक कर रह गई है। इसलिए मुझे तो अब भी यही विश्वास है कि इतना स्पष्ट रूप से कह देने के बाद माधुरी को अपनी बहू बनाने की बात अगर इनके मन में पैदा भी हुई होगी, तो अब उसे अपने मन से अवश्य ही निकाल देंगे। क्यों कि इतनी गुंजाइश तो इन्होंने अब भी रक्खी है कि पक्की बात तो तभी होगी, जब मेरी स्वीकृति मिल जायगी।

इतने में हेमन्त बाबू चिकन का कढ़ा हुआ कुर्ता और सफेद पैजामा पहने और मारकोपोलो सिगरेट का खुशबूदार धुवाँ उड़ाते हुए चले आये

और पूछा—"अब तुम अपनी कहो। इन्तजार काहे का था। टेलीफोन क्यों करवाया था ?"

नमिता ने उत्तर दिया—"एक ग्राम कन्या कुछ प्रार्थना करने के लिए आयी है और आंगन में बैठी है।"

उपेक्षा के स्वर में हेमन्त बाबू बोले—"आई होगी। पहले नाश्ता करवाओ।"

नमिता ने मजाक में कह दिया—"यह ढंग अच्छा है तुम्हारा कि कोई फेमिनिन जंडर प्रार्थी आये तो उससे बात तब की जाय, जब पहले नाश्ता करवा दिया जाय उसको।"

हेमन्त बाबू बोले—"मजाक छोड़ो। इतनी देर से जली-कटी सुना रही हो। अभी तबीयत नहीं भरी।"

नमिता ने मज्जू को पुकार कर कहा—"साहब का नाश्ता ले आओ।"

हेमन्त बाबू नाश्ता करते जाते थे और सोचते जाते थे कि आज इस ने इतनी गम्भीर बात कह डाली। जिसको मैं सदा के लिए भूल चुका था, उसी को प्राप्त करने का प्रस्ताव कर बैठी। इसका तात्पर्य तो यह हुआ कि इसके मन की ग्रन्थि खुली नहीं है। यह सोचती है कि वनमाला के प्रति कोई कोमल भावना मैं अब तक अपने हृदय में छिपाये बैठा हूँ। नारी का यह सन्देह बड़ा ही निर्मम होता है। हेवलॉक एलिस ने कहा है कि सभ्य लोग जब प्रशान्त महासागर में आये, तब उनके पास चार चीजें थीं शराब, सिफलिस, पतलून और बाइबिल। और मैं कहना चाहता हूँ कि आदम ने जब हव्वा को देखा, उस वक्त वह यह सोच ही न सकता था कि इस सुन्दरतम व्यक्तित्व में सन्देह नाम का कीड़ा भी कहीं-न-कहीं जरूर कुलबुला रहा होगा। और मुसीबत यह है कि आज भी सन्देह नारी प्रकृति का एक अंग बना हुआ है। इतने युग-परिवर्तन हुए, मगर नारी के स्वभाव में कोई अन्तर नहीं पड़ा।

लेकिन हेमन्त बाबू के स्वभाव की विशेषता यह थी कि अक्सर जब उनको क्रोध आता था तो उस पर परदा डाल कर वे मुसकरा कर बात करते थे।

कॉफी का प्याला समाप्त करते-करते उन्होंने नमिता से कह दिया—"मथुरादास बाबू का तो यहां तक कहना है कि यह शादी सब मिला कर आपको एक लाख में पड़ेगी। साठ हजार का तो मकान मिलेगा और चालीस हजार वे दहेज के उपहारों और भेंटों में खर्च करेंगे। व्यवहार में जो कुछ आयेगा, सो अलग।"

नमिता बोली—"आज यह तुमको हो क्या गया? बात की बात में आज तुम्हारी सारी मान्यताएँ बदल गईं। व्यक्तित्व के आगे धन की जिस महत्ता का तुमने कभी ख्याल नहीं किया, आज तुम उसी का पक्ष ले रहे हो।"

"पक्ष मैं इसलिए ले रहा हूँ कि अपनी साधारण स्थिति से उन्नति करते-करते मैं जो यहाँ आ पहुँचा हूँ, उसके संघर्ष ने मुझे यही पाठ पढ़ाया है। मैं उस प्रेम को कोई महत्व नहीं देता जो प्रतिष्ठा और सम्पत्ति की ओर से ध्यान हटा कर केवल एक भावुकता के रूप में रोनी सूरत लिये हमारे सामने खड़ा होता है। मैं ऐसे प्रेम पर विश्वास ही नहीं करता, जिसमें स्वभावगत वैषम्य की कटुता नित्य नयी समस्याएँ लेकर हमारी निष्ठा-भावना का मुंह नोच लेने की चेष्टा करती हुई नहीं लजातीं!"

"यहीं मुझे आपके साथ मौलिक मतभेद है। जब आदमी अपने आप से लड़ना नहीं छोड़ सकता, तब मित्र हो या पत्नी, प्रेयसी हो या माँ बन चुकी हो, उसके साथ अपनी स्वाभाविक मत-विभिन्नता को वह भूल कैसे सकता है, छोड़ कैसे सकता है? तुमको वे दिन भूल गये, जब दो चिट्ठियों का उत्तर न देने पर मैंने तुमको पहले टेलीग्राम भेजा था और उसके बाद छोटे भैया को लेकर मैं स्वयं तुम्हारे पास आ पहुँची थी। उस समय भी मेरा स्वाभिमान मर नहीं गया था, जबकि शरत गर्भ में था।"

हेमन्त बाबू बोले—"इस समय अगर तुम इस तरह की पुरानी बातें उठा कर मेरा सोया हुआ दर्द जगाने की चेष्टा करोगी, तो कैसे काम चलेगा? मैं पूछता हूं कि शरत के भविष्य-निर्माण के लिए अगर इतनी बड़ी रकम मिल जाती है तो इसमें कौन सी बुराई है? फिर उस दशा में जबकि वह माधुरी को चाहता भी है।"

नमिता बोली—"तुम शायद यह कहना चाहते हो कि वह गौरी को नहीं चाहता !"

"व्यवहार रूप में तो मैंने ऐसा ही देखा है। और फिर विवाह के मामले में प्रेम का प्रश्न कहाँ उठता है ? तुम्हारे साथ जो मेरा ब्याह हुआ तो उसके मूल में क्या प्रेम था ? नहीं था न ? फिर हमारे जीवन में सुख-सन्तोष का कौन-सा अभाव रह गया ? गौरी से विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता। कहाँ वासुदेव बाबू और कहाँ मैं ! समान गुण-लक्षण और मर्यादा तो हमको हर हालत में देखनी पड़ेगी। वासुदेव बाबू को हम मित्रता की सहानुभूति मात्र दे सकते हैं, वैवाहिक सम्बन्ध उनके साथ नहीं जोड़ सकते।"

इतना कह कर वे अपनी बैठक में चले गये और गज्जू को आदेश देते हुए बोले—"वो जो लड़की गाँव से आई है, उसको बैठक में भेजो।"

"डैडी-डैडी मैं पास हो गया और पोजीशन भी मैंने सैकेण्ड पायी है।"—चिल्लाते और भागते हुए शरत ने अन्दर आते-आते हेमन्त बाबू के पैर छू लिए।

शोर सुन कर नमिता बाहर आ गई। शरत ने तुरन्त माँ के पैर छू लिये। नमिता ने आशीर्वाद दिया—"सुखी रहो, विजय करो। तुम्हारी सैकेण्ड पोजीशन आई, इसका मतलब यह हुआ कि गौरी फर्स्ट आ गई !"

शरत कुछ नहीं बोला। इतने में गौरी आ गई। पहले हेमन्त बाबू के पास जाकर बोली—"चाचा जी, आपके आशीर्वाद से मैं पास हो गई।"

नमिता से न रहा गया और उसने कह दिया—"देखो गौरव की बात को छिपा कर कितने सामान्यरूप से बतला रही है कि मैं पास हो गई। भीतर चल पहले, तेरा मुँह मीठा करूँ।"

शरत ने एक बार गौरी की ओर दृष्टि डाली और फिर माँ की ओर। फिर जब गौरी भीतर जाने लगी, तो वह भी पीछे से भीतर चल दिया। भीतर से वह बहुत प्रसन्न था और सोच रहा था कि हमारे इन्सपेक्टर

ऑफ स्कूल्स महोदय एम० ए० थे शिक्षाशास्त्र में और उनकी श्रीमती वन्दिता देवी पी-एच० डी० थीं।

गौरी सोच रही थी—शरत ने मुझको बधाई नहीं दी, लेकिन मुझे अब— ।

नमिता ने शरत से कहा—"सफेद रसगुल्ले बंगाल स्वीट हाउस से ले आ।"

बाहर हेमन्त बाबू कह रहे थे—"तुम्हारा मामला बड़ा नाजुक है। तुम्हारे पति जब अपनी माँ का साथ नहीं-छोड़ सकते, तब इसी आधार पर तुम अपने स्वामी को तलाक नहीं दे सकतीं। तुम्हारा यह कहना गलत है कि स्वामी तुम्हें नहीं चाहते, जब कि तुम दो बच्चों की माँ बन चुकी हो।"

इसी समय कार रुकने की आवाज के साथ-साथ मुकुट बाबू का स्वर सुनाई पड़ा, वो कह रहे थे—"बधाई हो, जजसाहब बधाई हो! शरत के पास होने की मुझे इतनी खुशी हुई कि बयान नहीं कर सकता।"

नमिता, गौरी और शरत सब बाहर आ गये और वनमाला हेमन्त बाबू के सामने आ कर पुलक हास को होठों के भीतर रखती हुई बोली—"आप तो वादे ही करते रहे और मैं आ भी गई।"

हेमन्त बाबू ने उत्तर दिया—"आने जाने में देर-सबेर का हिसाब बाहर वालों के लिए होता है। घर वालों के लिए तो पूरी छूट होती है, जब चाहे आयें। पर इधर तो आपने मिलना-जुलना भी छोड़ रखा है।"

ड्राइवर की ओर मुकुट बाबू बोले—"अरे माँगीलाल, वो मिठाई की डलिया तो उठाना।" और हेमन्त बाबू की ओर दृष्टि डाल कर उन्होंने कह दिया—"यह शरत के लिए पास होने की खुशी में।"

सब लोग कमरे के अन्दर की ओर चल रहे थे। जरा सा रुक कर हेमन्त बाबू ने पूछा—"माधुरी का क्या हुआ?"

वनमाला बोली—"पास तो वह भी हो गई है।" हेमन्त बाबू सोचने लगे—'लगता है थर्ड डिवीजन मिला है।'

मुकुट बाबू ने मन-ही-मन में कुछ स्थिर करते हुए शरत से पूछा—"अब तुम्हारा आगे का क्या प्रोग्राम है?"

शरत ने उत्तर दिया—"चाचा जी, अब मैं इलाहाबाद विश्व-विद्यालय से एम० ए करना चाहता हूँ।"

मुकुट बिहारी ने हेमन्त बाबू की ओर उन्मुख होकर कहा—"जज-साहब मेरे विचार से तो अब इन दोनों को इंग्लैण्ड भेज देना चाहिए।"

शरत को इंग्लैण्ड जाने की बात ने चौंका दिया। फिर तुरन्त उसे गौरी की याद आ गयी, जिसने कभी कहा था—"देखो, मेरे साथ ज्यादा शैतानी मत करो। नहीं तो जानते हो, उसका क्या परिणाम हो सकता है!"

गौरी ने एक बार शरत की ओर देखा और तुरन्त नमिता से यह कह कर कि "चाची देखूं शायद पिता जी आ गये हों।" फाटक की ओर चल दी।

वह गम्भीर हो उठी थी।

थोड़ी देर बाद मुकुट बाबू और वनमाला चाय पीकर जब बैठक से उठने लगे तो मुकुट बाबू कह रहे थे—"तो फिर अगले वृहस्पतिवार को वरिच्छा का सगुन होना तय रहा।"

मुकुट बाबू ने सौ रुपये के नोट के ऊपर एक रुपये का नोट रखकर हेमन्त बाबू की तरफ बढ़ाते हुए कहा—"यह रहा चाय का दाम; और आपको लेना ही पड़ेगा, क्योंकि आपके कहने से मैंने चाय पी ली।"

हँसते-हँसते हेमन्त बाबू बोले—"इसका मतलब तो यह हुआ कि यह रिश्ता क्या तय किया हम लोगों की मित्रता का जो पुराना रिश्ता था, वह समाप्त हो गया; क्योंकि अब आप हमारे यहाँ चाय भी न पियेंगे?"

मुकुट बाबू हँसते-हँसते बोले—"चाय क्यों नहीं पियेंगे! मित्रता की जगह मित्रता निभायेंगे। पर यहाँ तो रिश्ते का सवाल आ गया न!"

नमिता जो अब तक चुप थी, बोली—"दाम ही अगर देने का सवाल है तो इस चाय का बिल यहाँ के बड़े से बड़े रेस्तराँ में भी पाँच रुपये से ज्यादा नहीं हो सकता और रिश्ते के कारण पाँच रुपये की जगह पर अगर एक सौ एक रुपये मिलते हैं तो मैं चाहूँगी कि आप हमारे यहाँ नित्य चाय पियें।"

इस पर सब लोग हँस पड़े।

: १७ :

मोहन बाबू कोठे की सीढ़ियों से उतर रहे थे। एक-एक सीढ़ी पर नागरे के सफेद जूते का पग रखते हुए वे सोच रहे थे—कितने वर्षों के बाद आज ऐसा अवसर मिल रहा है कि यहाँ के कुत्सित, सड़ाँद भरे, बासी वीभत्स जीवन से मुक्ति मिल रही है। अब कम से कम इतना तो होगा कि हमारे जीवन की हर साँस—इच्छा, विचार, संस्कृति और स्वतंत्रता की होगी। यह तो ठीक है कि संगीत-कला की उपासना के क्रम में मृदंग-वादन तो छूट नहीं सकता। लेकिन फिर वह उपलब्धि भी कितने महत्व की होगी, जिसकी संयोजना का उद्देश्य हमारे सांस्कृतिक कार्य-क्रमों की सफलता के साथ निहित और संलग्न होगी।

वे मूलगंज से रिक्शा करके गंगा पार जाते हुए रास्ते में सोचते जाते थे।—यों तो मैं सीधे बम्बई का भी टिकट कटा सकता हूँ, लेकिन आज रेल से यात्रा करना पूर्ण रूप से निरापद न होगा। फिर अभी तो पन्ना से भेंट भी करनी है। बहुधा हम सोचते कुछ हैं, होता कुछ है।

क्षण भर बाद रिक्शे वाले से बोले—"जरा बचा कर पहलवान, यह ट्रक वाले सुनते हैं वर्ष भर में दस-पन्द्रह हत्याएँ अवश्य करते हैं। बात यह है कि जुरमाना मात्र देकर छूट जाते हैं क्योंकि न्याय-विधान यह कह कर छुट्टी पा लेता है कि इन लोगों का उद्देश्य किसी की जान ले लेना तो होता नहीं है।"

कथन के बाद वे फिर सोचने लगे—"सब महाजनी सभ्यता का प्रताप है। यही लोग हैं जो ऐश्वर्य की पूजा के आगे मानवता को कुचलते हुए नहीं अघाते।"

कभी-कभी उनके मन में आता, सब भविष्य के गर्भ में है। पता नहीं ये नगर, ये गलियाँ, ये सड़कें, महात्मा गांधी मार्ग के यह जलपान-गृह अब कब देखने को मिलेंगे····?

रह-रहकर उन्हें उसी नरक की याद आ जाती। अन्त में तो वे मन ही मन यह भी कहने लगे—अन्तर्यामी, तुम इन शोहदों और गुण्डों को

भी कैसे क्षमा कर देते हो, जो दूसरों की बहू-बेटियों का शील भंग करते समय तुम्हारी इस अनोखी और महिमामयी सृष्टि को भूल जाते हैं।

फिर ध्यान आया—कंगन बाई को अफ़सोस तो जरूर हुआ, लेकिन ऐसा कुछ नहीं जान पड़ा कि उसकी बोटी कट गई हो, जिसके ऊपर अब सेरों माँस चढ़ आया है। लड़कियाँ आती हैं और कभी-कभी चली भी जाती हैं। जिन दलाल-गुण्डों को हाथापाई और मारपीट तक के लिए वह खिलापिला के सदा सजग और तत्पर बनाये रखती है, वे सब भी अन्त में पैसे के ही गुलाम होते हैं।···पन्ना तो इन लोगों को सदा कुछ न कुछ टिप करती रहती थी। इसलिए उसके हित के विरोध में इन लोगों का पैर या तो उठेगा ही नहीं और अगर किसी ने आगे बढ़कर हाथ बटाया भी तो उसका कोई परिणाम न होगा। कोई भी सिपाही ऐसा नहीं था जो पन्ना के व्यवहार से कभी अप्रसन्न रहा हो। पर जहाँ तक पैसे का सम्बन्ध है, बस वहीं तक। देहरस के दान की बात उठाना भी इस वर्ग के लिए सम्भव न था। अपने इस गौरव और सम्मान के सम्बन्ध में उसकी प्रसिद्धि और दृढ़ता बहुचर्चित थी। फिर कंगनबाई को तो समय-समय पर यह भी कहने का अवसर मिला करता था कि 'सरकार अभी उसकी नथुनी नहीं उतरी है।'

"आगे जो बस आ रही है, रिक्शे वाले इससे बचना।"

मोहन बाबू सोचते जा रहे थे—बहुत दिनों से गाँव जाने का अवसर नहीं मिला। हफ्ते-दो हफ्ते बाद सड़क पर जो गाँव का परिचित बन्धु मिल जाता था, तो कभी-कभी कुछ संकोच भी मन ही मन उत्पन्न हो उठता था। पर अब जब मैं कहूँगा कि पन्ना मेरी विवाहिता स्त्री है तब ऐसी कोई बात न होगी।

उत्साह और उमंगों की लहरें जब महासागर का ज्वार बन जाती हैं, तब सम्भावना के विपरीत पक्ष आडम्बर छोड़कर इसी धरती पर सड़क के किनारे खड़े नजर आते हैं।

मोहन बाबू सोच रहे थे—पन्ना ऐसी लड़की है, जिसको हम समाज के किसी वर्ग के भीतर पूर्ण विश्वास के साथ, इस आशा के साथ, छोड़

सकते हैं कि वह अपना सम्मानपूर्ण स्थान तो बना ही लेगी, साथ ही जन-जन के साथ अपना मृदुल सम्पर्क भी स्थापित कर लेगी।

गंगा के इस पार मन्दिर के निकट पहुँचने के लिए मोहन बाबू ने फिर अपना रिक्शा मार्ग में ही छोड़ दिया। दो मिनट के अन्दर मुसकराती हुई पन्ना उनके निकट आकर बोली—"मैं जब यहाँ आई थी उस समय ऐसी भीड़-भाड़ ही नहीं हो पाई थी कि पोशाक बदलते समय कोई मुझे देख भी पाता। सब काम बड़े ढंग से हो गया। मोहन बाबू, अगर मैं अबसे आपको सिर्फ बाबूजी कहूँ तो आपको कोई ऐतराज तो न होगा?"

मोहन बाबू हँस पड़े और बोले—"सामाजिक नातों के अन्य सारे दावे धूमिल पड़ जाते हैं, जब प्रीति आँखें खोल कर मुसकरा देती है। इसलिए मेरा तो यही कहना है कि हमारे व्यवहारों में बनावट जैसी कोई चीज नहीं होनी चाहिए। हमें अपने आपको बहुत अधिक छिपाने की आवश्यकता इसलिए न पड़ेगी कि अब हम अँधेरे में चलना छोड़ चुके हैं। क्योंकि पन्ना, कुछ भी हो, इतना तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि दुनिया में जो कुछ भी उजाला तुम देख रही हो, वह उस सूरज का दिया हुआ है जिसको हम प्रेम कहते हैं।"

"यह तो आप ठीक कहते हैं।"

"सवाल यह नहीं है कि तुम मुझको क्या कहोगी। सवाल सच पूछो तो यह है कि तुम मुझको क्या नहीं कहोगी। फिर मैं तो तुमसे इस बात की भी आशा करता हूँ कि तुम इस बात को अच्छी तरह समझ लोगी कि प्रेम महलों के झरोखों से ही नहीं, झोपड़ियों के उन छप्परों से भी झाँकता है, जो जंगली घास से बनते हैं।"

पन्ना मोहन बाबू के साथ-साथ कन्धे से कन्धा, कदम से कदम मिलाती हुई चल रही थी। एकाएक उसने प्रश्न कर दिया—"अब तुम मुझे कहाँ ले चलोगे?"

मोहन बाबू ने उसके कन्धे पर हाथ रख लिया। गले में हाथ डाला और वक्ष के दाहिनी ओर चिपकाते हुए बोले—"घबराओ नहीं। आज

से हम अपना नया जीवन शुरू कर रहे हैं। इसीलिए तुमको हम अपने घर लिये जा रहे हैं।"

"वहाँ कौन-कौन है ?"

"पिताजी तो नहीं हैं, लेकिन माँ अभी जीवित हैं। छोटा भाई है, दुलहिन है और अब तो शायद एकाध बच्चा भी हो गया होगा।"

"वे कुछ कहेंगे तो नहीं बाबूजी ?"

"देखो पन्ना, माँ सदा माँ होती है। हम कैसे भी हों, उसका प्यार हमको सदा मिलता है। फिर तुमको उस नरक कुण्ड से निकालकर मैंने कुछ बुरा काम तो किया नहीं !"

"लेकिन बाबू, मेरे सम्बन्ध में तुम उनसे कहोगे क्या ?"

"कहूँगा कि पन्ना मेरी जीवन-संगिनी है। और ऐसा कह कर क्या मैं मैं उनसे कोई झूठी बात कहूँगा ?"

पन्ना के मन में आया कि वह मोहन बाबू के वक्ष में अपना सिर गढ़ा ले और आनन्द के आँसुओं को पोंछती हुई आर्द्र कण्ठ से कह दे—"सचमुच तुम बहुत अच्छे हो बाबू ! बहुत प्यारे लगते हो मेरे प्राणों के देवता !"

केवल उनका मन लेने के लिए उसके मुँह से निकल गया—"तब तो हमको बाकायदे विवाह कर लेना चाहिए।"

मोहन बाबू ने जवाब दिया—"देखो पन्ना, इधर मेरी तरफ देखो। बस्ती में वह जो मन्दिर दिखलाई पड़ता है।"

"हाँ, दिखलाई तो पड़ता है।..."

"उसमें जिस देवता का वास है, वह हमारे मन में भी आ सकता है, घुस सकता है, बैठ सकता है, पैठ सकता है; तो उसको अपने भीतर उपस्थित मानकर, हम यहाँ खड़े होकर यह प्रतिज्ञा करते हैं कि अपनी जीवन भर की समस्त इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं के समवेत स्वर तथा (कहो कि हम प्रतिज्ञा करते हैं कि) मन, वचन और कर्म से हम दोनों मिलकर एक रहेंगे। कहो !"

पन्ना मुसकराती हुई बोली—"यह बात तो मैं तुम्हारे बतलाने से

पहले ही मन-ही-मन कह चुकी थी और सुनने वाला भी और कोई नहीं मेरा अन्तर्यामी ही था।"

"तो बस पन्ना, ब्याह हमारा-तुम्हारा हो चुका। अब रास्ते में जहाँ कहीं फल-फूल, मिठाई, रोली, चन्दन मिलेगा, फौरन किसी मन्दिर में चलकर पूजा कर लेंगे।"

पन्ना कुछ नहीं बोली। वह सोच रही थी—मोहन बाबू से मैं ऐसी ही आशा करती थी।

मतलब यह कि तुमको यह कहने और समझने का भी मौका न रहेगा कि हमारा ब्याह नहीं हुआ है। यह बात अच्छी तरह से समझ लो, क्योंकि मेरे कहने से नहीं, आवश्यकता पड़ने पर अपने मन से भी, तुम्हें यही कहना होगा। कोई कुछ भी कहे पन्ना, आत्मा की सचाई अगर हमारे साथ रहे, तो समझ लो कि परमात्मा का दाँया हाथ हमारे सिर पर है क्योंकि जो सत्य के मार्ग पर चलना शुरू कर देता है, उसे फिर संसार में किसी बात का भय नहीं रह जाता।"

"बाबू, आज जैसी बातें तुम मुझे बतला रहे हो, आज जैसा कुछ कह रहे हो वैसा पहले भी तो कह सकते थे। अब तक क्यों नहीं कहा ?"

"हाँ, नहीं कहा पन्ना!" कहते-कहते मोहन बाबू का कण्ठ कुछ भर आया और तब वे बोले—"एक तो वैसा कोई अवसर न मिला, दूसरे मैं तुमको भी इतना नहीं समझ पाया था। और अब तो यह बात मान लेने में भी मुझे कोई संकोच नहीं है कि कुछ कमजोरी तो मुझमें भी थी कि अन्धकार को चीर कर प्रकाश की कोई किरण मैं पा नहीं सका था। यह बात तो तब पैदा हुई, जब कल रात को रो-रोकर तुमने अपना दुःख बतलाया और विवश किया कि तुम्हें उस नरक से निकाल कर अपनी एक नयी दुनिया बसाना मेरे और तुम्हारे दोनों के लिए आवश्यक हो गया।"

हँसती, मुसकराती और कभी-कभी ठठोली करती पन्ना बोली—"तो सचमुच तुम मेरी ससुराल ले जा रहे तो ?"

मोहन बाबू ने फिर उसे वक्ष से चिपका कर कह दिया—"हाँ पन्ना, नयी दुनिया बसाये बिना गति कहाँ है ? कितने दिन हो गये, जरा सोचो मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं कहा। पर क्या मेरे मन में कभी कोई आँधी

उठती ही न थी ? जब कि मैं तुमको तुम्हारा इस देह के रूप में नहीं, अपनी देह का ही एक अंग समझता था ।"

वे अभी बस्ती से गुजर ही रहे थे कि रेडियो से प्रसारित होने वाला एक गीत सुनाई पड़ गया—'ओ गोरी मोसे गंगा के पार मिलना ।'

गीत के बोल सुन कर क्षण भर के लिए दोनों वहीं खड़े हो गये । तब मोहन बाबू की आँखों में आँख डाल कर पन्ना बोली—"मैं कभी-कभी इसी तरह का स्वप्न देखा करती थी और आज जब वह स्वप्न पूरा हो रहा है तो मुझे अपनी माँ की याद आ रही है ।" पन्ना अपने अंचल से आँसू पोंछने लगी ।

इसी समय मोहन बाबू बोल उठे—"घर पहुँचने के पहले तुमको सचमुच बहू के अनुरूप बनाने के लिए थोड़ा-बहुत रूपक तो रचना ही पड़ेगा । इसलिए पहले उन्नाव चल कर कुछ सामान खरीद लें, फिर घर चलें । मेरे पास तो कुल जमा सवा सौ रुपये बचे हैं ।"

पन्ना बोली—"घबराते क्यों हो ? करीब चार सौ रुपये मेरे पास हैं ।"

स्टेशन की तरफ बढ़ते हुए मोहन बाबू बोले—"तब ठीक है । इतने में हमारी लाज रह जायगी और कोई कुछ कह भी न पायेगा ।"

: १८ :

नन्दलाल बाबू आफिस से होकर जब घर पहुँचते, तो कपड़े बदल कर हाथ-पैर धोकर चाय-नाश्ता ग्रहण करने में लग जाते । लेकिन अब स्थिति दूसरी थी । नाश्ता वे बाद में करते, मुन्ना को, जिसका नाम अब महेश हो गया था, देखने और उसे खिलाने के लिए सत्यवती के पास जा पहुँचते ।

अब उनका मन कुछ बदल गया था । सुरेश को अपना स्नेह देने में उनको यह अनुभव होने लगा था कि यह केवल शिष्टाचार है । वास्त-

विकता का इसमें बिलकुल अभाव है। अपना तो वही हो सकता है जो वास्तव में अपना अर्थात् आत्मज होता है, जिसकी उत्पत्ति के साथ अपने रक्त का सम्बन्ध होता है।

अब महेश एक महीने का हो चुका था। पालने से उठा कर गोद में लेते और उसे प्यार करते हुए वे सोच रहे थे कि एक दिन यह भी सुरेश के समान बड़ा होगा। और ऐसा भी हो सकता है कि यह अपने पीछे कुछ भाइयों को ले आने का एक पवित्र नियोजन लेकर चला हो।

एक गर्व का अनुभव करते हुए उन्होंने सत्यवती से पूछा—"सुरेश से कुछ बात तो तुमने की न होगी?"

सत्यवती ने कुछ रुखाई के साथ उत्तर दिया—"मुझसे मतलब? मैं क्यों बात करूँ? बात तुम करो, क्योंकि तुम उसको अपना सगा लड़का मानते रहे हो।"

"बहुत बहको मत। मानने को तो तुम भी मानती रही हो, क्योंकि इसके सिवा कोई चारा ही नहीं था। इतने दिन तक जो हमारे मनबोधन का एकमात्र सहारा रहा हो, उसको एकदम से अलग कर के देखने लगना, तुमको भले ही अच्छा लगे, मुझको नहीं लगता। तुम यह क्यों नहीं सोचतीं कि सम्भव है, उसी के कारण भगवान ने हमको ऐसा सुदिन दिखलाया हो। कृतज्ञता के चित्र को अपनी जगह पर ही स्थिर बना रहने दो। महेश की माँ, उस चित्र को हटा कर इधर-उधर फेंक देने में हमारी बिलकुल शोभा नहीं है। सुरेश अपना सगा लड़का न सही, लेकिन भतीजा भी नहीं, यह मैं नहीं मान सकता। और भतीजा भी भतीजा होता है, शत्रु नहीं।"

सत्यवती उसी तरह से झपट पड़ी, जैसे कोई सामने से भागता हुआ चूहा हो। एकदम बात को मुँह में दबोच कर भागती हुई सत्यवती बोली, "अरे हटो। मैंने सब देख लिया, इन्हीं दस दिनों में। हाथी के दाँत खाने के और होते हैं दिखाने के और। दूर क्यों जाऊँ, आज ही की तो बात है कि छोटी साग बना रही थी और मैं नहाने-धोने में लगी थी। सुरेश को सहेज कर गई थी कि भैया को देखे रहना। लेकिन मैं नहा भी न पाई थी कि भैया एकाएक चीख पड़ा। आते ही मैंने देखा कि उसके गाल में

एक लाल-लाल दाग है। तब मुझे विश्वास हो गया कि सुरेश ने अवश्य उसके चिकोटी काटी होगी। जो सुरेश इतने छोटे बच्चे को गाल पर चिकोटी काट कर उसे रुलाने में नहीं झिझकता, वह मौका पड़ने पर क्या नहीं कर सकता?"

नन्दलाल बाबू ने सोचा—'सत्यवती का अनुमान कभी असत्य नहीं निकलता।'

इतने में सत्यवती बोली—"आज छोटी कह रही थी कि उसकी चिट्ठी आ गई है। उसमें उन्होंने लिखा है, सुरेश को साथ लेकर चली आओ। थोड़े दिन वह भी रह जायगा।"

नन्दलाल बाबू ने महेश को सत्यवती की गोद में देते हुए उत्तर दिया—"थोड़े दिनों के लिए क्यों? अब तो उसे हमेशा के लिए जाना होगा। संसार का असली रूप मैंने देख लिया है, मैं नित्य देखता हूँ कि सुरेश मुझसे खिचा-खिचा रहने लगा है। महेश का पैदा होना उसे अच्छा थोड़े ही लगा।"

यह बातें जब सत्यवती के कमरे में चल रही थीं, तब कावेरी बगल के कमरे में नाश्ते की सामग्री रखने के लिए उसी कमरे के दरवाजे की चिक के पास से जा रही थी। थोड़ी देर बाद जब नन्दलाल बाबू नाश्ता कर चुके और उसने यह भी देख लिया कि सुरेश के उपस्थित रहने पर भी दादा ने उसको अपने साथ चाय पीने और नाश्ता करने के लिए नहीं बुलाया, तब सायंकाल उसने स्वयं नन्दलाल बाबू के पास जाकर कहा—"दादा, अब मैं चाहती हूँ कि आप मुझे कानपुर लौट जाने की अनुमति दे दें। इधर सुरेश बहुत दिनों से उनसे नहीं मिला है। उसका भी कानपुर जाने का बहुत मन है।"

नन्दलाल बाबू ने कुछ रुखाई के साथ उत्तर दिया—"कानपुर जाने का बहुत मन है तो उसको जाने से मना किसने किया है? जो जिसका होता है, वह वहाँ जाता ही है।"

कावेरी ने अनुभव किया कि पिछली बार जब मैं यहाँ आई थी, तब की बातों में और इनकी आज की इस बात में बड़ा अन्तर है।

उत्तर में उसने कुछ कहा नहीं और सीधे वह जिठानी के पास जाकर

बोली—"मैंने दादा जी से भी पूछ लिया है। अब मैं कल सुरेश के साथ चली जाना चाहती हूँ।"

सत्यवती बोली—"हाँ, ठीक है छोटी! मगर तुम जरा सुरेश को मेरे पास भेज दो तो मैं भी उससे दो बात कर लूँ।"

जब सुरेश अपनी बड़ी अम्मा के पास पहुँचा, तो उन्होंने कहा—"मैंने अभी सुना कि तुम छोटी के साथ जा रहे हो?" सुरेश कुछ नहीं बोला। तब सत्यवती ने कहा—"यों मैं सोच रही थी कि पढ़ाई तुम्हारी पूरी हो ही गई। अब तुमको बड़ी आसानी से नौकरी मिल जायगी और घर-गृहस्थी को सम्हालने में पिता का हाथ बटाने का भी अवसर तुम पा जाओगे। मेरे ख्याल से तुमको अब वहीं रहना चाहिए।"

सुरेश ने अब भी कोई उत्तर नहीं दिया। बड़ी अम्मा की इस बात को सुनकर उसको थोड़ा आश्चर्य भी हुआ।

सत्यवती बोली—"यह तो तुमको मालूम ही है कि छोटे भैया की आर्थिक स्थिति अच्छी होती, तो वे तुमको यहाँ क्यों भेजते? उनकी हालत देखकर ही हमने यह उचित समझा कि तुमको यहाँ बुला लिया जाय, ताकि तुम्हारी शिक्षा की उचित व्यवस्था हो सके। तुम चले जाओगे तो कुछ दिन मुझे खलेगा जरूर, लेकिन उनके लाभ और तुम्हारे कर्तव्य-पालन करने में सहायता पहुँचाने के लिए मुझे अपने स्नेह की कुरबानी करना ही उचित जान पड़ता है। तुम खुशी के साथ जाओ, मगर इतना ध्यान रखो कि यह भी तुम्हारा ही घर है। और मैं आशा तो यही करती हूँ कि तुम हम लोगों को कभी भूलोगे नहीं।"

सुरेश चुपचाप यह सोचता हुआ चल दिया, 'दूध की मक्खी की तरह निकाल देने के लिए माया का क्या जाल रचा है! बड़ी अम्मा, तुम धन्य हो!'

सुरेश चुपचाप अपने कमरे में आकर कावेरी से बोला—"लाओ सब सामान लगा लें। कल सबेरे की गाड़ी से चलना है। कहो तो दादा से भी पूछ आऊँ?"

कावेरी बोली—"जरूरत क्या है? मैं तो पूछ ही आई हूँ।"

नन्दलाल बाबू सोच रहे थे, 'सुरेश जब पाँच वर्ष का था, तोतली छूट भी न पाई थी तभी यहाँ आ गया था। सत्रह वर्ष हो गये इसको अपने साथ रहते हुए। कभी हम बीमार पड़े, तो इसने गृहस्थी का सारा काम अपने ऊपर ले लिया। कभी सत्यवती बीमार पड़ी, तो इसी ने चूल्हा जलाया, हम दोनों को चाय पिलाई, नाश्ता तैयार करने में सहायता दी। और आज वह जा रहा है। इस विदा में, उसके चरित्र का एक उज्ज्वल पक्ष मुझे साफ दिखाई पड़ता है। समझदार लड़का है। ऐसा भी तो हो सकता है कि उसने महेश के हित में विशुद्ध भावना से ही ऐसा सोचा हो। वह हृदय से यह चाहता हो कि महेश को अपने भाग का पूरा प्यार मिले। एक क्षण के लिए भी मैं राह के काँटे का प्रतीक न बनूँ। एक तरह से यह बात सही भी है। अगर हम उसको जबर्दस्ती यहाँ बनाये रखते हैं तो एक न एक दिन उसके अधिकार का प्रश्न अपनी सम्पूर्ण कुरूपता के साथ हमारे सामने आ जायगा। आज हम दोनों बने हैं। भगवान न करे कि निकट भविष्य में ऐसी कोई घटना हो जाय कि हममें से कोई एक न रहे। महेश के सयाने होने पर सुरेश का ही मन बदल जाय। कुछ भी हो, भावी सम्भावनाओं का ध्यान तो रखना ही पड़ता है। बुद्धिमानी इसी में है कि वह चला जाय और बिना किसी शर्त के हम लोग उसे सहज ही चला जाने दें। और इसको तो ईश्वर की एक कृपा ही माननी चाहिए कि वह स्वयं जाने को तैयार हो गया है। अन्यथा उसको भेजने में हमें जो रूपक ग्रहण करना पड़ता, उसमें कोई सौन्दर्य न होता। हमारी कुटिलता और स्वार्थ-भावना ही उभर कर सामने आ जाती।'

नन्दलाल बाबू सोचते जा रहे थे—'लेकिन आज मुझे कुछ अजीब सा लग रहा है। उसको जाने देना भीतर से बहुत ही निरापद और अमांगलिक सा जान पड़ता है, लेकिन इतने दिनों के बने-बनाये सम्बन्ध को समाप्त करने में कुछ ऐसा जान पड़ता है कि हम बदल रहे हैं। कोई ऐसी चीज है जिसको हम अब तक अपना मानते थे, पर आज एकाएक समझ लिया कि यह हमारी भूल थी।'

यही सब सोचते हुए वे उसी कमरे में जा पहुँचे, जहाँ सुरेश अपना सामान ठीक कर रहा था।

छोटी कह रही थी—"उस दिन लाण्ड्री को जो कपड़े दिये थे, वे रख लिये?"

सुरेश ने उत्तर दिया—"हाँ! रख लिये मैंने।"

इसी समय नन्दलाल बाबू वहाँ जा पहुँचे और बोले—"सुरेश, तुम जा तो रहे हो—छोटी, यह बात मैं तुम्हरे सामने कह रहा हूँ—मगर तुम कभी क्षण के लिए भी यह न समझ लेना कि मैं तुम्हारे साथ कोई जबर्दस्ती कर रहा हूँ या जान-बूझ कर तुमको अपने से अलग कर रहा हूँ। समय-समय पर अनेक बार यह वात मेरे मन में आई है कि वासुदेव की गृहस्थी का बोझ इतना बड़ा है कि तुम्हारी सहायता के बिना, हो सकता है, उनकी गाड़ी कभी अपने आप किसी जगह पर ठप हो जाय। इस समय उनको जो तुम्हारी सहायता मिलेगी, वह उनके लिए एक बहुत वड़ा बल सिद्ध होगी। तो बस, इस मामले में मुझे भगवान की करुणा का ध्यान आ रहा है कि ऐसे समय मैं तुमको छोटे भैया के पास भेज रहा हूँ जब तुमको तुरन्त नौकरी मिल जायगी और वासुदेव स्वयं भी यह अनुभव करेगा कि मैंने अपना आराम न देख कर उसकी स्थिति की की ओर ही अधिक ध्यान रखा है। मगर ठहरो, तुम्हारे जाड़े के सूट का कपड़ा मैं ले आया था, वह तो तुमको दिया ही नहीं।" और इतना कह कर वे सत्यवती के कमरे की ओर बढ़ गये।

स्वामी को सामने देख सत्यवती बोली, "देखती हूँ आज तुम परेशान-से नजर आ रहे हो?"

नन्दलाल बाबू ने लिफाफे का स्टेपुल नोंचते हुए सुरेश के सूट का कपड़ा निकाल लिया और कहा—"सुरेश जा रहा है तो मुझको ऐसा लग रहा है जैसे जान-बूझ कर मैं अपने लिए एक जहमत बढ़ा रहा हूँ। घोसी के यहाँ से दूध लाना, आटा पिसाना, राशन लाना, कहाँ तक

भिनाऊँ, यह सब काम आखिर को मेरे ही ऊपर पड़ेंगे न !. केवल यही सोच कर हृदय थाम कर रह जाता हूँ कि भैया का जीवन-मार्ग प्रशस्त बन जाय। कुछ दिन तो जरूर खलेगा उसका जाना। देखूँगा कि अपने से नहीं सधता है तो एक पहाड़ी नौकर रख लूँगा। हालाँकि जानता हूँ कि नौकर नौकर होता है, सुरेश फिर भी अपना बच्चा है, और जब अपना कोई आत्मीय अलग होने लगता है तो फिर खलता तो सबको है। मैं कोई अपवाद नहीं हूँ।"

सत्यवती महेश को दूध पिला रही थी और महेश चुकुर-चुकुर स्तन्य पान करने की गति मन्द करता जा रहा था। फिर एकाएक उसकी आँखें झपक गईं। तब सत्यवती ने थपकियाँ दे-दे कर उसे सुला दिया। थोडी देर ठहरी और फिर उसी पलँग पर उठकर बैठ गई और बोली—"सुरेश मेरे पास भी आया था। मैंने जी कड़ा करके तसवीर का अगला रुख उसके सामने रख दिया। यह सब कुछ ठीक है। लेकिन जब से वह चला गया, तब से मैं भी यही सोचती हूँ कि जब वह यहाँ आया था, तब कितना छोटा था। आज मुझको उसका हँसना, रोना, रूठना, खीझना, आँगन में दौड़ना और खेलना सब कुछ याद आ रहा है। मैंने उसको कभी पराया तो समझा ही नहीं। खिलाने-पिलाने, अच्छे से अच्छा पहनाने-उढ़ाने, स्कूल भेजने—यहाँ तक कि मास्टर लगाकर पढ़ाने और पनपाने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। और अब आज मैं अपने आप से पूछती हूँ कि इतनी जल्दी वह पराया कैसे हो गया, तो महेश के बाबू, मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि हम सब स्वार्थी हैं। इस एक ही महीने में हम कितने बदल गये !"

सत्यवती ने आँसू पोंछ डाले और फिर कहा—"मगर हम कर ही क्या सकते हैं। चारों ओर देखकर चलना पड़ता है। महेश को बुलाने में सुरेश की यहाँ उपस्थिति और उसकी सहयोग-भावना का अपना एक स्थान है। ऐसा भी हो सकता है कि उसी के प्रताप का यह फल हो। लेकिन फिर उचित यही लगता है कि उसको यहाँ से विदा कर देने में ही दोनों पक्षों की भावी कुशलता अधिक सम्भव है। सोचती हूँ, इधर महेश स्वतन्त्र-गति से बड़ा होगा, उधर छोटे भैया को भी सुरेश से मदद

मिलेगी।" अचानक सत्यवती की आँखें भर आयीं। अँचरा से आँसू पोंछती हुई वह बोली—"हाँ-हाँ, ठीक है। जाओ यह कपड़ा दे आओ उसको। वह कहीं भी रहे, मेरी शुभ कामनाएँ उसके साथ रहेंगी।"

: १६ :

पग धीरे-धीरे पड़ रहे थे लेकिन हृदय में एक हाहाकार मचा हुआ था। मैंने टॉप क्या किया, शरत के लिए मैं एक समस्या बन गई। कितना उत्तम होता कि यह पोजीशन उन्हीं को मिली होती। जब आघात मर्म-स्थान पर लगता है और व्यक्ति अपने में अकेला होता है, तब बहुधा निःश्वास की सृष्टि होती है।···लेकिन अब तो वे माधुरी के साथ इंग्लैण्ड जा रहे हैं। उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे आँखों में उमड़ते हुए आँसुओं को वह रोक न पायेगी।···हृदय, तुम कोई कमजोरी न दिखाना। मैं जानती थी कि एक दिन तो ऐसा आयेगा ही। देखती हूँ, आज के युग में रुपये की कितनी महिमा है। शरत से पूछे बिना तो यह विषय इतना आगे बढ़ नहीं सकता था। महीना भर हो गया, भूल से कभी बाउण्ड्री के उस पार दृष्टि भले ही पड़ गई हो, मिलना तो हो नहीं सका। उस दिन के बाद खाने पर भी कभी कोई बात नहीं हुई। मैं अगर उत्तर की ओर बैठती थी, तो कम-से-कम दो कुर्सियों के बाद उत्तर की ओर मुँह करके वे भी बैठते थे। अगर चाहते तो क्या सामने नहीं बैठ सकते थे?

—छोड़ो जी! बहुत छोटी बात है। अनेक बार ऐसा हुआ है कि अगर दूर से साक्षात्कार हुआ है तो कभी-कभी चुहल में आकर आँख मार दिया करते थे। मैं कट कर रह जाती थी।

—अब तो जी में आता है कि जीवित अवस्था में तो उनके सामने न पड़ूँ। एकाएक यही सूचना मिले कि गौरी इस संसार में नहीं है। ये किताबें, नोट बुक, फाउन्टेनपेन, चुइंगम, टाफी, रूमाल—सब होती के

चोचले थे। समय-समय पर मुसकराकर बात करना भी आत्मीयता का केवल कृत्रिम रूप था। मैं नहीं जानती थी कि यह व्यक्ति इतना बना हुआ है।

—मगर जैसा कि मैंने अभी कहा न कि मैं कोई कमजोरी नहीं दिखलाऊँगी। मैंने इतना ही तो कहा था कि मैं शक्ल नहीं देखना चाहती और कहा इसलिए था कि उन्होंने मुझे छिपकली की दुम कह दिया था। जब-जब हममें झगड़े हुए, तब-तब प्रारम्भ उन्हीं की बात से हुआ।

—मगर अब क्या हो सकता है? मैं तो यही सोचती हूँ कि जो कुछ होता है हमारे लाभ के लिए होता है। हो सकता है कि इस विच्छेद में भी भगवान की करुणा का कोई हाथ हो। मैं बहुत भ्रम में थी। समझती थी कि जीवन में मिठास ही मिठास रहती है, लेकिन आज ऐसा जान पड़ता है कि आघात को सहन करने के लिए आत्मत्याग की आवश्यकता पड़ेगी। अगर यह माधुरी के साथ सचमुच इंग्लैण्ड चले गये, तो मैं फिर जीवन भर विवाह करूँगी ही नहीं। मुझे देखना है कि माधुरी के साथ ये शान्ति और सुख के साथ रह कैसे पाते हैं?

—बरवस आँसू आ ही गये। इस समय कोई ऐसी सखी भी तो नहीं है जिससे मैं अपनी व्यथा कह सकूँ। अच्छा, अगर माधुरी से ही जाकर कहूँ कि मेरे पैर पर अपना पैर क्यों रख रही हो? जिस पर आज तक मैं अपना अधिकार समझती थी, तुम मेरे सामने ही उसको मुझसे छीन लोगी? मैं कभी तुमसे ऐसी आशा नहीं रखती थी! लेकिन आशा रखना भी तो पीड़ा को जन्म देना है। मैंने ही शरत से जो आशा की थी, वह कहाँ पूरी हो रही है। क्या दुनिया है! जिसके जीवन के आँगन में सरिता का कलकल नाद अहरह गुंजन करता हो, वही प्यासा मर जायगा और दुनिया कुछ नहीं बोलेगी। अम्मा कुछ नहीं कह पायेंगी। और बाबू भी चाचा से एक शब्द न कहेंगे। लेकिन मैं तो यह पढ़ती आई हूँ कि प्रयत्नशील और पुरुषार्थी के लिए आशा कभी बाँझ नहीं होती। इसका मतलब तो यह हुआ कि मुझे प्रयत्न करना पड़ेगा। मैं अभी माधुरी के पास जाऊँगी। उसको समझा-बुझाकर राजी कर लूँगी। मैं उसी से यह कहला दूँगी कि वह शरत को नहीं चाहती।

—लेकिन फ़िर सवाल उठता है कि क्या माधुरी मेरा कहना मान लेगी ?

—बाबू अभी आयेंगे तो उनके सामने मैं अपना यह विषाद कैसे रोक पाऊँगी ?

स्टोव जलाकर उसने चाय का पानी चढ़ा दिया।

रमेश आया और उसने पूछा—"रिजल्ट आउट हो जाने पर दोस्तों में तुम्हारी बड़ी चर्चा हो रही है। सब यही कह रहे हैं कि तुमने शरत को खूब पछाड़ा !"

गौरी कुछ नहीं बोली। वह सोच रही थी—हो सकता है कि उन्होंने मेरी इस बात को अपने हृदय में हमेशा के लिए रख लिया हो कि मुझसे कभी प्रतिदान की आशा न करना। मूर्ख, जंगली कहीं के ! मुझसे यह आशा करते हैं कि विवाह के लिए मैं उनके सामने गिड़-गिड़ाऊँगी ! हाँ, एक बात समझ में आती है। ये एक ओर तो माधुरी से नित्य मिलते रहे, अपने सम्बन्धों को मधुर और मनोरम बनाते रहे और दूसरी ओर मेरे आगे भी लिबलिब करते रहे।

—यह भी हो सकता है कि मेरे साथ सम्बन्ध रखने में इनकी कोई अवैध संयोजना रही हो। तब तो यही सोचना पड़ेगा कि यह मेरे साथ प्रेम नहीं कोरी वासना का सम्बन्ध रखते थे ! मगर यह बड़ा अच्छा हुआ कि मैंने कभी अपने बदन पर हाथ नहीं रखने दिया। लेकिन एक उनकी क्या बात कहूँ, चाची भी पूरी तोताचश्म निकलीं ! मैं इतनी देर रही, मुँह मीठा करने के लिए सिर्फ कहकर रह गईं। मुझे चाय तक नहीं पिलाई ! मुकुट बाबू सदल-बल क्या आ गये, मैं बिलकुल नाचीज बन गई।

गौरी ने उत्तर दिया—"ऐं···क्या कहा ?"

रमेश मुसकराता हुआ बोला—"जान पड़ता है तुम किसी सोच-विचार में हो दीदी ! आज पकौड़ी काहे की बनाओगी ?" गौरी अपने ध्यान में थी। रमेश फिर बोला—"दीदी, तुम बतला नहीं रही हो कि पकौड़ी काहे की बनाओगी ?"

गौरी का ध्यान अन्यत्र था। उसने फिर पूछ लिया—"हैं! क्या कहा ?"

रमेश बोला—"शरत ने तुमसे कुछ कहा तो नहीं ? क्योंकि अहंकारी व्यक्ति को मेंढक की तरह टर्राते देर नहीं लगती।"

अब गौरी को बोलना पड़ा—"रमेश, तुम जब कभी बेसिर-पैर की बातें करने लगते हो, तो मुझे तुम पर आश्चर्य ही नहीं, दुःख भी होता है, तरस भी आता है।" कथन के बाद ही वह झट से कपड़े बदलकर बाहर जाने के लिए तैयार हो गई और बोली—"तुम चाय बनाओ। मैं अभी आती हूँ। मैं जरा पी० रोड से लौटकर आती हूँ।"

"मगर क्यों ? कुछ मँगाना हो तो मैं ले आऊँ ?"

गौरी बोली—"नहीं-नहीं।"

उसने यह नहीं बतलाया कि वह कहाँ जा रही है। दरवाजे पर आई तो उसने अपना बटुआ देखा। दो रुपये और कुछ पैसे पड़े थे। सोचा, ठीक है। आगे बढ़ी और एक रिक्शे पर जा बैठी।

माधुरी का घर चार फर्लांग के लगभग होगा। दस मिनट के अन्दर वह माधुरी के मकान के सामने जा पहुँची। अब तक जो बात उसने अपने मन में स्थिर कर रखी थी, एकाएक स्वाभिमान का एक ऐसा झोंका आया कि वह विचलित हो उठी।

—कौन कहता है कि मनुष्य की सभी आशाएँ पूरी होती हैं ? शरत माधुरी को लेकर आज ही इंग्लैण्ड चला जाय, मैं बिलकुल परवाह नहीं करूँगी। जो आदमी किसी से कोई आशा नहीं रखता, मैं उसको धन्य समझती हूँ। आज अनुभव हो रहा है कि आशा ही परम दुःखदायी होती है। अगर मैं शरत से कोई आशा न रखती होती तो मेरे लिए दुःख का कोई अवसर ही क्या था ? नहीं-नहीं।

तब वह बोली—"चलो रिक्शे वाले वापस चलो।" वह सोचने लगी—कभी-कभी मुझे न जाने क्या हो जाता है।

—स्वाभिमान खोकर जीने वाले व्यक्ति को मैं आदमी नहीं पालतू पशु समझती हूँ जो पीठ में डण्डा धमकने वाले व्यक्ति को लात तो मारता नहीं, भागने की चेष्टा करता है।

वह झट से घर लौट आई।

इतने में वासुदेव बाबू आ पहुँचे। गौरी आगे-आगे थी और वासुदेव बाबू पीछे-पीछे। अन्दर पहुँचने पर उन्होंने पूछा—"आज बड़ी देर कर दी गौरी ?"

"नहीं बाबू ! आज रिजल्ट आउट हुआ है न, इसलिए मैं जरा माधुरी से मिलने गई थी।"

गौरी ने यह नहीं बतलाया कि वह माधुरी से मिले बिना लौट आई।

क्रोध में उत्तेजना आना स्वाभाविक है। किन्तु गौरी सोचती है कि ऐसी उत्तेजना किस काम की कि हम अपना हित-अहित न समझ सकें, मान-अपमान की चेतना ही खो बैठें। संसार के नीतिज्ञों का ख्याल है कि क्रान्ति उन लोगों ने की है जो पेट की ज्वाला से सदा जलते रहे हैं। किन्तु आज तो ऐसा जान पड़ता है कि जब तक हृदय में फफोले नहीं पड़ते, क्रान्ति का जन्म ही नहीं होता। मैंने उस दिन बिलकुल ठीक कहा था कि मैं तुम्हारी शक्ल भी देखना नहीं चाहती। कभी-कभी अनायास ऐसी बात मुँह से निकल जाती है जो आगे चलकर चरितार्थ होकर रहती है।···हृदय, अब तुम शान्त हो जाओ। मैं बिना आशा के जी सकती हूँ।

—जीवन में क्रान्ति लाये बिना हम सोचते चाहे जो कुछ रहें और योजनाएँ भी चाहे जितनी बना डालें, किन्तु हम उस समाज को कैसे बदल सकते हैं जो दौलत के नशे, ऐश्वर्य के प्रलोभन में पड़कर आन्तरिक विश्वासों, आकर्षणों और आत्मीयता के अनन्त आह्वानों की उपेक्षा ही नहीं, हत्या भी करता रहता है। मेरे जीवन में ऐसा भी क्षण आ सकता है जब शरत रो-रो कर मुझसे क्षमा माँगने आयेगा और मैं कहला दूँगी कि चले जाओ, मुझे फुरसत नहीं है।

इन्हीं सब चिन्तन प्रसंगों में पड़कर गौरी बीच-बीच में खो जाती थी। एकाएक जो वह निर्णयात्मक स्थिति में पहुँची तो तुरन्त रसोई में पहुँचकर वह आलू की पकौड़ियाँ बनाने के लिए बेसन फेंटने लगी।

रमेश लाउड स्पीकर पर किसी घोषणा को सुनने के लिए छज्जे पर जा पहुँचा था। फिर एकाएक लौटकर आँगन में आ पहुँचा और बोला—"बाबू बाबू, तुम सुनते नहीं ?"

"क्या है ?"

रमेश ने उत्तर दिया—"अम्मा आ गईं और दद्दा भी उनके साथ।

झट से दौड़ कर रमेश बाहर जा पहुँचा। दरवाजे पर जाकर कावेरी और सुरेश के चरण-स्पर्श करके सामान रिक्शे पर से उतरवाने लगा। सुरेश ने रिक्शे वाले को पैसे दे दिये।

कावेरी ने रमेश से पूछा—"सब ठीक ?"

रमेश बोला—"दीदी ने फर्स्ट डिवीजन ही नहीं पाया, बल्कि टॉप किया।"

तब तक वासुदेव बाबू भी बाहर आ गये। ये लोग सामान अन्दर रखवाने में लगे और गौरी कावेरी से लिपटकर रोने लगी।

"अरे अरे !"—गौरी बोली—"तू रो क्यों पड़ी ? किसी ने कुछ कह तो नहीं दिया ? या कोई तकलीफ हुई तुझे ?"

गौरी की सिसकियाँ उभरती जा रही थीं। वह कुछ कह न पा रही थी।

अन्दर पहुँचते-पहुँचते रमेश बोला—"चलो अम्मा, पहले चाय पी लो। हम लोगों ने मिलकर बनाई है। और हाँ, गौरी ने जो टॉप किया है न, शहर भर में सर्वत्र उसकी चर्चा हो रही है।"

कावेरी ने पूछा—"और शरत ?"

गौरी चुप ही बनी रही। रमेश ने उत्तर दिया—"फर्स्ट डिवीजन उसने भी पाया है और पोजीशन सेकेण्ड है।"

कावेरी ने आश्चर्य से कहा—"अच्छा !"

गौरी की सिसकियाँ तो बन्द हो रही थीं। मगर उदास वह अब भी थी।

वासुदेव बाबू खड़े-खड़े चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे।

कावेरी बोली—"दादा ने यह कहकर सुरेश को भेजा है कि इसकी

सहायता के बिना तुम्हारा खर्चा पूरा नहीं होगा। मुझ पर अहसान किया है अहसान !"

सुरेश बोला—"चाची कह रही थीं कि हमने तो सुरेश को इसलिए रखा था कि छोटे भैया के ऊपर उसकी पढ़ाई का बोझ न पड़े।" वासुदेव बाबू ने चुपचाप सुन लिया।

तब सुरेश ने कहा—"मन तो मेरा कभी वहाँ लगा ही नहीं। मौका भगवान ने दे दिया और मैंने तय कर लिया कि मैं जाऊँगा। क्षण भर को भी यह सोचने का अवसर उनको मैं क्यों दूँ कि दौलत के लालच में मैं उनके यहाँ पड़ा हूँ।"

"जी तो मेरा भी कचोटता रहता था सुरेश तुम्हारे लिए, और तुम्हारी अम्मा तो पागल सी रहती थीं। रोज ही वह दो-एक दफे जरूर याद कर लेती थीं।"

"बाबू, मैंने केसा (पावर हाउस) की एक आवश्यकता देखकर वहीं से आवेदनपत्र भेज दिया था। देखता हूँ कि इन्टरव्यू के लिए कब बुलाया जाता हूँ।"

इसी समय सहसा कावेरी ने पूछा—"गौरी, तू उदास क्यों जान पड़ती है ? लगता है फर्स्ट आने की तुझे कुछ खुशी हुई ही नहीं।"

गौरी सोच रही थी—'क्या जिन्दगी है। एक कामना पूरी होती है तो दूसरी उलझ कर रह जाती है। इस वक्त मैं इनको क्या उत्तर दूँ ?'

जब और कुछ उसको न सूझ पड़ा, तो उसने कह दिया—"मेरा मन तो आता है कि कोई अच्छी-सी नौकरी मिल जाय, तो अच्छा हो।"

वासुदेव बाबू बोले—"क्या बकती है गौरी !"

कावेरी सोचने लगी कि कुछ बात जरूर है जिसे यह खुलकर कता नहीं रही है।

अभी यह चाय-चक्रम चल ही रहा था कि गज्जू तौलिये से ढकी हुई ट्रे लाकर वासुदेव बाबू से बोला—"जज साहब ने मिठाई भेजी है। छोटे सरकार के पास होने की खुशी में।"

कावेरी ने उत्तर दिया—"अच्छा ! तब तो हमें भी गौरी के पास होने की खुशी में मिठाई बाँटनी चाहिए।"

इसी समय गज्जू मुसकराता हुआ बोला—"बात यह हुई कि बड़े साहब मिठाई मँगवा ही रहे थे कि मुकुट बाबू ढेर सारी मिठाई लेकर आ गये। हम लोगों को भी आज छककर मिठाई खाने को मिली। सच पूछो तो यह डबल खुशी की मिठाई है, क्योंकि छोटे सरकार की ससुराल से आयी है।"

उसी समय गौरी उठ कर चल दी। और मन ही सन कावेरी ने कह लिया—'अच्छा तो यह बात है!'

आश्चर्य के साथ कावेरी ने पूछा—"तो शरत का ब्याह भी हो गया, जो उसकी ससुराल से मिठाई आने लगी?"

गज्जू ने उत्तर दिया—"ब्याह तो नहीं हुआ, मगर शादी तय हो गई। आज ही बल्कि अभी तय हुई है मुकुट बाबू की लड़की माधुरी के साथ। उन्होंने साहब के साथ बैठकर जो चाय पी थी, उसका एक सौ एक रुपया दिया है साहब को।"

सुरेश ने थाली में मिठाई रख ली और वासुदेव बाबू ने जेब में हाथ डाल कर एक रुपया उसको देते हुए कहा—"ये लो अपना इनाम।"

तब खुशी-खुशी गज्जू चला गया।

कावेरी बोली—"देखा! पैसे का नशा कितना जबर्दस्त होता है—निर्मम और नीचता से भरा हुआ! इतने साल की हमारी दोस्ती कुछ न हुई! जज साहब को मुकुट बाबू के यहाँ शादी तय करते देर न लगी। आज जान पड़ता है कि उनकी आत्मीयता भरी चिकनी-चुपड़ी बातों में कितनी बनावट थी! जब देखो तब, एक श्रीमती जी ही नहीं, जज साहब भी कहा करते थे कि गौरी का शील-स्वभाव मुझे बड़ा पसन्द है। इसकी शादी तो मैं करूँगा। तुम बिलकुल चिन्ता न करना। और श्रीमती जी कहा करती थीं कि जिस दिन गौरी मेरे घर नहीं आती, उस दिन मेरा शरत कितना गम्भीर लगता है! इन्हीं दोनों ने मिलकर मुझको भुलावे में रखा। वास्तव में दान-दक्षिणा से सहायता करने के बहाने ये लोग अपना ऐश्वर्य दिखलाना चाहते थे। जिसको मैं खरा सोना समझती थी वह कितना मुलम्मा निकली!"

वासुदेव बाबू बोले—"जज साहब के सामने जब कभी मैंने गौरी

की शादी की बात उठाई, तब उन्होंने यही उत्तर दिया कि गौरी तो किसी बड़े घर की रानी बनेगी। बँगला, मोटर, जवाहिरात, सोना-चाँदी का उपभोग करेगी। पलँग पर बैठी-बैठी हुकूमत चलायेगी। अब मेरी समझ में आ रहा है कि उनके इस कथन में कितना व्यंग्य छिपा हुआ था। असल में वे मेरी गरीबी का मजाक उड़ा रहे थे। यही जज साहब कहा करते थे कि जो अपने समान न हो, उसकी मित्रता का भरोसा उतनी ही देर का होता है जितनी देर कागज की नाव चला करती है। उस वक्त यह बात मेरी समझ में नहीं आई थी कि जो इतनी जल्दी मित्रता के बन्धन तोड़ सकता है, समझना चाहिए कि वह कभी मित्र था ही नहीं।"

"इस विषय में सबसे अधिक दुःख की बात यह है कि हमारे बीच वातावरण ही कुछ इस प्रकार का बन गया था कि हम ही नहीं, हो सकता है कि गौरी ने भी ऐसा ही कुछ सोच लिया हो। इस वक्त उसके दिल पर क्या बीत रही होगी, इसकी कल्पना मात्र से मेरा दिल काँप उठता है।"

वासुदेव बाबू बोले—"मगर अब क्या हो सकता है ? मैं तो उनसे कुछ कह नहीं सकता। केवल एक बात मेरे मन में आती है कि जितने दिन हमने उनके यहाँ खाना खाया है; यह कह कर उसका हिसाब कर दिया जाय कि रुपये आपको लेने पड़ेंगे, फिर जब वे मित्रता की बात उठायें तो उनको टका सा जवाब दे दिया जायगा कि हमारी मित्रता थी कब ?"

कावेरी बोली—"मगर तुम्हारे इस उत्तर का नतीजा क्या निकलेगा ? मुख्य समस्या तो यह है कि इतने दिनों की मेरी संचित आशा पर पानी फिर गया। जो सपना मैंने बारह वर्ष से पाल रक्खा था, वह इतनी जल्दी टूट गया।"

वासुदेव बाबू बोले—"जब मेरे मित्र लोग सुनेंगे तो उनके सामने मैं सिर उठा कर बात भी न कर सकूँगा, क्योंकि जब-जब बातें हुईं, तब-तब मैं अपने मन की इस बात को रोक नहीं सका कि जजसाहब खुद कहते हैं कि लड़की के विवाह की चिन्ता न करो। इसका विवाह तो मैं करूँगा। हाय री प्रवंचना, तेरा नाश हो !"

कावेरी बोली—"आज साफ दीख पड़ रहा है कि अनुभव के बिना आदमी की आँखें कितनी बन्द रहा करती हैं।

वासुदेव बाबू बोले—प्रपंची लोगों का स्वभाव इतना विचित्र होता है कि उनके मन का भेद कोई पा नहीं सकता। मुझे तो कभी-कभी ऐसा जान पड़ता है कि यह सारी दुनिया ही सच पूछो तो एक प्रपंचपूर्ण नाटक है। मैं इस आदमी को इतना गिरा हुआ नहीं समझ पाया था। शिव शिव ! मेरा वश चले तो मैं आज ही इस मकान को छोड़ दूँ। इस आदमी की शक्ल ही फिर कभी न देखूँ।"

कावेरी से न रहा गया। बोली—"मुझे दुःख तो इसी बात का है कि मेरे पास पैसा नहीं है। नहीं तो मैं भी उनके सिर पर चाँदी की जूती जमा सकती थी। तब मैं देखती कि कैसे माधुरी के साथ शादी होती है ! जीवन के सारे दुःखों की जड़ यह निर्धनता है। मैंने कभी धन का इतना ध्यान नहीं रखा। मैंने तो शिक्षा, शील, सौजन्य को ही बड़ा धन समझा, मगर आज उनके व्यवहार ने मुझे इतनी चोट पहुँचाई है !" कहते-कहते कावेरी का कण्ठ भर आया और आँसुओं के स्वरों के साथ वह बोली—"मैं क्या करूँ ? मैं क्या करूँ गौरी के बाबू !" वह फूट-फूट कर रो पड़ी। तब सुरेश बोल उठा—"अम्मा, तुम रोओ मत। इतना परेशान होने की जरूरत नहीं है। गौरी की शादी तो सचमुच ऐसी जगह ही होगी कि वह सचमुच की रानी बन कर रहेगी।"

वासुदेव बाबू बोले—"रानी नहीं, गौरी महारानी बन सकती है, लेकिन पैसे के बिना हर नारी दासी की कोटि में आती है। पतिप्राणा हो जाने पर उसकी रानी बन जाय, यह बात दूसरी है।"

"लेकिन बाबू, मैं ऐसे लड़के की बात कर रहा हूँ जो अपनी जीवन-संगिनी के चुनाव में पैत्रिक-सम्पन्नता की ओर बिलकुल ध्यान नहीं देता।"

"सब कहने की बातें हैं। हम ऐसे लोगों को जानते हैं, जो प्रारम्भ में बड़े सुधारक बन जाते हैं। दस आदमियों के सामने कह देते हैं कि हमें दहेज न चाहिए। लेकिन जब लड़का ब्याहने जाते हैं, तब खड़े होने का ठौर पाकर जम कर बैठ ही नहीं जाते, बल्कि पैर भी पसार देते हैं।"

"नहीं बाबू, हरी का परिवार ऐसा नहीं है। अम्मा, तुमने तो देखा भी है हरी को ? जहाँ तक शिक्षा, प्रतिज्ञा और व्युत्पन्नमति का प्रश्न है, वह शरत से पीछे नहीं, आगे है। मेरे साथ इंजीनियरिंग में पढ़ता था। मेरिट लिस्ट में उसका भी नाम आया है।"

वासुदेव बाबू बोले—"तब तो बहुत अच्छा है बेटा !"

तब कावेरी ने भी समर्थन के स्वर में कह दिया—"तारीफ तब है जब गौरी का विवाह पहले हो जाय ! पहले अगर न भी हो, तो उसी मुहूर्त्त में हो।"

अन्त में वासुदेव बाबू ने कह दिया—"ऐसा ही है तो हम तुम्हारे साथ इस काम के लिए दिल्ली चल सकते हैं। न हो कल ही चले चलो।"

गौरी अपने विवाह के सम्बन्ध की यह परिचर्चा सुन रही थी। पहले तो उसको बहुत बुरा लगा। यहाँ तक कि उसके मन में आया कि क्यों न वह इसी अवसर पर नमित मुख और मन्द वाणी में बाबू से कह दे कि मैंने जीवन भर कुमारी रहने का व्रत लिया है, विवाह की चिन्ता आप लोगों को छोड़ देनी चाहिए।

पर फिर उसे ध्यान हो आया कि हमारे समाज की लड़कियाँ देव-कन्याएँ होती आई हैं। उस गाय की तरह जो इस खूँटे से उस खूँटे में बाँध दी जाती है। केवल सहते जाना जिनके भाग्य में लिखा रहता है, अपने सम्बन्ध में मुँह खोलना जिनके यहाँ विधि-निषेध माना जाता है।

किन्तु फिर सहसा उसे ध्यान हो आया—वैसे शरत से बदला लेने का अवसर तो बड़ा अच्छा है। सारी अकड़ भूल जायगी जब सुनेंगे कि एक इंजीनियर के साथ गौरी का विवाह हो रहा है।

फिर सोचा—पर यहाँ प्रतिशोध का तो प्रश्न ही नहीं उठता। मुख्य समस्या तो यह है कि वह मुझको नहीं चाहता। चाहता होता तो माधुरी के साथ उसका विवाह कैसे निश्चित होता ? चाचाजी ने देखा होगा कि वह माधुरी को चाहता है, तभी तो इस सम्बन्ध के तय होने में बिलकुल

देर नहीं लगी। ऐसा तो हो नहीं सकता कि उसका अभिमत लिये बिना चाचाजी ने मुकुट बाबू को स्वीकृत दे दी हो; जबकि खाना बनाने के सम्बन्ध में भी उसी की रुचि को उस घर में प्रमुखता दी जाती है। प्रेम में पड़कर जैसे बहुतेरी बातों की परवाह नहीं की जाती, उसी प्रकार उन्नति का मार्ग मिल जाने पर हमें भी तो यह अधिकार हो जाता है कि हम उस व्यक्ति की ओर आँख उठा कर भी न देखें—आत्मीय से आत्मीय व्यक्ति की उपेक्षा करना जिसके स्वभाव का लक्षण और गुण बन गया है। जीवन एक युद्ध है और विजेता के लिए अपना अस्तित्व देखना सदा आवश्यक रहता है।......जाओ शरत, तुम भी क्या कहोगे कि किसी से पाला पड़ा है। कभी तो मिलोगे हमें राह में आते-जाते।

इसी समय श्यामा दरवाजे पर आ गई, जिसका एक किवाड़ खुला था, और दोनों खुर सीढ़ी पर रख कर खड़ी हो गई। दोनों सींग ऊपर को उठे हुए थे, एक-एक बीता। यह उसकी आदत थी। जब उसकी लहर आती साँझ-सवेरे यहाँ पर आकर चुपचाप खड़ी हो जाती। जब तक उसको खाने को कुछ न दिया जाता खड़ी रहती। परिणाम यह हुआ कि कभी-कभी वह दुरदुराई जाने लगी। गौरी सोचने लगी कि शरत के यहाँ मेरी दशा भी इस गाय की सी हो गयी है।

: २० :

जिस क्षण से मुकुट बाबू और हेमन्त के साथ वनमाला और नमिता ने चाय पर बैठ कर शरत और माधुरी का विवाह-सम्बन्ध तय किया था, शरत उसी क्षण से अत्यधिक चिन्ता में पड़ गया था। वह कुछ सोचता था, लेकिन सोच नहीं पाता था। विचार उठते थे, लेकिन एक प्रश्न-चिह्न छोड़कर चुपचाप चले जाते थे। उत्तर कोई नहीं देता था

और अगर देता भी था, तो वह शरत को सुनाई नहीं पड़ता था। सुनाई भी पड़ता, तो उसकी समझ में नहीं आता था।

अब सबसे बड़ी समस्या शरत के सामने यह थी कि मैं ही गौरी को नहीं पहचान सका हूँ या गौरी भी मुझे नहीं पहचानती है। शुरू-शुरू में जब हम लोग परस्पर लड़ते थे, तब तो हमारा मुख्य उद्देश्य यही होता था कि बाबू और अम्मा को धोखे में डाले रहें, केवल इस अभिप्राय से कि वे हमको कहीं गलत न समझें। फिर मेरी बात में वह और उसकी बात में मैं 'गोया—लेकिन—चूँकि—इसलिए' जो लगाते रहते थे, उसका मूल हेतु रहता था दोनों को भ्रम में रखना। फिर यह वृत्ति हमारी निकटता का एक अंग बन गई। हमको इसमें मजा आने लगा और हम इसमें रस लेने लगे।

अभी तक यही क्रम चल रहा था और लड़ते-झगड़ते हुए भी हम लोग एक दूसरे से विलग नहीं हो पाते थे। एक लोकगीत के अनुसार स्थिति कुछ ऐसी थी कि —'बिन देखे चैन परत नहियाँ।' यह बात गौरी भी जानती थी कि हमारा मौलिक रूप यह नहीं है। हम सचमुच अभिनय कर रहे हैं। पहले रूठ जाने और फिर यह व्यक्त करने कि हम रूठे ही नहीं थे, हम तो तुमको उल्लू बना रहे थे। तो बात यह थी कि हमको इन बातों में एक विचित्र प्रकार का रस मिलने लगा था। इसका भी एक कारण था। हम समझते थे कि अगर घुलघुल कर बातें करेंगे, तो हमारा प्रगाढ़ प्रेम स्पष्ट रूप से प्रकट हो जायगा। परिणाम यह होगा कि एक-न-एक दिन हमारा मिलना-जुलना भी बन्द कर दिया जायगा। हमने यह थोड़े ही सोचा था कि हमारे इस अभिनय को हमारी वास्तविक मनःस्थितियों का एक प्रत्यक्ष और सही रूप मान लिया जायगा।

एक प्रकार से देखें तो हमारा यह एक बौद्धिक प्रयोग था, जिसमें भ्रम में रखने और धोखा देने का विचार चाहे न भी रहा हो किन्तु एक विनोदपूर्ण परिसंवाद, एकांकी नाटक का दृश्यात्मक रूपक तो रहता ही था। किन्तु हमारी इस सुयोजना का जो परिणाम एकाएक सामने आ

गया, उससे तो यही विदित होता है कि हम भूल कर बैठे। हम बैठे थे होम करने और जला बैठे हाथ अपने।

—लेकिन आज तो कुछ ऐसा जान पड़ता है कि डैडी और ममी में से किसी ने भी गलती नहीं की। वास्तव में हम ही गलती पर थे। क्योंकि सचमुच अगर गौरी मुझको चाहती होती तो इतने दिन बीत गये कभी तो वह मेरे पास दो-चार मिनट के लिए आ सकती थी। अच्छा, मान लो नहीं आ सकती थी; क्योंकि तनातनी का वेग बढ़ गया था और हममें से कोई भी दूसरे से किसी अर्थ में कुछ कम तो लगाता नहीं है। मगर जब प्रकृति भी हमको मिलाने की चेष्टा करती है तब भी वह मुँह लटकाये हमारे पास से निकल जाती है, हम उसके पास से कतरा कर निकल जाते हैं। जानबूझ कर नजर नहीं मिलाते और एक शब्द तक नहीं बोलते। न वे न मैं। क्या इसका यह अभिप्राय नहीं निकलता कि गौरी मुझको चाहती ही नहीं। मेरी बात और है।

—मगर फिर प्रश्न उठता है कि मेरी बात और क्यों है साहब ? मुझमें ऐसी क्या विशेषता है कि मेरी बात और हो। सुरखाव के पर लगे है मुझमें ? गौरी मुझसे नहीं बोलती थी, मैं तो उससे बोल सकता था। वैसे मेरी मान्यता तो यही है कि इस मामले में विजय उसी की होती है जो पहले मिलने और प्यार करने का उपक्रम करता है। उसने मुझको चिट्ठी भी लिखी थी, बहुत दिन की बात हुई। संयोग से वह चिट्ठी अम्मा के हाथ पड़ गई थी। उन्होंने उसे पढ़ा भी था। उनका अभिप्राय शायद मुझे यह बतलाने का था कि देखो गौरी तुमको कितना चाहती है। उस समय उस चिट्ठी पर कोई मधुर प्रतिक्रिया न व्यक्त करके मैंने जो उसे फाड़ डाला, यह भी मेरी भूल थी। अगर मैं चिट्ठी न फाड़ता बल्कि प्रसन्नतापूर्वक अम्मा को लाड़ से पटा कर चिट्ठी माँग लेता, अपने पास रख लेता, तो अधिकतम उत्तम होता। हो सकता है कि अम्मा ने भी यही समझ लिया हो कि मैं गौरी को नहीं चाहता हूँ।

—अच्छा ! थोड़ी देर के लिए मैं माने लेता हूँ कि उसका चिट्ठी लिखना यही व्यक्त करने का माध्यम था कि मैं तुम्हें कितना चाहती हूँ और तुमसे समय पर काम ले लेने का मुझे कितना अधिकार है। मगर

फिर उसने मुझसे यह क्यों कहा था कि मुझसे प्रतिदान की आशा मत करना। क्या इसका अभिप्राय यह हुआ कि वह अभी तक दुविधा में है, या वह मुझको चाहती भी है और नहीं भी चाहती है।

—अब प्रश्न उठता है माधुरी का। स्पष्ट है कि वह दुविधा में नहीं है। मुकुट बाबू ने ही नहीं, वनमाला चाची ने भी माधुरी के मन का भेद पा लिया है। और एक प्रकार से यह निश्चित है कि वह मुझको प्राप्त करने के लिए पूर्ण रूप से तत्पर है। इन दशाओं में अगर माधुरी से मेरा विवाह हो जाता है तो फिर गौरी को मुझसे शिकायत करने का अवसर तो रह नहीं जाता।

—मगर यदि कहीं मैं ही भ्रम में पड़ जाऊँ ? एक ओर तो गौरी मुझको चाहती रहे और दूसरी ओर मैं विवाह करूँ माधुरी से, तो मेरी परिस्थिति कितनी भयावह हो उठेगी! गौरी फिर कहाँ जायगी ? लेकिन इस बात का मेरे पास कोई जवाब नहीं है कि अगर वह मुझको प्रेम करती है, तो फिर उसको मेरे प्रति अपना यह अहं भाव छोड़ देना चाहिए था। मैं उस नारी के प्रेम के ऊपर विश्वास नहीं करता जो स्वाभिमान के नाम पर अहंकार को प्रश्रय देती है। अच्छी बात है देख लूंगा तुमको। तुमने जो मेरी उपेक्षा की है उसका दण्ड तुमको भोगना ही पड़ेगा।

—पर कहीं ऐसा कुछ तो नहीं है कि मैं डैडी से डर रहा हूँ ? खुल कर उनके सामने कहने से हिचकिचाता हूँ कि आपका अनुमान सही नहीं है ? गौरी को मैं अपना मन दे चुका हूँ, अपना प्राण दे चुका हूँ। वर्षों से वह मेरे मानस लोक में वास कर रही है वह मेरे हास-परिहास की ही नहीं साँस-साँस की भागीदार है, अधिकारिणी है। उसके बिना मैं जी नहीं सकता। और जली-कटी सुनाने की जो बात रही सो वह तो उसकी प्रकृति का एक अंग बन गई है। ऐसी किसी लड़की के साथ मेरी पट ही नहीं सकती, जो सदा मेरी हाँ-में-हाँ मिलाती रहे। ऐसी दशा में मुझे सोच-समझ कर कदम रखना चाहिए।

—अच्छा मान लो बाबू से मैं स्पष्ट कह दूं कि मैं गौरी पर जान देता रहा हूँ, आज से नहीं, वर्षों से। इसके बाद तब वे गौरी का मत

टटोलेंगे। इस समस्या को वे स्वयं नहीं सुलझायेंगे तो अम्मा के माध्यम से सुलझायेंगे। तब अम्मा गौरी से इस विषय में चर्चा करेंगी। उस समय कहीं गौरी ने स्वाभिमान के दम्भ में पड़ कर मुझसे विवाह करने से इन-कार कर दिया, तब मेरी परिस्थिति कितनी दयनीय हो उठेगी ! केवल स्वाभिमान के दम्भ की बात नहीं है। यह भी तो सम्भव है कि वह मुझे चाहती ही न हो। उस दशा में उसका इनकार कर देना मेरा मरण बन जायगा। कहीं मुँह दिखाने लायक न रहूँगा मैं !

कई दिन से शरत अपनी घड़ी सुधरवाने के फेर में था; क्योंकि वह चौबीस घण्टे में बारह मिनट आगे बढ़ जाती थी। महात्मा गांधी मार्ग पर जो घड़ियों की सबसे बड़ी दुकान है, घड़ी सुधरवाने के सिलसिले में वह वहीं आ पहुँचा। वह विचारों में इतना डूबा हुआ था कि काउण्टर पर खड़ी अपनी घड़ी के लिए नये डिजाइन की पट्टियाँ देख रही माधुरी की ओर उसकी दृष्टि ही न गई। शरत ने सेल्समैन को अपनी घड़ी सुधरवाने के लिए जो अनुरोध किया, तो माधुरी प्रसन्नता से उसी तरह खिल उठी, जैसे कोई कली एक ही क्षण में चटक कर खिलकर फूल बन गई हो। सेल्समैन उसकी घड़ी खोलकर देखने लगा और गौरव, अभि-मान, संयोग के सम्मिलित भाव से शरत के ऊपर अपनी छाप डालने के उद्देश्य से प्रेरित होकर एक क्षण सोचे बिना माधुरी एक तेवर के साथ बोली—"घड़ी न बिगड़ी होती, तो आपके दर्शन भी न होते। न आप तिलक हाल वाली मीटिंग में दिखाई पड़े, न जवाहरनगर के सर्कस में। सता लीजिए साहब, एक हफ्ते की तो बात ही रह गई है !"

बात के अन्तिम वाक्य से उसे गौरी की याद आ गई। इसी बात को अगर गौरी कहती, तो उसमें सिनेमा के डायलाग जैसी गन्ध कदापि न होती। 'सता लीजिए साहब'—जैसे छोकरियों को सताना मेरा पेशा हो ! यही श्रीमतीजी बनेंगी मेरी !

सेल्समैन बोला—"इसमें सफाई की जरूरत है। पुरानी हो गई है। पुर्जे घिस गये हैं। अब इसको छुट्टी दे दीजिए।"

इतने में माधुरी बोल उठी—"बिगड़ी घड़ी को सुधरवाने में पैसा

डालना बेकार है। और जरूरत भी क्या है ? इस दुकान में जो सबसे कीमती घड़ी थी जनाब के लिए पिताजी कल ही खरीद चुके हैं।"

शरद सोचने लगा कि परीक्षा के दिन आ रहे थे और गौरी को एक रिस्टवाच की बड़ी सख्त जरूरत थी। मुझसे तो नहीं, लेकिन अम्मा से कहा था उसने। मैं यह सोचता ही रह गया कि मुझसे जब भेंट होगी तो मैं अपनी घड़ी दे दूंगा। फिर न भेंट हुई न घड़ी ही दे सका।

इतने में शरत बिना कुछ कहे वहाँ से चल दिया। माधुरी उसको रोकती रह गई, किन्तु शरत ने उसको कुछ कहने का अवसर ही नहीं दिया।

लम्बे डग भरता हुआ और कहीं-कहीं दौड़ता हुआ शरत चला जा रहा था। मन ही मन पुकारता हुआ—गौरी ! गौरी ! माधुरी नहीं—गौरी !

रास्ते में हेमन्त बाबू की कार भी मिली। उसने उसे देखा भी। मगर वह उस पर न चढ़कर आगे बढ़ गया और जो बस खड़ी हुई थी उसी पर लपककर चढ़ गया। उस पर बैठने की जगह न मिली तो वह बस का रौड पकड़कर रूमाल से पसीना पोंछने लगा।

थोड़ी देर बाद वह अपने बंगले के अन्दर जो पहुँचा तो देखा कि गाड़ी द्वारमंच में ही खड़ी है और गौरी बाउण्ड्री के उस पार बिलकुल उसी जगह खड़ी हुई थी—जहाँ गौरी के अभिसारों का साथी केले का वृक्ष है और जहाँ खड़े होकर उससे उसकी बातचीत हुआ करती थी।

आँखें चार होते ही शरत ने पूछा—"कुछ झटक गई हो गौरी ! क्या बात है ?"

गौरी पहले तो गम्भीर हो गई, फिर उसने अपनी उदासीनता को मुसकराहट से छिपाने की चेष्टा करते हुए कहा—"बनावटी आत्मीयता तुम जानते हो मुझे कभी स्वीकार नहीं हुई। फिर भी आज जब माधुरी से तुम्हारी शादी तय हो गई, मैं तुमको बधाई देती हूँ।"

शरत ने देखा कि पीड़ा का स्वर छिपाये छिप नहीं सका है। कण्ठ-स्वर ने कह ही दिया कि मैं कहाँ से बोल रही हूँ। तब शरत ने उत्तर दिया—"मैं ऐसा कुछ नहीं सोचता था गौरी कि तुम मुझे इतना गलत समझोगी।"

अपने हृदय को गम्भीर बनाकर कठोरता के साथ गौरी बोली—"इसमें गलत समझने की क्या बात है? मूल रूप में यह तो रुचियों का प्रश्न है। जहाँ तुम्हारा मन भरा वहाँ शादी करना स्वीकार। माधुरी में किसी बात की कमी तो है नहीं। मुझसे अधिक गौर वर्ण है उसका। पढ़ी-लिखी है ही। फिर सुनती हूँ कि नृत्यकला में भी निपुण है। रूप है, सौन्दर्य है। और सबसे बड़ी बात कि बड़े आदमी की लड़की है। दौलत की भी कोई कमी नहीं है। अभिप्राय यह कि मुझमें कौन-सी ऐसी बात थी जो तुमको मेरे निकट खींच लाती?"

शरत विचार में पड़ गया कि इसका क्या उत्तर दे?

तब तक गौरी बोली—"माधुरी की बात और है। मुकुट बाबू ने तुमको खरीद लिया और तुम उनके हाथ बिक गये। इस सौदे में तुम्हारे अस्तित्व का प्रश्न कहाँ उठता है!"

शरत ने कोई उत्तर न दिया।

गौरी फिर बोली—"शादी मेरी भी लगी है। लड़का तुमसे ज्यादा पढ़ा-लिखा इंजीनियर है। तुमसे अधिक सम्पन्न है और सुनती हूँ अधिक स्वस्थ और सुन्दर भी है।" पर फिर इतना कहते-कहते गौरी का कण्ठ भर आया। आँखों में आँसू आगये, पुतलियाँ चमकने लगीं। झट से साड़ी का अंचल उसने आँखों से लगा लिया।

तब शरत बोला—"हूँ, समझा, लड़का मुझसे अधिक सुन्दर है, अधिक पढ़ा-लिखा है, अधिक सम्पन्न है, मगर इस अधिकता के साथ तुम्हारी शादी नहीं होगी। क्योंकि तुम उसके योग्य नहीं हो। तुम केवल मेरे योग्य हो। मेरे लिए तुम्हारा जन्म हुआ है। मुझको छोड़कर तुम कहीं नहीं जा सकतीं।" और इतना कहकर उसने हाथ बढ़ाकर उसे अपनी ओर खींच लिया और कहा—"तुमको अभी मेरे साथ चलना होगा। तुम्हारी शादी मेरे ही साथ होगी और अभी आज ही होगी। मुझे तुम्हारा

बिलकुल भरोसा नहीं रह गया। मुझे डर है कि कहीं तुम पलट न जाओ।"

गौरी विस्मय, उल्लास, आनन्द और चरम सौख्य की पावन घड़ी का अनुभव करती हुई स्तब्ध हो उठी। शरत उसका हाथ पकड़ कर घसीटते हुए कार के पास ले गया और दरवाजा खोल कर उसे अन्दर बैठाता हुआ, ड्राइवर से कहकर कि मैं अभी आता हूँ, कार ड्राइव कर के आँख से ओझल हो गया। गौरी सोचती ही रही कि कहूँ—"ऐसी जल्दी क्या है?"

पहले एक आदितत्व की बात बता दूँ कि ईश्वर के निकट आकस्मिक अथवा संयोगेन कुछ नहीं होता। लाँगफेलो ने जिस समय यह बात कही उस समय वह कैसी परिस्थिति में था, यह जानना मेरे लिए बड़ा कठिन है, किन्तु जो लोग सांसारिक हैं, निराशा और दुःख ही अधिकांश रूप से जिनके पल्ले पड़ता है, उनके लिए अकस्मात् जो भी घटित होता है, बहुत ही दुर्लभ और सौभाग्येन होता है।

एकाएक जब गाड़ी पूर्व दिशा की ओर मुड़ने लगी, तो गौरी के मन में आया, अकस्मात इतनी जल्दी शरत और मैं (अर्थात् हम दोनों) जा कहाँ रहे हैं? जान पड़ा हम सिनेमा नहीं देख रहे हैं, सिनेमा के बने बनाये चित्र के बीच हम स्वयं इन-एक्शन सम्मिलित हैं। अभिप्राय यह कि हम परदे पर भी हैं और फिर बालकनी में दर्शकों के बीच बैठे भी हैं।—चेतना के एक ही झटके में गौरी सोचने लगी।

गाड़ी अब जी० टी० रोड से रेल बाजार की ओर मुड़ने वाली सडक पर आ चुकी थी। गौरी का सिर अब शरत के कन्धे से जा लगा था और वह मन्द स्वर में कभी-कभी कुछ बुदबुदाने लगती थी।

सहसा उसके मुख से निकल गया—"हम जा कहाँ रहे हैं?"

स्टियरिंग पर रखे हुए दोनों हाथ कभी दायें घूमते हैं, कभी बायें। गौरी शरत के वक्ष से अपना शिरोभाग सटाये हुए कहती जा रही थी—

"प्यार के समुद्र की मैं भूखी नहीं। महासागर में जितना जल होता है, एकदम से उतना अमृत मैं पी भी न सकूँगी। तुम मेरे बने रहो और चाहे जिस स्थिति में रहो, यही बस इतना ही मुझे चाहिए।" इन शब्दों की करुणा में इतनी शक्ति कहाँ कि बरबस आँसू टपका ही दे। पर गौरी के आँसू थम नहीं रहे थे।

शरत मौन था। तब सहसा गौरी ने पूछा—"सच सच बतलाओ तुम्हें हमारे इस सिर की कसम है, आखिर तुमने सोचा क्या है?" जान पड़ा आँसू थम गये हैं। गौरी भावुकता त्यागकर गम्भीरता के साथ बोल रही थी।

शरत ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। वह उस समय बहुत गम्भीर स्थिति में था। जब गौरी बोलती थी तो शरत सोचने लगता था कि मैं इसको बहुत अभिमानिनी और मुखर समझता था। लेकिन मूल रूप में यह कितनी भोली है! इसीलिए जागृति के स्थान पर इसका कुतूहल ही प्रकट हो रहा है।

शरत की आदत थी कि वह बीच-बीच में कई वाक्य गोल कर जाता था।

जब वह कुछ न बोला तो गौरी ने फिर कहा—"जीवन में चाहे कितने महान् और पवित्र कार्य हों, मेरी मान्यता है कि जल्दबाजी में उनका सौन्दर्य धूमिल पड़ जाता है।"

शरत ने मुसकराते हुए एक बार गौरी के नयनों की ओर देखा। अधरों की लालिमा की ओर भी दृष्टि डाली और फिर मुख को बायें हाथ से उस राजपथ के सामने से अपनी ओर घुमाता हुआ वह बोला—"डर रही हो मुझसे? विश्वास का बल कुछ कम तो नहीं हो गया?"

ये बातें शायद और बढ़तीं और इन्हीं बातों में शायद गंगा का पुल पार हो जाता, किन्तु उस पार से सवारियों का ताँता लगा हुआ था और इस पार से जाने का मार्ग काफी देर से बन्द था। जो सवारियाँ आती थीं, वह गेट पर आकर रुक जाती थीं। फल यह हुआ कि शरत को भी अपनी गाड़ी रोक लेनी पड़ी। आगे जो गाड़ियाँ और बसें खड़ी थीं, उनके यात्री उन पर से उतर-उतर कर नीचे टहल रहे थे।

गौरी ने अपने सिर को उसके कन्धे से हटा कर कुछ स्थिर होते हुए उत्तर दिया—"देखो, मेरी ओर देखो। जब तक मेरा हाथ तुमने नहीं पकड़ा था और जब तक उस हाथ को खींच कर के एक तरह से घसीटते हुए गाड़ी में नहीं ले आये थे, उससे पहले तक मैं तुमसे जरूर डरती थी। लेकिन अब, जब मैंने तुम्हारे साहस का परिचय पा लिया है, तब मैं यह जानना चाहती हूँ कि इस तरह से भागने की जरूरत ही क्या है? चाचा और चाची के सामने भी तो कह सकते थे।"

"सब कुछ कह सकता था। लेकिन कहना चाहता न था। इसलिए कि प्रेम हो या विवाह, किसी की अनुशंसा के माध्यम से स्वीकार करना मुझे पसन्द नहीं। एक बात और है, प्रेम प्राप्त करने के अनन्त मार्ग हैं और मेरी मान्यता है कि धीरे-धीरे उन सारे मार्गों पर चल कर परिपूर्ण प्रेम प्राप्त करना ही जी भर कर जीना है। मैं डैडी को यह दिखलाना चाहता हूँ कि इस मामले में मैं उनकी अनुशासनप्रियता का समर्थक नहीं, विरोधी हूँ। परिणाम चाहे जो कुछ हो, क्योंकि उसके सम्बन्ध में मैं कुछ सोचता नहीं हूँ।"

क्षण भर के लिए गौरी विचार में पड़ गई। वह सोचने लगी कि अम्मा और बाबू की सहमति के बिना इनके प्रभाव में आकर अगर मैं अवैध प्रेम के चक्कर में पड़ गई, तो इनका तो कुछ न बिगड़ेगा—क्योंकि ये ठहरे उच्च मध्यम वर्ग के तरुण—लेकिन मेरे लिए गति कहाँ रह जायगी?

इसी क्षण शरत ने कह दिया—"कोई कुछ समझा करे। लेकिन मैं तो यही मानता आया हूँ कि जीवन में पवित्र समझो तो पवित्रतम और महान् समझो तो महानतम पुण्यकार्य अगर कोई है तो बस एक यही प्रेम।"

"मेरी ऐसी मान्यता नहीं है। मैं सब कुछ सहन कर सकती हूँ लेकिन प्रेम का अपमान नहीं सहन कर सकती। इसलिए मेरा आग्रह है कि अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, एक बार प्रयत्न कर के देखें तो सही। मैं तो अब भी यही मानती हूँ कि चाचाजी इतने निर्मम कभी हो नहीं सकते।"

"मगर मैं देखना चाहता हूँ कि वह कितने निर्मम हैं।"

इतने में शरत ने देखा कि ठाकुर दिलदार सिंह बिलकुल सामने आ गये और कुछ चौंकते हुए बोले—"अरे शरत, तुम कहाँ ?"

शरत ने एक क्षण पहले उनको देख लिया था, इसलिए तत्काल उसने सोच भी लिया था कि मुझे यही कह देना है कि गंगा पार उन्नाव के रास्ते में जो नेहरू पार्क पड़ता है, वहीं पर एक पार्टी में सम्मिलित होने के लिए जा रहा हूँ।

गौरी ने शरत की ओर जरा-सा देखा। मुसकराहट में जरा सी प्रतिक्रिया भी हुई, किन्तु फिर वह पूर्ववत् स्थिर हो गई।

गौरी की इस प्रतिक्रिया ने उसके सोचे हुए मन्तव्य को हिला दिया और उसके मुँह से एकाएक निकल गया—"लखनऊ।"

ठाकुर साहब बोले—"चलो, यह बहुत अच्छा हुआ, मैं भी तुम्हारी गाड़ी में ही चला चलता हूँ। बस की अपेक्षा एक तो जल्दी पहुँचेंगे, दूसरे तुम मुझको काउंसिलर्स रेजिडेन्स पर छोड़ देना।"

इसके पहले कि शरत कुछ जवाब दे, ठाकुर साहब अपना अटैची केस लेने के लिए बस के अन्दर चले गये।

इतने में गौरी बोल उठी—"किसी भी शुभ कार्य के निमित्त जब हम आगे कदम बढ़ाते हैं, मैंने देखा है कि प्रकृति हमारा विरोध अवश्य करती है। मुझे आशंका इस बात की है की कहीं ठाकुर साहब हमारा पीछा ही न छोड़ें, यहाँ तक कि थोड़ी बहुत देर रुकने के बाद कहने लगें—चलो वापस चलो, तब क्या होगा ?"

शरत ने जवाब दिया—"तुम चिन्ता न करो। ऐसा नहीं है कि प्रकृति हमेशा विरोध ही करती हो। हम लोगों के भीतर जो भावना काम कर रही है, वह भी प्रकृति का ही एक रूप है।"

"तुम हमेशा दो नावों पर सवार रहते हो। हम बातें कर रहे थे क्रूर प्रकृति की। तुम उस नाव को छोड़ कर दूसरी नाव पर आ गये जो मानव प्रकृति की है।"

"मैंने सदा यही देखा है कि तुम विरोध करने के लिए विरोध करती हो, चाहे मैं हूँ या कोई और। तुम मानव प्रकृति को विश्व प्रकृति से अलग समझती हो।"—शरत ने यह बात कुछ ऐसे ढंग से कही कि आते

हुए ठाकुर साहब ने सुन ली और वे बोले—"तुम लोग मित्र होकर सदा आपस में झगड़ते रहते हो। कभी तो हँसा करो बेटे !"

ठाकुर साहब का इतना कहना था कि दोनों हँस पड़े।

और शरत बोल उठा—"वाह ! आपने हम दोनों को समझा खूब"

इतने में यात्रा का मार्ग खुल गया और ठाकुर साहब कार में आ बैठे।

: २१ :

मोहन बाबू जिस गाँव में रहते थे, वह लगभग दो हजार जन-संख्या का एक भरा-पूरा कस्बा था। उसमें तीन प्रकार के लोग रहते थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय, जिनमें से अधिकांश पहले जमींदार थे, किन्तु अब खेती के अतिरिक्त आटाचक्की, कडुये तेल पेरने के कोल्हू, धान से चावल निकालने की मशीन, अरहर की दाल का दराना आदि छोटे-मोटे उद्योगों में पड़ गये थे। गाँव में थाना, मवेशीखाना, जूनियर हाईस्कूल तथा कन्या पाठशाला भी थी। छोटे-मोटे मन्दिरों की संख्या तो दस के लगभग थी। कुछ परिवार कायस्थों के थे, जो पुराने जमाने के रईस थे। इनके घरों में अधिकांश लोग तहसील में या तो वकील होते थे या कानूनगो। सामान्य श्रेणी के हुए तो पटवारी। लेकिन ऐसे लोग भी थे जो तालुकेदारों के यहाँ मुख्तार-आम या मैनेजर रहते आये थे और उस युग में जिनकी पद-मर्यादा किसी भी जमींदार से कम न थी। गाँव में नाई, धोबी, कहार, लोधे, काछी, और कोरी तो थे ही, मुसलमान भी कम न थे।

मोहन बाबू जाति के ब्राह्मण थे। घर से निकले तो थे कालेज में पढ़ने के लिए, किन्तु मित्रों की संगति में पड़ कर उन्होंने विधिवत् और कुशलतापूर्वक तबला बजाना सीख लिया था।

इसका एक कारण था। सावन के महीने में नगर के मन्दिरों में झाँकियों का उत्सव होता ही था। कहीं-कहीं ऊँचे स्तर पर संगीत-सभा-

रोह भी होता था। कला के सम्बन्ध में मोहन बाबू की रुचियों का स्तर प्रायः ऊँचा रहता था। सम्पन्न लोगों के यहाँ होने वाले संगीत-समारोहों के अतिरिक्त यदि किसी पेशेवर वैश्या के यहाँ कोई शानदार मुजरा होने का समाचार मिलता, तो केवल इतना जानकर कि वहाँ तो कलावन्त पंडित कन्हैया प्रसाद त्रिपाठी भी पधारेंगे, वे उसमें अवश्य जाते और अगर अनुकूल अवसर देखते, तो दो-चार रुपये खर्च भी कर डालते थे। पहले तो उन्होंने रंगमंच के आरकेस्ट्रा में तबला बजाने का कार्य स्वीकार कर लिया, किन्तु जीविका का यह मार्ग स्थायी न बन सका, क्योंकि विजयादशमी के अवसर को छोड़कर नाटक होते ही बहुत कम थे।

एक दिन जब वे मूलगंज के चौराहे पर किशोरी के यहाँ पान खा रहे थे, तो उसी वक्त कंगनबाई जीने पर से उतरी और मोहन बाबू की ओर देखकर बोली—"आदाब अर्ज !"

मोहन बाबू कुछ आश्चर्य के साथ बोले—"आप ! आप मुझको कैसे जानती हैं ? मैं तो आपसे···मेरा मतलब यह है कि मैं तो आपको नहीं पहचानता।"

कंगनबाई ने अपनी चिर अभ्यस्त मुसकराहट के साथ उत्तर दिया —"ऐसा ही होता है। सूरज को हम सब लोग देखते हैं और पहचानते हैं, लेकिन उसको हम सब लोगों का बिल्कुल पता नहीं रहता। अभी गये साल की बात है, हुजूर मन्दिर के नाटक में तबला बजाने के लिए बुलाये गये थे। बीच में मैं भी बैठी थी। कहीं और आपको ख्याल न होगा, लेकिन हुजूर मेरे पास से गुजरे थे। और वहाँ भी मैंने हुजूर को आदाब किया था। उस दिन से गाने-बजाने के इस शौकीन तबके में हुजूर का नाम कितना रोशन हो गया है, हमारे हलके में कौन नहीं जानता !"

एक संकोच के साथ मोहन बाबू ने उत्तर दिया—"क्या बताऊँ, शौक की बात है। लग गया सो लग गया।"

"अरे तो क्या हुआ ! जंगली और जाहिल लोगों की बात जाने दीजिए। हुजूर कला के पुजारियों का मान कोई छीन नहीं सकता।"

मोहन बाबू ने कह दिया—"किशोरी, आपके लिए भी पान बना दो न !"

कंगनबाई को मोहन बाबू ने ज्यों ही पान दिया, त्यों ही बाई जी ने नमित होकर कह दिया—"शुक्रिया।" और साथ में इतना और जोड़ दिया—"मेरा नाम कंगनबाई है और यहीं ऊपर मेरा गरीबखाना है। अगर हुजूर को तकलीफ न हो, तो दो मिनट के लिए अपने कदमों की धूल से हमारे इस कोठे को भी पाक कर दीजिए।"

तो मोहन बाबू का प्रवेश इस कूचे में एक संयोग से हुआ था। और फिर तो वे मुजरा जमा देने के लिए अपने फन के सबसे बड़े उस्ताद माने जाने लगे थे।

कंगनबाई के इस कोठे पर मोहन बाबू के गाँव के कुछ रईस घराने के बिगड़े हुए युवक भी गाहे-बगाहे आ जाते थे। ये लोग मोहन बाबू को जब कभी रास्ते में मिल जाते तो कभी स्वयं मोहन बाबू को चाय पिला देते, कभी मोहन बाबू ही उन्हें पान खिला देते। लेकिन ये लोग मिलते समय मोहन बाबू को इतना अवश्य सहेज देते थे कि पंडित जी देखिए, हम लोग एक ही पथ के पथिक हैं। फर्क इतना है कि हम लोग मुजरा सुनने आते हैं और आप लोग उस मुजरे को सफल बनाने वाले एक कलावन्त हैं। गाँव में आना-जाना आपका भी बना रहता है। इसलिए हम लोगों की प्रार्थना सिर्फ इतनी है कि कहीं भी हमारे इस शौक की चर्चा आप न करें और आपके सम्बन्ध में भी हम लोग गाँव वालों को यह न बतलायें कि वाकई आपका धन्धा क्या है और आप कहाँ बैठते हैं।

ऐसे अवसर पर मोहन बाबू साहस के साथ यह जवाब देने से न चूकते थे कि "देखिए साहब, जब मुझे शादी-वादी करके घर नहीं बसाना है, तो झूठी इज्जत की जिन्दगी बिताना भी स्वीकार नहीं है। आपके शौक की बात तो मैं कहीं कहूँगा नहीं; पर मेरे धन्धे की बात आप चाहें तो गाँव के सभी लोगों को डुगडुगी पिटवा कर बता सकते हैं। गाँव से मेरा इतना ही रिश्ता बाकी रह गया है कि वहाँ अभी मेरी माँ जीवित है, छोटे भाई की गृहस्थी है और मेरे नाम पर थोड़ी सी जमीन और मकान भी है। और ऐसा कुछ तो है नहीं कि अब तक गाँव वाले मुझे

जान न गये हों, या उनसे मेरी रुचियों की बातें अब तक छिपी रह गई हों।"

एक लम्बे अरसे के बाद जब मोहन बाबू को गाँव आने का अवसर मिल रहा था, तब वे यही सोचते जाते थे कि अब मैं वहाँ किस तरह का जीवन व्यतीत करूँ, कैसे रहूँ और जीवन-निर्वाह का साधन क्या बनाऊँ? शौकीन तबीयत के लोगों को अगर मैंने तबला-वादन का शिक्षण देना शुरू कर दिया तो भी सब मिलाकर दस-बीस रुपये भले ही मिल जायँ, अधिक आमदनी तो होना कठिन है।

अगर फिर प्रश्न उठे कि पन्ना वास्तव में है कौन? किसकी लड़की है? किस जाति की है? तो यह बातें मैं माँ से कहाँ तक छिपा सकूँगा? दलजीतसिंह ने अगर इतना ही कह दिया कि यह लड़की तो पंडित जी ने कहीं से उड़ा ली है, तो मेरी क्या स्थिति होगी?

फिर उन्हें ध्यान आ गया कि पन्ना संगीत और नृत्य कला की शिक्षा पूरी करने के बाद अभी मुश्किल से बीस दिन हुए मुजरा करने के लिए बाहरी कमरे में आने लगी थी। गाँव के लोगों को तो उसको देखने का अवसर नहीं मिला था। इसलिए इस बात का तो डर नहीं है कि कोई उसे पहचान लेगा। लेकिन······। इसी समय उनके दिमाग में कीड़ा रेंगने लगा कि किसी दिन रेडियो का फिल्मी नृत्य-गीत पन्ना के कान में पड़ गया तो वह अपने रसबोध की प्रतिक्रिया पर कैसे नियन्त्रण कर पायेगी?

—मगर चिन्तन की यह सारी बातें उसी व्यक्ति में होनी चाहिए, जो भीतर से कायर और भीरु हो। जब मैं माँ से यह कह दूँगा कि यह मेरी विवाहिता स्त्री है, शादी मेरी ससुराल ही में हुई थी। तब इस प्रसंग में प्रश्न-दर-प्रश्न उठने की गुंजाइश कहाँ रह जाती है? फिर जो होगा, देखा जायगा।

इस तरह की बातें सोचते और छोड़ते जब मोहन बाबू अपने गाँव

पहुँचे, रात के आठ बज गये थे और दरवाजे पर दस दिन का पैदा हुआ बछड़ा अपनी माँ (गैया) का स्तन्यपान कर रहा था। ऐन में अपने मुँह का हुथेला लगाता और फिर थन को मुँह में भर कर चुकुर-चुकुर पीने लगता।

इस दृश्य को देखकर मोहन बाबू ने मन ही मन सोचा—"वाह क्या बात है ! नन्दनन्दन जय हो तुम्हारी !"

दरवाजे के भीतर पैर रखते ही उसने पुकारा—"अम्मा, कहाँ हो ?"

सोहन भीतर से बोल उठा—"दद्दा आ गये।"

"कौन ? मोहन आ गया ?" प्रतीक्षा-विकल माँ बोल उठी। और पन्ना की ओर संकेत करता हुए मोहन बाबू बोले—"अम्मा, ये तुम्हारी बहू है। मैंने बाकायदा ब्याह किया है इसके साथ।"

पन्ना माँ के चरणों के पास बैठ कर विधिवत् उनके पैर छूने लगी। अब बायें हाथ की अँगुलियाँ सास के दायें पैर के ऊपर थीं, दायें हाथ की उनके बायें पैर पर। चार बार उसने धीरे, बहुत धीरे, दायें हाथ से उन के पैरों की रज अपने भाल पर लगाई और पाँचवीं बार दोनों हाथों से दोनों पैरों की, एक साथ।

तब तक सोहन की बहू भी बाहर निकल आयी थी। उसने भी अपनी जिठानी पन्ना के पैरों की रज अपने भाल पर लगा ली।

पन्ना की आँखें सजल हो उठीं। यही जीवन तो वह नित्य भगवान से माँगती थी।

महँगाई बढ़ गई है। नगर और गाँव में करों की भी वृद्धि हो गई है। चीनी सीमित मात्रा में मिलती है। पंचायतों में भी बोलबाला उसी वर्ग का है जो शक्तिशाली, धूर्त्त तथा अवसरवादी है। राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से देखें तो वह किसी खूंखार जानवर से भी बदतर है। लेकिन इतना सब होने पर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि विकास के चरण गाँव तक जा पहुँचे हैं। बिजली की बत्ती के सामने खड़ी हुई पन्ना के मुख को जो मोहन बाबू की माँ ने देखा, तो उसके सिर

पर हाथ फेरा, बाँह में भर कण्ठ से लगाया और आशीर्वाद देते हुए कहा —"भगवान करे, बहू तेरा सुहाग अमर रहे।"

फिर सोहन ने, जो अभी गाय का दूध दुह कर आया था और धोती से अपने गीले हाथ पोंछ रहा था, पहले आगे बढ़ कर मोहन बाबू के पैर छुए, फिर अपनी भाभी के। फिर वह ट्रंक, झोला और बिस्तर का पुलिन्दा बाहर चौपाल से उठा कर भीतर रखने लगा।

इतने में माँ बोली—"दुलहिन रोटी बनाने में तो देर हो जायगी। इसलिए पराठे ही बना डाल। और सोहन बेटा, साग तो घर में होगा नहीं। आलू या घुइयाँ गयादीन बनिये की दुकान पर मिल जायेगी। रात को कछियाने में जाना ठीक न होगा मेरे ख्याल से।"

सारा सामान जब भीतर कमरे में आ गया, तो मोहन ने माँ को पास बुला कर कहा, "अम्मा अभी थोड़ा ही सामान ले आया हूँ। धीरे-धीरे कई बार में और सामान भी ले आऊँगा।"

बूढ़ी माँ ने एक युग के बाद यह दिन देखा था। मोहन के सिर पर हाथ रख कर बोली—मैं जानती थी, कि तू जब कभी आयेगा, घर भर को कपड़े जरूर ले आयेगा।"

ट्रंक खोल कर कुछ वस्त्र निकालते हुए मोहन बाबू बोले—"यह साड़ी ब्लाउज तुम्हारे लिए, यह साड़ी-ब्लाउज दुलहिन के लिए।" फिर बाकी कपड़ा निकाल कर कहा—"यह बच्चों के लिए।"

जमना की गोद में एक बच्ची थी जिसका नाम था गोदावरी। उसको सास की गोद में देते हुए वह बोली—"पूरी ही बनाये लेती हूँ अम्मा।"

तब तक पुलकित माँ ने जमना का धोती-ब्लाउज उसको बढ़ा दिया, यह कह कर कि देख बहू साड़ी कितनी कीमती जान पड़ती है। जमना साड़ी देखती हुई सोचने लगी—अब तक तो कभी साड़ी वाड़ी कभी कुछ लाये नहीं थे।

और माँ बोली—"हाँ हाँ यही ठीक होगा।"

इसके बाद मोहन बाबू ने फिर झोले में से मिठाई का डिब्बा निकाला और माँ के आगे रखता हुआ बोला—"थोड़ी सी मिठाई भी लेता आया हूँ अम्मा!"

सोहन को यह तो मालूम था कि भैया का मुख्य धन्धा क्या है, लेकिन वह यह न जानता था कि उनकी कोई निश्चित जीविका भी है। और मोहन बाबू का हाल यह था कि जहाँ तक सम्भव होता, वे कोई बात छिपा नहीं सकते थे। सीधे तौर से कहने में उन्हें कोई संकोच होता, तो कथन के प्रकार में ही थोड़ा सा अन्तर पड़ जाता था। लेकिन व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि किसी को कुछ अन्यथा समझ कर कोई प्रश्न करने का साहस ही न होता था। उनके खानदान में अब एक वृद्धजन शेष रह गये थे, अर्जुन दादा। अर्जुन दादा 'किन्तु परन्तु' लगाने में बड़े प्रवीण थे। कोई भी बात वे मन में रख नहीं पाते थे।

प्रसंगवश एक दिन बात चली और उन्होंने कह दिया कि जो लोग गाने-बजाने का काम करते हैं, धर्म-कर्म वे बहुधा कम मानते हैं। उनका चरित्र भी गिरा हुआ रहता है। कभी-कभी तो वे लोग अपने आचार-विचार में इतने गिर जाते हैं कि अपने घर में उनका बैठाना भी हमारे लिए चिन्ता का कारण बन जाता है।

मोहन बाबू नहीं चाहते थे कि अर्जुन दादा के इस कथन पर अपना तीव्र विरोध प्रकट करके उनकी नाराजगी मोल लें, किन्तु स्वयं उनका चरित्र तब तक कहीं से भी गिर नहीं पाया था।

—इसका भी एक कारण था। मोहन बाबू मानते थे कि यौन-लिप्सा के प्रसंग में दोषी हम उसी व्यक्ति को ठहरा सकते हैं जो अपने जोड़ीदार प्रतिकूल सैक्स की स्वीकृति लिये बिना उसका शीलभंग करने की चेष्टा करता है। पारस्परिक सम्पर्क और आत्मीयता की परिपूर्ण अभिवृद्धि हो जाने पर यदि देहरस-प्राप्ति का अवसर कभी मिल जाय और उससे सामाजिक शान्ति को कोई हानि या आघात न पहुँचे तो उस दशा में पुरुष हो कि स्त्री, उसको दोषी समझना वे उचित नहीं मानते थे।

अतः अर्जुन दादा की बात को सुनकर वे तुरन्त बोल उठे—"क्षमा कीजिएगा दादा, जहाँ तक आचार और धर्म का सम्बन्ध है, मेरा विश्वास है कि जैसे हर व्यक्ति के चलने का एक ढंग होता है, वैसे ही कला के क्षेत्र में भी प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग अस्तित्व ही नहीं, दृष्टिकोण भी

रखता है। जब साधारण समाज से लेकर बड़े-से-बड़े प्रतिष्ठित खानदान में भी आचारहीन और चरित्र-भ्रष्ट लोग बने रहते हैं और आपका समाज उनके लिए कुछ नहीं कर पाता—यहाँ तक कि मान और प्रतिष्ठा भी उनकी कम नहीं होती—तब कला के पुजारियों के लिए आपकी यह बात कहाँ तक मान्य हो सकती है जो विष पीकर जीते और अवसर आने पर अमृत के ऐसे रसार्णवों की सृष्टि कर जाते हैं जिनसे किसी एक देश को ही नहीं, सम्पूर्ण मानवता को प्राण और त्राण मिलता है। अपने ही गाँव में तेगबहादुर सिंह, त्रिवेणी बनियाँ तथा माधवप्रसाद दीक्षित आदि कितने ही लोग हैं। काम-काज के अवसर पर इन लोगों के चाचा और भाई, बहनोई और साले भरे समाज में अपने साथ बैठाकर खिलाने में कोई परहेज रख पाते हैं? हमारे समाज में जब उनको अलग कर देने की शक्ति ही नहीं रह गई, तब चरित्रहीनता की बात को लेकर इस प्रकार का आक्षेप उठाने का अर्थ क्या है, मूल्य क्या है?"

अर्जुन दादा मुसकराते हुए बोले—"हाँ बेटा, यह तो तुम ठीक कहते हो।"

मोहन बाबू बिना रुके कहते चले गये—"दूसरी बात मुझे यह कहना है कि सब धान बाईस पसेरी वाली कहावत इस सम्बन्ध में चरितार्थ नहीं होती। ऐसे भी लोग हैं, जिनका प्रेम इस कोटि का होता है कि उनके चरित्र रूपी चादर में कोई भी दाग कभी लग नहीं पाता। इसी गाँव में ऐसे लोग भी पैदा हुए हैं, जीवन भर जिन्होंने ब्याह नहीं किया, मगर क्या मजाल कि कोई अँगुली भी उठा सका हो। यशोदा बुआ को तो तुमने देखा ही होगा दादा, जिनका गौना भी नहीं हुआ था। अस्सी वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हुआ। आज भी जब कभी उनकी चर्चा होती है, तब लोग यही कहते हैं कि भाई, उनकी बात छोड़ो। वो तो पूरी निर्जला एकादशी थीं।"

मोहन बाबू की यह बात सुनकर अर्जुन दादा बोले—"बेटा, बात तुम्हारे ऊपर नहीं थी जो तुमको बुरा लगा। मैंने तो केवल इतना ही कहना चाहा था कि विवाहित जीवन की बात और है। कहीं ऊँचा-नीचा कदम भी पड़ जाय उनका, तो ऐसे आदमियों को लोग दोष नहीं देते।

लेकिन जिनका कभी विवाह ही नहीं होता, वे कभी न कभी अपना ठौर-ठिकाना बना ही लेते हैं। यह प्रकृति का नियम है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। हाँ, आदमी के रूप में अगर कोई देवता ही पैदा हो जाय तो उसकी बात और है।"

फिर उस दिन यह बात तो यहीं समाप्त हो गयी, लेकिन अर्जुन ने इतना समझ लिया कि बड़े बेटे का जवाब बड़ा सटीक होता है।

फिर एक दिन राधा कृष्ण के मन्दिर में, गंगा दशहरा के उपलक्ष्य में, गाँव की संगीत-मंडली की बैठक थी। खाना खा लेने के बाद मोहन बाबू बाहर निकले और सीधे अर्जुन दादा के पास जा पहुँचे, जो उस समय मन्दिर जाने की तैयारी कर रहे थे। जाते ही उन्होंने दादा के पैरों की पद-धूलि अपने मस्तक से लगा ली।

दादा बोले—"कौन मोहन ? अच्छा अच्छा। सुखी रहो। सदा सुखी रहो। गाँव में जब कभी मन्दिर में संगीत का कार्यक्रम होता है तब तुम्हारी बहुत याद आती है। जब कभी सुनता हूँ कि अमुक जगह पर, धनुष-यज्ञ के अवसर पर, तुम बुलाये गये थे और बिदाई में तुमको एक-सौ-एक रुपये के ऊपर एक दुशाला भी मिला था, तब गाँव में तुम्हारी बड़ी चर्चा रही थी। मगर हाँ, अभी अभी कोई कह रहा था कि इस बार तो तुम बहू को भी संग ले आये हो।"

मोहन बाबू बोले—"हाँ दादा !"

दादा बोले—"यह तुमने बहुत बुद्धिमानी का काम किया मोहन बेटा ! सच पूछो तो यही मैं चाहता भी था कि तुम्हारा घर बस जाय। मेरी तो यही कामना है कि तुम अब यहीं रहो और पूरी तरह से सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करो।"

मोहन बाबू ने उत्तर दिया—"दादा, आपकी इस आशा को मैं पूरी तरह से निभाने की चेष्टा करूँगा।"

इसके बाद अर्जुन दादा बोले—"आज मन्दिर में बैठक है। मुंशी शंकरमाधव भी पहुँचेंगे। तुम्हें मालूम ही है कि वे सरोद कितना अच्छा बजाते हैं। यों तो गज्जू काछी भी अब ढोलक बढ़िया बजाने लगा है, लेकिन तुम्हारी बात और है। अगर तुम तबले पर संगत निभा दोगे तो

संगीत मण्डली पूरी तरह जम जायगी। मैंने सुना है कि तुम अब गाने भी बहुत अच्छा लगे हो।"

मोहन बाबू हँसते-हँसते बोले—"योंही जरा सा।"

"अरे मैं सब जानता हूँ। हीरा कभी कहता है कि मैं हीरा हूँ! उसकी दीप्ति अपने आप सब कह देती है कि मैं क्या हूँ···आज तो तुम थके होगे। कैसे कहूँ कि चलो मन्दिर। लेकिन चलते तो बड़ा अच्छा रहता। क्या विचार है?"

मोहन बाबू बोले—"जैसी आपकी आज्ञा।"

इस तरह मोहन बाबू ने उस दिन के संगीत समारोह में जो भाग लिया, तो गाँव के सभी लोग उनकी प्रशंसा करने लगे।

फिर इसी प्रसंग में अर्जुन दादा ने कह दिया कि इस बार तो मोहन बेटा अपनी बहू को भी ले आया है। तब इस समाचार को घर-घर पहुँचने में देर न लगी। परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन से ही पन्ना को देखने के लिए गाँव, पास-पड़ोस और कभी-कभी दूसरे मोहल्ले की स्त्रियों ने आना प्रारम्भ कर दिया।

नारी-सौन्दर्य से आकृष्ट ही नहीं, पराभूत हो उठने के विषय में पुरुष जाति सर्वथा अग्रसर रही है। फिर सबसे अधिक प्रभाव डालने वाली नारी सम्बन्धी बातों की चर्चा समाज के छोटे-बड़े सभी प्रकार के लोगों में फैलने में कम से कम दो-चार दिन तो लग ही जाते हैं, किन्तु 'पन्नगारि यह चरित अनूपा, मोहि न नारि नारि के रूपा।' के अनुसार किसी सुन्दर नारी को देखकर सम्पूर्ण नारी-वृन्द यह घोषित कर दे कि ऐसी सुन्दरता साधारण घर की लड़की में तो कभी हो नहीं सकती, बहुधा ऐसा कम होता है। पर पन्ना के विषय में ऐसा ही हुआ। इधर-उधर कई स्त्रियाँ अपने-अपने ढंग से कहने लगीं—उसका रूप तो राजकुमारियों जैसा है। परिणाम यह हुआ कि एक सप्ताह के अन्दर ही पन्ना का रूप-लावण्य चर्चा का विषय बन गया।

: २२ :

अब तेगबहादुर सिंह, माधव प्रसाद दीक्षित और त्रिवेणी बनियाँ अकसर एक साथ बैठ कर योजनाएँ बनाने लगे। अड्डे पर कभी ताश की पत्तियों का खेल चलता, कभी भाँग-बूटी की तैयारी होने लगती। एक दिन माधव ने आते ही सूचना दी—"आजकल गाँव में एक ऐसी बहू आई है, सुनते हैं कि वह इतनी सुन्दर है, इतनी सुन्दर है कि स्त्रियाँ तक उस पर मोहित हो जाती हैं।" त्रिवेणी ने इस कथन पर मोहर लगाते हुए कहा—"हाँ यार, माल सचमुच बड़ा चोखा है।"

माधव ने पूछा—"मगर वणिक पुत्र, तुमको चोखे माल की परख कैसे हो गई?"

त्रिवेणी ने कुछ खाँसते और मुसकराते हुए उत्तर दिया—"एक दिन मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मैंने उसे देखा था। बगल के पास से उसके सीने के गेंदों की जो एक झलक मिल गई तो भगवान कसम यह हालत हो गई कि सीढ़ी पर एक तरफ चारों खाने चित्त गिरते-गिरते बचा। बड़ी मुश्किल से अपने को सम्हाल पाया।"

तेगबहादुर जो अभी तक चुपचाप सुन रहा था, सहसा बोला—"भई ज्यादा तो नहीं पचास रुपये तक मैं फेंक सकता हूँ, पहली मुलाकात के लिए।"

माधव ने उत्तर दिया—"मैं खर्च तो एक दमड़ी भी नहीं कर सकता, लेकिन लाठी के दो-एक वार सिर पर सह सकता हूँ और दो-चार जमा भी सकता हूँ!"

अन्त में त्रिवेणी को भी कहना ही पड़ा—"मेरी सीमा तो बस दस-दस के दो नोट तक इस मद में उठाने की है। सो मैं पेशगी दे सकता हूँ। सौदा तै हो जाय, तो अभी ले लो।"

माधव बोला—"मगर भाई एक तो मामला गाँव का है और फिर ऐसे आदमी के घर का है जिसके पास मुकदमेबाजी के लिए पैसे की भी कमी नहीं है।"

त्रिवेणी बोला—"अरे तो तेगबहादुर भैया किसी से कम हैं! और

फिर अपना काम हो जाना चाहिए। हमको तो अपने काम से मतलब है। फकत यह मामला ही ऐसा है कि लोग अदालत में नहीं जाते हैं।"

इस प्रकार माधव ने उमंग में आकर अपने मित्रों के बीच फूस की ढेरी में जलती हुई दियासलाई तो छुआ दी; किन्तु फिर वह कुछ सोच कर बोला—"पर आप लोग मुझे इस मामले से अलग रखिएगा। जाति का मामला ठहरा। जैसी अपने घर की बहू-बेटी वैसी दूसरे घर की।"

तेगबहादुर ने धमकाया—"देखो माधव, अब अगर तुमने पीछे कदम रखा तो मेरा यह चमरौधा देखा है तुमने! मना करते-करते भी सिर पर इतने पड़ जायँगे बच्चू कि मुँह दिखाने को कहीं ठौर न मिलेगा। दोस्त होकर जो आदमी मौके पर अपना साथ नहीं देता, तेगबहादुर उसका गौरव समाप्त कर डालता है, उसे किसी तरह क्षमा नहीं करता।"

त्रिवेणी ने कह दिया—"देखो पंडित, मौज-बहार के मामले में जाति का नाम मत लो। लड़कियाँ सो लड़कियाँ, किसी भी जाति की क्यों न हों। हमारी जाति की होती तो क्या आप उसे छोड़ देते? फिर हमारे गुरुजी कह गये हैं कि 'जाति पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।' और अपना तो यह उसूल है कि जब कभी कोई खोटा काम करने चलते हैं, तो भगवान का नाम अवश्य ले लेते हैं!"

माधव बोला—"कुछ भी हो, मैं इसमें शामिल नहीं होऊँगा।"

तब तेगबहादुर बोला—"अच्छा तो समझौता कर लो। लूट के माल में हिस्सा तुम्हारा भी रहा। मौज-बहार हम आपस में बाँट लेंगे। मौका-महल की सूचना तुमको देनी होगी, बाकी सब इन्तजाम हम कर लेंगे।"

माधव ने उत्तर दिया—"मुझे एकाध दिन की मोहलत दो भाई, सोचकर बताऊँगा।"

अन्त में मुसकराते हुए तेगबहादुर बोला—"तो वणिक पुत्र, फिर वह गिलास भर जो बची रखी है, दे दो पंडित को।"

और पंडित के कण्ठ में पहला घूँट जो गया, तो उसकी बाँछें खिल गयीं। बोला—"संग साथ की बात ठहरी भाई! काम तो तुम्हारा करना ही पड़ेगा।"

मोहन बाबू जिस समय आये थे, उनका सामान उसी समय बैठक में रख दिया गया था। उस रात पन्ना और मोहन बाबू दोनों ने उसी कमरे में अपने लिए अलग-अलग चारपाइयाँ डलवा ली थीं, किन्तु हफ्ते भर के अन्दर ही जब उनके संगीत-प्रेमी और शिष्य लोग उस कमरे में बैठने लगे, तब मोहन बाबू ने अपनी माँ से पूछा—"अम्मा, मैं अपना सामान अगर भीतर के कमरे में रख लूँ तो कैसा हो ?"

माँ बोलीं—"रख लो बेटा, तुम्हारा घर है। इसमें पूछने की क्या बात है ?"

इस तरह से जब उनका सामान भीतर के कमरे में रख दिया गया, तो उस मकान में जगह की और भी कमी हो गई। बाहर के कमरे में एक दिन पानी बरस जाने से जब उसकी छत टपकने लगी, तो उसमें दो चारपाई की जगह तो क्या, एक का भी रहना मुश्किल हो गया। परिणाम यह हुआ कि मोहन बाबू को दोनों चारपाइयाँ भीतर डालनी पड़ीं।

अब बची केवल रसोई घर की तरफ वाली कोठरी, उसमें सोहन की माँ सोया करती थीं। सोहन की समझ में न आया कि वह क्या करे। तब रसोई घर में ही सोहन ने दो चारपाई डालकर किसी प्रकार रात काट दी। तारिणी और सोहन मन ही मन सोचते रहे कि भैया और भाभी के एकाएक आ धमकने पर अभी से हमारा यह हाल है। आगे क्या होगा, कौन क्या कह सकता है ?

रात के तीन बजे थे। पानी टपकना थोड़ा-सा बन्द हुआ ही था कि सोहन को मालूम पड़ा कि तारिणी दीवार से पीठ लगाये चारपाई पर बैठी हुई है। एकाएक उसने पूछा—"क्या बात है ? बैठी क्यों हो ?"

तारिणी बोली—"मैं आज कई दिन से तुमसे कुछ कहना चाहती थी। केवल संकोच के कारण मैं अब तक चुप थी। लेकिन जान पड़ता है, अब मुझे कहना ही पड़ेगा।"

सोहन ने पूछा—"क्या बात है, कहो न ?"

तब तारिणी बोली—"दद्दा ने आते-आते घर में एकदम से ऐसा छापा मारा है कि रात को शान्ति के साथ सोने का भी ठौर-ठिकाना नहीं रह गया है।"

सोहन ने उत्तर दिया—"बात करो मैं मना नहीं करता, मगर जबान सँभाल कर। तुमको मालूम होना चाहिए कि घर में आधा हिस्सा तो उनका है ही। अपने हिस्से का उपभोग अगर वे करने लगे तो हमको आपत्ति करने का क्या अधिकार है?"

तारिणी ने जवाब दिया—"इससे तो अच्छा है, तुम बटवारा करवा ल।।"

"बटवारा करवाने में हमारी स्थिति क्या होगी, इसको समझ लो पहले। जो तीस बीघा जमीन हम दोनों की है, उसमें हम दो भाइयों के बीच में, पिताजी के उत्तराधिकार में केवल दस बीघे जमीन पड़ती है। शेष बीस बीघा जमीन दद्दा की है, जिसको दादी अपने जीवन काल में ही उन्हें दे गयी थीं। इस तरह अभी अगर बटवारा होगा तो हमारे हिस्से में केवल पाँच बीघा जमीन पड़ेगी, समझीं?"

उत्तर सुनकर तारिणी का मुँह लटक गया। निःश्वास लेते हुए उसने धीरे से कह दिया—"मैं ऐसा कुछ न जानती थी।"

फिर थोड़ी देर रुककर जब सोहन ने सान्त्वना का एक शब्द भी न कहा तो वह फिर बोली—"ऐसा ही है तो तुम दादा की बाकी जमीन प्राप्त करने के लिए, उनको किसी तरह राजी करके, जमीन की लिखा-पढ़ी तो अपने नाम करवा ही लो।"

सोहन ने जवाब दिया—"जल्दबाजी में कभी-कभी बनता हुआ काम बिगड़ जाता है। यों मुझे विश्वास है कि दादा बाकी बीस बीघा जमीन हमको दे देंगे। ऐसी कोई बात तो है नहीं कि वे किसी को अधिक दें और किसी को कम। सच पूछो तो उनकी नजर में हम दोनों सदा बरा-बर रहे हैं और मेरा ख्याल है कि अब तक हैं।"

कुछ सोचती-सोचती धीरे से तारिणी बोली—"हाँ, यह तो तुम ठीक कहते हो।"

मोहन बोला—"अब तो सोओ, बहुत हो चुका। बड़ी मुश्किल से तो पानी बन्द हुआ, फिर तुमने बोलना शुरू कर दिया।"

तारिणी सोच रही थी कि बाबू को अगर मालूम होता कि इनके

पास अपने हिस्से की केवल पाँच बीघा जमीन है तो ऐसी नौबत ही न आती कि आज मुझे यह दिन देखना पड़ता।"

रात किसी तरह से कट गयी। फिर सबेरा हुआ। अभी सोहन गैया का दूध दुहकर आया ही था कि अर्जुन दादा ने खाँस-खखार कर घर के अन्दर प्रवेश करते हुए कहा—"कहाँ है मोहन की दुलहिन ?"

पन्ना संकोच के कारण सिकुड़ गई। नाक के ऊपर तक उसने घूंघट खींच लिया। मोहन की माँ भी बाहर निकल आई। अर्जुन दादा बोले—"बहू का मुँह देखना चाहता हूँ छोटी !"

सोहन की माँ पन्ना को लेकर बैठक में जा पहुँचीं। पीठ के पास खड़ी होकर उन्होंने दायें हाथ से आँखों की पलकों तक बहू का मुँह खोल दिया।

अर्जुन दादा ने पहले सदरी की जेब से कंगन की जोड़ी निकाली, फिर केस के भीतर से चाँदी की कमानी का पुराने ढंग का चश्मा निकाल कर अपनी आँख पर रखा; जो ढीला होने के कारण नाक के आगे तक खिसक आया था। तब चश्मे की लेंसों को आँखों की सीध में ले जाकर मुँह उचकाकर बहू की ओर देखा और तब कंगन की जोड़ी आगे बढ़ाते हुए मोहन की माँ से कह दिया—"अब छोटी तुम ही इसको पहना दो, मेरे सामने अभी।"

अनुकूल अवसर पाकर पन्ना ने झट से अर्जुन दादा के पैर छू लिये।

अर्जुन दादा ने आशीर्वाद देते हुए कह दिया—"जियो जियो ! दूधन नहाओ, पूतन फलो। जैसी तारीफ सुनी थी, मोहन की दुलहिन सचमुच वैसी ही सुन्दर है। मुझे बड़ी खुशी हुई। और क्यों न हो ? मोहन किसी जौहरी से कम तो है नहीं।"

"लेकिन कहाँ गया मोहन, छोटी ?"

मोहन बाबू सिगरेट पीते हुए चुपके से छत पर टहल रहे थे। सोहन ने पुकार कर कहा—"दद्दा, तुमको दादा बुला रहे हैं ?"

क्षण भर बाद मोहन बाबू जब नीचे पहुँचे, तो अर्जुन दादा बोले—"मोहन बेटा, आज रात पानी बहुत बरसा। मेरे घर के आगे वाले दोनों कमरे टपकते रहे। एक में तो गेहूँ के बोरों का दहाना लगा हुआ था।

उसी वक्त रात में उठकर ऊपरी हिस्से को छाते से ढकना पड़ा, तब कहीं जाकर बोरों को भीगने से बचाया गया। तुम ऐसा करो कि पुरवा से मजदूर बुलवा कर छत पर मिट्टी डलवा दो।" फिर सोहन की ओर उन्मुख होकर पूछा—"यहाँ क्या हाल रहा ? कुछ टपका-अपका तो नहीं ?"

सोहन ने उत्तर दिया—"क्या बताऊँ दादा, हम लोगों ने तो रसोईघर में चारपाई डालकर किसी तरह रात काटी है।"

अर्जुन दादा ने मन ही मन कुछ स्थिर किया, फिर कह दिया—"मोहन बेटा, अब हमारी सारी व्यवस्था तुम अपने ही कन्धों पर समझो। घर तुम्हारा, सारी जमीन तुम्हारी। मेरे रहते हुए तुम्हारी गिरस्ती बस गई। अब तुम सुख से रहने भी लगो; यही मेरी कामना है।"

तब मोहन बाबू बोले—"दादा, इस समय मुझे दादी की याद आरही है। मरने से पहले बीस बीघा जमीन वे मुझे अपनी खुशी से दे गई थीं। बल्कि एक बार तो यह भी कहा था कि एक बार बहू का मुँह देख लेती तो इस वक्त मुझे कितना सुख मिलता !"

पत्नी के नामस्मरण मात्र से अर्जुन दादा की आँखों में आँसू आ गये और गीले कण्ठ से बोले—"इसे वह इसी शर्त पर दे गई थी कि जब कभी मोहन की बहू आये तो उसे यह कंगन मेरी ओर से दे देना। भला, भूलना नहीं !"

थोड़ी देर बाद जब तारिणी को अपने स्वामी से एकान्त में भेट करने का अवसर मिला तो उसने अंचल से आँसू पोंछते हुए कहा—"दादा के व्यवहार से मेरा जी बड़ा दु:खी हो गया है। अब कुछ दिनों के लिए तुम मुझे अम्मा के यहाँ भेज दो। बाबू को लिख दो कि छोटे भैया को मुझे लिवाने के लिए भेज दें।"

तारिणी जब अपने घर गई तो माँ से लिपट कर बहुत रोयी। क्षेम-कुशल पूछते समय तो उसने यही कहा कि सब ठीक है। तुमको देखने का

मन था सो चली आई। पर उसके पिता शंकरलाल को कुछ ऐसा भान हुआ जैसे तारिणी किसी नये संकट में पड़ गई है।

किसी तरह दिन बीता। रात को जब तारिणी पिता को खाना खिलाने बैठी, तब शंकरलाल ने पूछा—"सच-सच बता तारिणी, ससुराल में तुझे क्या तकलीफ है ?"

तारिणी जब कुछ न बोली तो शंकरलाल ने कह दिया—"न तो ब्याह से लौटने पर तू इतना रोयी थी, न गौने की विदा के वक्त। इस-बार जो तू इतना अधिक रोयी है तो मुझे ऐसा कुछ लगता है कि तेरे दुःख की कोई नई बात अवश्य उठ खड़ी हुई है।"

अवसर देखकर तारिणी ने बतला दिया—"बप्पा, तुमने मुझे कहाँ डाल दिया ! इनके पास तो कुल पाँच बीघा जमीन है। बाकी पाँच बीघा तो दद्दा की है, जो अब आ गये हैं। हमारे अजिया ससुर दो भाई थे। उनके बड़े भाई का पूरा हिस्सा दद्दा को मिला था। इस तरह से पाँच ही बीघा जमीन इनके हिस्से में पड़ी और पैंतालीस बीघा दद्दा के हिस्से में।"

आश्चर्य के साथ मुँह बाकर शंकरलाल बोले—"अच्छा ! इसका मतलब तो यह हुआ कि हमको धोखा दिया गया !"

इसी समय तारिणी की माँ जगततारिणी देवी आ पहुँचीं और बोलीं—"बिलकुल धोखा दिया गया तुमको। एक तरह से तुम्हारी आँखों में धूल झोंक दी गई। पहले तुमको बतलाया कि दो भाइयों के बीच में तीस बीघा जमीन है। अब जो भेद खुला तो पता लगा कि पाँच इनकी और पच्चीस बड़े भाई की। मतलब यह कि बड़े भाई अगर न लौटते तो सोहन बाबू एक दिन पचास बीघे जमीन के मालिक होते।

शंकरलाल चुपचाप खाना खाते रहे। पर अन्त में जब वे पानी पीकर उठे तो आचमन करने के बाद उन्होंने घोषणा की, "मैं अब सोहन बाबू को पचास बीघा जमीन के अधिकारी के रूप में देखकर ही दम लूँगा। ऐसा कुछ नहीं है कि 'टूटे नख रद केहरी, वह बल गयो थकाय। शंकर-लाल पचास का जरूर हो गया लेकिन अभी उसके सिर का एक भी बाल सफेद नहीं हुआ।

तारिणी को माँ के यहाँ आये लगभग एक साल हो गया था। सोहन लिवाने आया भी लेकिन तारिणी ने यही जवाब दिया—"अन्याय न कभी मेरे बप्पा ने सहन किया, और न मैं करूँगी। अब तो मैं उस घर की देहरी में तब पैर धरूँगी, जब मेरे साथ न्याय होगा।"

इसी तरह दिन बीत रहे थे कि एक दिन उसने सुना कि अर्जुन दादा डाके में मारे गये। घर में बरतन-भाँड़े के अलावा नकद कुछ नहीं निकला। लोहे का सन्दूक अलबत्ता टूटा हुआ पाया गया। मोहन और पन्ना उस रात को सोहन के घर में थे। उनकी माँ की तबीयत एकाएक कुछ अधिक खराब हो गई थी।

यह सूचना पाकर तारिणी अपने भाई के साथ ससुराल गई। किन्तु अर्जुन दादा का संस्कार हो जाने के बाद वह फिर लौट आई।

शंकरलाल ने इस समाचार को सुनकर इतना ही कह दिया कि यह बहुत बुरा हुआ। किन्तु कथन के अनुरूप उनकी मुद्रा पर शोक का कोई चिह्न न था।

फिर एक दिन सोहन बाबू आ पहुँचे। उन्होंने बतलाया, "दद्दा भाभी के साथ लखनऊ हनुमान जी के दर्शन करने जा रहे हैं।"

शंकरलाल ने उत्सुकता से पूछा—"अबकी सोमवार को जा रहे हैं क्या?"

सोहन ने बतलाया—"नहीं, वे लोग अगले वृहस्पतिवार को जा रहे हैं। वहाँ भाभी के कोई रिश्तेदार हैं। वहीं वे रुकेंगे। मंगल को हनूमान जी के दर्शन करके फिर वापस आयेंगे।"

शंकरलाल सिर पर हाथ फेरते हुए कुछ सोचते रह गये।

सोहन ने बताया—"चाचा जी, अब तो आपको विदा करनी ही पड़ेगी। आप जानते हैं कि अम्मा की तबीयत बड़ी खराब रहा करती है। गाय-बैलों को चारा-दाना आदि का काम मैं कर भी लूँ लेकिन मुझको खाना बनाकर कौन खिलायेगा?"

शंकरलाल बोले—"तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारे हित के लिए मैं कितना तत्पर रहता हूँ! तारिणी अगर जाने को राजी हो, तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।"

सोहन ने उत्तर दिया—"दादा जब तक मौजूद थे, तब तक उनका थोड़ा सा सहारा बना हुआ था। अब आपके सिवा मेरा कौन है ? दद्दा हैं तो जरूर और उन्होंने कभी कुछ कहा भी नहीं। लेकिन मेरी हैसियत में बहुत फर्क आ गया है। बात-बात में दद्दा का रुख देखना पड़ता है, उनसे सलाह लेनी पड़ती है। मैं तो सोचता हूँ कि शहर जाकर कहीं किसी मिल में नौकरी कर लूं। जब मजदूरी ही करनी है, तो भाई की क्यों करूं ? जब कभी सोचता हूँ कि वे जिस दिन चाहेंगे, मुझे अलग कर देंगे, तो मुझे चिन्ता और ग्लानि के कारण रात-रात भर नींद नहीं आती।"

"घबराओ नहीं।" शंकरलाल बोले—"भगवान चाहेंगे तो एक दिन इस सारी जमीन के तुम्ही मालिक होगे।"—कथन के क्षण उनके चेहरे पर एक कुटिल मुसकान झलक उठी।

सोहन ने कुछ पूछा तो नहीं, लेकिन वह आश्चर्य में पड़ कर यही सोचता रहा कि चाचा जी किस आधार पर ऐसा आश्वासन दे रहे हैं ?

दूसरे दिन वह तारिणी को लेकर अपने गाँव वापस आ गया।

: २३ :

मोहन बाबू कह ही रहे थे—"जान पड़ता है कि यह बस भी तुम छुड़वाओगी।" कि पन्ना ने उत्तर दिया—"शाम को खाने के लिए चार ठो टिकियाँ निकाल लूं तो चलूं। पाँच मिनट से ज्यादा नहीं लगेंगे।"

उधर माधव दीक्षित ने तेगबहादुर सिंह के पास आकर कहा—"गुरू मुझे अभी-अभी मालूम हुआ कि वह जोड़ी बाहर जा रही है कहीं।"

"बाहर जा रही है ! कहाँ ?" तेगबहादुर ने पत्ता फेंकते हुए पूछा।

माधव ने उत्तर दिया—"इसका पता नहीं लगा सका। हो सकता है

किसी रिश्तेदारी में जा रहे हों या हो सकता है सैर-सपाटे के लिए हरिद्वार जाने का प्रोग्राम हो। पर आपको आम खाने से मतलब है कि पेड़ गिनने से।"

तेगबहादुर सिंह ने कहा—"हाँ, यह तो तुम ठीक कहते हो। अच्छा ऐसा करो, मैं तैयार होता हूँ, तुम तब तक त्रिवेणी को तैयार कर के फौरन आओ, बल्कि अच्छा हो तालाब के किनारे, कुएँ के जगत पर बैठे मिलो मुझे। और लाठी तो तुम लोग लेते ही आओगे।"

माधव बोला—"अच्छी बात है। मगर जल्दी पहुँच जाना। अब तो शायद वे लोग घर से निकल दिये होंगे।"

"अच्छा-अच्छा जाओ, तुम तो जल्दी करो।"

ठाकुर दिलदार सिंह, गौरी और शरत के साथ कार पर जा रहे थे कि एकाएक शरत ने कहा—"ठाकुर साहब आगे खतरा जान पड़ता है।" उसने कार को एकाएक खड़ा करते हुए बतलाया—"वह देखिए पकडिया के पेड़ के नीचे ऐ....ऐ...वो आदमी गिरा और ढेर हो गया।"

जिस स्थल पर यह लाठी चल रही थी, वह स्थान कार से कोई बीस गज की दूरी पर था। ठाकुर साहब ने बिना कुछ सूचना दिये घटना स्थल की ओर लगातार 'बैंग बैंग' शब्द करते हुए तीन फायर कर दिये।

इसका कारण था। उन्होंने देखा था कि एक स्त्री पर दो आदमी झपट रहे हैं। उसके साथ जो आदमी है, उसे उनमें से एक ने मार गिराया है और स्त्री चिल्ला रही है—"बचाओ, बचाओ!"

रिवालवर के तीन फायरों से हमलावर भयकातर होकर भाग खड़े हुए।

ठाकुर साहब घटना स्थल पर जा पहुँचे। उधर शरत और गौरी की गाड़ी भी वहाँ आ गई। दोनों गाड़ी से उतर पड़े। पन्ना की साड़ी कई जगह फट गई थी। भयाक्रान्त तो वह थी ही, फिर भी एकाएक उसके मुँह से निकल गया—"भैया तुम?"

उसका सिर घूम गया। वह एकाएक ऐसा कुछ सोच ही न सकी कि वह भाई के सिवा कोई और हो सकता है। ठाकुर साहब स्तम्भित हो उठे—तो पन्ना मरी नहीं, बल्कि भाग आई थी ! एकाएक कई प्रश्न उनके भीतर उमड़ रहे थे, किन्तु साथ के आदमी को क्षत-विक्षत अवस्था में धराशायी देख कर उन्होंने पूछा—"यह कौन है ?"

पन्ना बोली—"ये हमारे स्वामी हैं।" आंसू तो उसकी आँखों में भरे ही हुए थे, अतएव उसने कह दिया—"इनको किसी तरह से बचाओ भैया, चाहे जिस तरह हो।"

इतने में गौरी शरत के निकट हो धीरे से बोली—"यह तो वही लड़की जान पड़ती है, अखबार में जिसका फोटोग्राफ निकला था।"

शरत ने उत्तर दिया—"कौन पन्ना ?"

तब तक ठाकुर साहब ने भी कह दिया—"हाँ, पन्ना !" और साथ ही उन्होंने इतना और जोड़ दिया—"मैं सिर की तरफ हाथ लगाता हूँ। तुम कमर की तरफ हाथ लगाओ तो। इसी गाड़ी में ले चलेंगे। जल्दी से जल्दी फर्स्ट एड होनी चाहिए। भगवान करे किसी तरह बच जाय तो बहुत अच्छा हो।"

पन्ना रो पड़ी। शरत ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। गौरी ने पन्ना को समझाते हुए कहा—"रोओ मत दीदी ! भगवान को रक्षा न करनी होती तो ऐन वक्त पर हम लोग कैसे आ जाते।"

सबसे अधिक चोट मोहन बाबू के हाथ पर आयी थी। गाभा फट गया था और कलाई के पास का हिस्सा हड्डी से अलग होकर लटक आया था। सिर पर भी थोड़ी-बहुत चोट जरूर थी, लेकिन घाव अधिक गहरा न था।

कार जब चल खड़ी हुई तो दो ही मिनट के बाद मोहन बाबू के पलक खुलने और गिरने लगे।

गाड़ी में पीछे की सीट पर बायीं ओर पन्ना बैठी थी, जिसकी जंघा पर मोहन बाबू का सिर रखा था। मोहन बाबू का दाँया पैर कुछ-कुछ फैला हुआ था और बाँया आधा सिकुड़ा हुआ। वहीं पैताने ठाकुर साहब बैठे हुए थे। वे पन्ना को समझाते जाते थे, क्योंकि वह अब भी बीच-

बीच में सिसकियाँ भरने लगती थी—"अगर होनहार हम लोगों के पक्ष में न होती, तो ऐसी विपत्ति के अवसर पर एकाएक मैं कैसे आ जाता! इसलिए भगवान की कृपा पर भरोसा कर के जरा धीरज धरो।"

रुदन की सिसकियाँ भरती हुई पन्ना बोली—"भैया, तुम्हें मालूम है कि मैं कितनी अभागिन हूँ। बचपन में पहले बाबू नहीं रहे, फल यह हुआ कि सारी सम्पत्ति ताऊ जी ने हथिया ली। उसके बाद उन्होंने मेरे भाई को जहर देकर मार डाला। माँ ने जब देखा कि अब एक दिन यह लोग हम लोगों को भी समाप्त कर डालेंगे तब माँ को ताऊ का घर छोड़ देना पड़ा। वे दिन कैसे बीते, और मैं कहाँ से कहाँ जा पहुँची—यह मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ भैया! खैर, किसी तरह जब मैं उस नर्क कुण्ड से भाग निकली और मोहन बाबू ने मेरे साथ ब्याह कर के मुझे पत्नी बना लिया, तब हाय उनके साथ गाँव के ही लोगों ने यह व्यवहार किया! हाय, अब मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ?"

ठाकुर साहब को अपना जीवन याद हो आया, बोले—"जो कुछ भी हुआ, अब तुम उसको भूल जाओ पन्ना!" फिर एकाएक उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं और कहा—"तुम यही समझ लो कि अब से तुम्हें नया जन्म मिला है और मैं तुम्हारा सगा भाई हूँ। ऐसी दशा में तुमको किसी प्रकार दुःखी न होना चाहिए। मैंने बहुत सोच कर देखा है, बहुतेरी घटनाएँ अनहोनी होने पर भी अपने वश में नहीं होतीं। अस्पताल पहुँचने भर की देर है। मोहन बाबू की सेहत के लिए मैं कोई दक़ीक़ा बाकी नहीं रक्खूँगा।"

शरत पहले तो इस दुर्घटना से बहुत आतंकित हो उठा था, यहाँ तक कि इस परिस्थिति में वह अपना भविष्य सम्बन्धी नियोजन बिलकुल भूल बैठा। बार-बार उसके मस्तिष्क में विचारों की बिजली कौंधने लगती थी। रह-रह कर वह सोचने लगता था—हम चाहे जैसा प्रयत्न करें, लेकिन हमारा सोचा और स्थिर किया हुआ कार्य होते-होते रुक ही जाता है।

—हम सब कितने उत्साह के साथ कोई योजना बनाते हैं, कितनी आशा लेकर उस योजना को कार्य का रूप देने की चेष्टा में फूले नहीं

समाते, लेकिन परिणाम ? परिणाम का दशांश भी हमारे हाथ में नहीं रह जाता। नियति का यह व्यंग्य कितना कठोर है कि हम जा रहे थे लखनऊ कि अजल के मारे हमारे रास्ते में पड़ गये ठाकुर साहब।

फिर वह सोचने लगा—ऐसा जान पड़ता है कि हम सब नियति के हाथों के खिलौने हैं। हमारे रास्ते में पग-पग पर निषेध, वर्जनाएँ, विरोध, झंझट, व्याघात और व्यतिरेकों के पुञ्ज हैं। कुञ्ज वन में पहुँच कर भी हो सकता है हम दीवारों से टकरा जायें।

—मैं समझता था कि ठाकुर साहब रास्ते में मिल क्या गये, हमारे कार्यक्रम में एक जबर्दस्त अड़ंगा डाल दिया। यह कौन जान सकता था कि उनका आना पन्ना की रक्षा का मूल कारण बन जायगा। मैं सोचता तो यह था कि अगले कुछ ही घंटों में गौरी के साथ विधिवत् विवाह करके उसे सदा के लिए प्राप्त कर लूँगा, किन्तु ठीक उसी समय नियति दूसरा ही कार्यक्रम बना रही थी। परिणाम यह हुआ कि हमें उस समय इतना भी ध्यान नहीं रहा कि हम जा किधर रहे हैं। एक नियति ही तो है कि हम जहाँ से चलते हैं, घूम फिर कर लौट कर, वहीं आ जाते हैं। कहने को कहा जा सकता है कि हम ठाकुर साहब से कह सकते थे कि आपको जहाँ जाना हो जाइए। न मेरी गाड़ी में जगह है आपके लिए, न मेरे पास इतना टाइम है कि मैं आपको कहीं ले जा सकूँ।....

—लेकिन फिर सवाल उठता है कि मनुष्य इतना स्वार्थी और असभ्य कैसे बन सकता है ? और यह पन्ना ! यह भी तो अपने स्वामी के साथ कहीं जा रही होगी। इसी पर इन लोगों ने एकाएक हमला क्यों कर दिया ?...नहीं....नहीं ! जान पड़ता है कि कुछ भी हमारे हाथ में नहीं रह जाता, जब नियति और प्रकृति हमारे विरोध में हो जाती है।

एकाएक वह मुसकरा उठा।

—कोई इस मजाक को तो देखे कि हमारी सारी सोची और स्थिर की हुई योजना किस तरह चौपट हो गई। उस पर तुर्रा यह है कि उसको चौपट बनाने में भागीदार हम स्वयं बन गये। गाड़ी हमारी जा रही थी लखनऊ, उसका मुखड़ा भी था लखनऊ की ओर। अब यहाँ प्रश्न उठता

है कि फिर कानपुर की ओर एकाएक हम मुड़ कैसे गये ? लखनऊ में भी तो अस्पताल हैं। वहाँ भी तो हम इन लोगों को पहुँचा सकते थे। लेकिन उस समय भी यह कैसे सम्भव होता कि एक तरफ हम देखते आफत का मारा एक व्यक्ति मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहा है और दूसरी तरफ मैं अपने विवाह का मण्डप रचाने के लिए अपने दोस्त ज्ञानचन्द्र का दिमाग चाटना शुरू कर देता।

गौरी आज के इस एक घण्टे के घटनाक्रम पर एक विहंगम दृष्टि डालती हुई शरत की ओर देखने लगी। एक बार तो उसके मन में आया कि वह कह दे—"अब कहो, क्या इरादे हैं ?" किन्तु वह किंचित मुस-करा कर रह गई।

इतने में मोहन बाबू ने आँखें खोलीं और यह समझकर कि मेरा सिर किसी की कोमल गोद में है, धीरे से बोले—"पन्ना !" पन्ना ने आँसू पोंछ लिये। मोहन बाबू ने हर एक को देखा। फिर कराहते हुए पूछा—"यह आप मुझे कहाँ ले जा रहे हैं ?"

शरत ने उत्तर दिया—"कानपुर लाला लाजपतराय हास्पिटल।"

अब गाड़ी गंगा के पुल पर प्रवेश कर चुकी थी।

मोहन बाबू बोले—"ओह···ठाकुर साहब आप······? अच्छा तो आप ही ने बचाया है हम दोनों को ?" तब एक निःश्वास के साथ वे फिर बोले—"प्रभू अपरम्पार है तुम्हारी लीला !"

थोड़ी देर रुके और ठाकुर साहब की ओर उन्मुख होकर उन्होंने कहा—"ठाकुर साहब, हमारी कोई प्लानिंग आपसे तो छिप नहीं सकती, फिर भी आप मुझे उसी ओर लिये जा रहे हैं, जहाँ ···।" और इसके आगे वे कुछ कह न सके; गौरी और शरत को आगे बैठा हुआ पाकर आगे कुछ कहने का साहस ही उन्हें न हुआ।

ठाकुर साहब बोले—"अच्छा-अच्छा, ठीक है। तो शरत् बेटे ! अब तुम हम लोगों को हास्पिटल न ले जाकर अपने ही बंगले पर ले चलो।"

ठाकुर साहब की बात सुनकर शरत सोचने लगा—जैसे प्रहलाद को पहाड़ की चोटी पर ले जाकर सैकड़ों गज नीचे खड्ड में धक्का देकर गिरा दिया गया था, हमको भी उसी प्रकार उद्देश्य-सिद्धि से धक्का देकर

एकदम नीचे गिराया जा रहा है। और तारीफ की बात यह है कि इस परिस्थिति के लिए जो निमन्त्रण मिल रहा है उसकी पूर्व-पीठिका में हमारा अपना भी हाथ है !

अब गाड़ी रेल बाजार पहुँच रही थी।

अब रात के साढ़े आठ बजे थे। बंगले में सन्नाटा था। गज्जू, सोने माली और ड्राइवर तीनों द्वारमंच में बैठे थे। ड्राइवर गज्जू से कह रहा था—"देखो भैया गज्जू, मेरे सामने की बात है, छोटे साहब ने गौरी का हाथ पकड़कर गाड़ी में बिठा लिया, इसमें मेरा क्या कसूर है ? फिर उन्होंने मुझसे गाड़ी की चाभी ली। खुद बैठे और सैर करने के लिए चल दिये। मुझसे कहा कि मैं अभी आता हूँ। इसमें मेरा क्या कसूर है ? साहब मुझ पर नाहक बिगड़ रहे हैं। है अन्धेर की बात कि नहीं ? उन्होंने चाभी माँगी तो क्या मैं मना कर देता ? मैं नौकर आदमी ठहरा, इनकार कैसे करता ?"

गज्जू बोला—"बड़े आदमियों की बात ठहरी। रोज साथ-साथ घूमते थे, तब नहीं सुझाई पड़ा।"

इतने में सोने माली बोला—"मोर बिटिया होत तौ बोटी बोटी काट कै गंगा में बहाय देत्यौं।"

ड्राइवर ने डाँटते हुए उत्तर दिया—"अरे चुप !"

सोने ने फिर कह दिया—"ई को जानैं कहाँ गये औ काहे बरे गये। इन लोगन मा का कुछ बाकी रह जात है। अब और ज्यादा तुमका का बताई। बाकी सब समझ लेव !"

गाड़ी बँगले के भीतर घुस रही थी। शरत ने द्वारमंच में गाड़ी रोकी और तीनों की ओर संकेत करते हुए कह दिया—"भीतर मेरे कमरे में ले जाओ सम्हालकर।"

कथन के साथ शरत झपट कर फोन के डायल पर उँगलियाँ घुमाने लगा। तत्काल रिसीवर कान से लगा कर बोला—"हाँ डाक्टर साहब,

मैं शरत बोल रहा हूँ। हाँ, एक एक्सीडेंट हो गया है…जिसमें सिर में घाव है और बाँह में फ्रैक्चर। आप पूरी तैयारी के साथ यहीं आ जाइए। …वहाँ?…नहीं-नहीं। इलाज यहीं होगा।"

नमिता और हेमन्त ने जो अपने यहाँ फोन पर शरत का स्वर सुना तो दोनों तत्काल बाहर आ गये।

गज्जू, सोने और ड्राइवर तीनों मोहन बाबू को उतार कर भीतर ले जाने लगे। हेमन्त बाबू ने ठाकुर दिलदार सिंह को जो देखा, तो सहसा उनके मुँह से निकल गया—"ठाकुर साहब, आप! कहाँ…कैसे?"

ठाकुर साहब ने पन्ना की ओर संकेत करके कहा—"यह मेरी बहिन पन्ना है और आप हैं उसके हस्बेण्ड श्री मोहनलाल शर्मा।"

गौरी पन्ना के साथ गाड़ी से उतर रही थी।

सब लोग अन्दर चले गये तो हेमन्त बाबू चारपाई पर आगे बढ़कर खुद गद्दा बिछा ही रहे थे कि शरत आ पहुँचा और दूसरी ओर से गद्दा पकड़कर बिछाने में मदद करने लगा।

अब मोहन बाबू को पलंग पर लिटा दिया गया। आवश्यकता देखकर ठाकुर साहब ने हेमन्त बाबू से पूछा—"थोड़ी सी ब्राण्डी अगर हो…!"

नमिता बोली—"मैं अभी ले आती हूँ।"

पन्ना के आँसू नहीं रुक रहे थे। गौरी उसको सम्हाले हुए थी।

नमिता एक शीशे के गिलास में ब्राण्डी ले आई। ठाकुर साहब ने वाश-बेसिन की टोंटी से जरा-सा पानी उसमें मिलाया और मोहन बाबू का मुँह खोलकर गले में डालना शुरू कर दिया।

अब हेमन्त बाबू ने शरत की ओर उन्मुख होकर पूछा—"यह ऐंक्सीडेण्ट तुमसे हुआ? पुलिस में रिपोर्ट कर दी कि नहीं?"

शरत जब तक जवाब दे, तब तक ठाकुर साहब बोल उठे—"जज साहब, घटना तो ऐसी है कि आप सुनेंगे तो चक्कर में पड़ जायेंगे। शरत और गौरी जा रहे थे लखनऊ, अपनी गाड़ी से और मैं आ रहा था बस से। गंगापुल पर मैं बस से उतरकर गाड़ी में चला आया। गाड़ी आगे बढ़ी ही थी कि बीच सड़क पर क्या देखता हूँ कि आगे फौजदारी

हो रही है, जिसमें एक स्त्री चीत्कार कर रही है। मैंने आव देखा न ताव, रिवाल्वर निकाल कर तीन फायर कर दिये। फिर निकट जाकर देखा तो वहाँ मिली ये पन्ना।"

हेमन्त बाबू ने शरत की ओर भवें तरेर कर देखा। लेकिन इसके पहले कि वे कुछ बोलते, डाक्टर साहनी आ गये और सबसे पहले उन्होंने स्टेथ्सकोप से मोहन बाबू की परीक्षा की, नब्ज देखी, आँखों की पलकें खोल-खोल कर देखीं। उसके बाद एक इन्जेक्शन दिया।

हेमन्त बाबू उस कमरे में आर्म-चेयर पर बैठे कभी नमिता को देखते थे, कभी शरत को, कभी गौरी को, कभी अपने आप को। कभी तो वे आर्म-चेयर से उठकर खड़े हो जाते, कभी खिड़की से बाहर की ओर देखने लगते और कभी एकाएक हटकर उत्तर से दक्षिण की ओर चल देते। कभी उनका हाथ सिर पर चला जाता और कभी आर्म-चेयर के पीछे खड़े होकर चेयर की पीठ पर आ जाता। उनकी मुखाकृति बहुत गम्भीर थी।

गज्जू सामने पड़ गया तो उससे बोले—"एक गिलास पानी।"

वे अभी पानी पी ही रहे थे कि डाक्टर साहनी बोले—"घबराने की कोई बात नहीं है। सिर में चोट जरूर आई है, मगर कोई खतरा नहीं है। होश तो 'विदिन टेन मिनिट्स' आया जाता है। इन्जेक्शन मैंने दे ही दिया है। हड्डी बैठाने और प्लास्टर चढ़ाने का काम हास्पिटल में आसानी से होता।"

ठाकुर साहब बोल उठे—"डाक्टर साहब, हास्पिटल तो यह जायँगे नहीं। इलाज की सारी व्यवस्था आपको यहीं करनी पड़ेगी।"

डाक्टर साहब ने शरत की ओर देखते हुए कह दिया—"तो फिर डाक्टर वाजपेयी और डाक्टर निगम को टेलीफोन करके बुला लो।"

थोड़ी देर में जब सब डाक्टर लोग विदा हो गये और मोहन बाबू

भी सचेत होकर मन्द स्वर में पन्ना की बातों का जवाब देने लगे, तब नमिता बोली—"आप लोग खाना तो खा लीजिए।"

शरत तब तक पिता के पास जाकर धीरे से बोला—"बाबू, मुझे आपसे कुछ कहना है।"

हेमन्त बाबू अब तक चुप थे और अपने मन के अन्दर ही अन्दर अपने आप से युद्ध कर रहे थे। एक क्षण के अन्दर उनका हाथ शरत की कनपटी पर जा पड़ा और तत्काल उनके मुँह से निकल गया—"बदतमीज !"

इसके बाद वे एक क्षण रुके और गौरी की तरफ बढ़ गये। उसका हाथ पकड़ा और बाहर निकालते हुए बोले—"घर चल मेरे साथ।"

बाहरी बरामदे में नमिता, शरत, मोहन बाबू, पन्ना और ठाकुर साहब स्तब्ध मौन खड़े रह गये। किसी से कुछ कहते न बना। वे केवल एक दूसरे की ओर देखते रहे। शरत की आँखों में आँसू आ गये। नमिता ने उसके सिर पर हाथ रख कर उसे कण्ठ से लगा लिया।

जिस समय हेमन्त बाबू गौरी के साथ वासुदेव बाबू के घर पहुँचे, वासुदेव बाबू चारपाई पर बैठे थे। कावेरी, सुरेश और रमेश तत्काल खड़े हो गये। सबके मुख उतरे हुए थे। गौरी को हेमन्त बाबू के साथ देखकर कावेरी को कुछ सान्त्वना अवश्य मिली, मगर वह यह न जान सकी कि हुवा क्या ?

तभी थोड़ी सी मुसकराहट लिये हेमन्त बाबू बोले—"आज मैं गौरी को आपसे माँगने के लिए आया हूँ वासू बाबू !"

उनकी इस बात को सुनकर वासुदेव बाबू, कावेरी, सुरेश, रमेश और गौरी सबके सब चकित विस्मित अवाक् रहकर हेमन्त बाबू के मुख की ओर ताकते रह गये।

गौरी ने तत्काल हेमन्त बाबू के पैरों पर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया।

कावेरी हर्ष से गद्‌गद् होकर हाथ जोड़ती हुई बोली—"आपने तो मुझे जिला लिया।"

इतने में सिर झुकाते हुए वासुदेव बाबू हाथ जोड़कर हेमन्त बाबू के चरणों की ओर बढ़े ही थे कि उन्होंने उन्हें दोनों भुजाओं में भरकर कण्ठ

से लगा लिया। सजल नयन वासुदेव बाबू ने कहा—"हम आपसे कभी उऋण नहीं हो सकते।"

सुरेश सोचने लगा कि यह व्यक्ति जल्दी तो समझ में आ ही नहीं सकता। और देर लग जाने पर भी इसके सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक शब्द और वाक्य से इसका अर्थ और अभिप्राय क्या है। तभी उसका मन कुछ-कुछ गीला हो उठा और उसमें एक प्रकार के माधुर्य की स्निग्धता भासित हो उठी।

गौरी सोचने लगी—हम बच्चों के प्रति इतनी ममता कि उनकी कोई भी इच्छा अपूर्ण न रहे, ऐसा प्यार तो परम पिता में ही होता है। आज चाचा जी की वाणी में वैसा ही कुछ फूटता जान पड़ता है।

कावेरी के मन में आया कि इनके विचार में न्याय भी विश्व के माया, मोह, मित्रता और आत्मीयता का ही रूपान्तर है। जो कुछ भी हो, किन्तु मेरा इससे बढ़कर उपकार इस धरा-धाम पर और कहीं सम्भव नहीं है।

और रमेश ने अनुभव किया कि यह सब मेरे लिए तो बिलकुल ही अकल्पित है। बिलकुल उस तरह, जैसे कोई द्वार पर पहुँचकर पुकार की घंटी पर तर्जनी रखने की इच्छा करे कि उससे पूर्व ही द्वार खुल जाय।

हेमन्त बाबू को शिष्टाचार और आडम्बर से सदा विरक्ति रहती थी। किन्तु वे जानते थे कि आज की दुनिया में सभ्यता के नाते हम शिष्टाचार को किसी प्रकार त्याग नहीं सकते, क्योंकि हार्दिक उल्लास और आनन्दविह्वलता के दुर्लभ क्षणों में जो उद्गार प्रकट होते हैं, वे मूल-रूप में शिष्टाचार ही के होते हैं। अतएव वे बोले—"वासू बाबू, हम इस वक्त बहुत जल्दी में हैं। बहुतेरी भावनाएँ जो इस समय मेरे मन में उठ रही हैं, शायद उन्हें प्रकट भी नहीं कर सकूँ। उनकी चर्चा तो तभी सम्भव होगी, जब कभी निश्चिन्त होकर बैठेंगे।"

"लेकिन इस परम पावन मंगल घड़ी में," वासुदेव बाबू बोले—"प्रारम्भिक और अनिवार्य श्रद्धा-भेंट तो आपको स्वीकार करनी ही पड़ेगी। कृपा करके बैठ जाइए, दो मिनट, सिर्फ दो मिनट।" और कथन के बाद वे भीतर जाने लगे।

कावेरी, सुरेश और रमेश सबके सब उनके पीछे हो लिये।

कावेरी बोली—"गौरी के बाबू, मेरे पास तो सिर्फ बीस आने पैसे बचे हैं।"

और सुरेश ने कह दिया—"बड़ी अम्मा ने चलते समय मुझको यह पाँच रुपये अलग से दिये थे।"

वासुदेव बाबू के मुख पर उल्लास झलक उठा और वे बोले—"सारा खेल उसी का रचा हुआ है। जो कुछ हुआ और होता दिखाई दे रहा है, उसमें मुझे तो उसी की ममता की एक सुनहली किरण फूटती जान पड़ती है। लाओ सुरेश, पाँच रुपये दे दो और तुम अपने बीस आने अपने पास रखो।"

इस प्रकार पाँच रुपये के नोट को लेकर वे बैठक में आ पहुँचे और बोले—"जज साहब, मेरे पास श्रद्धा-भेंट के अलावा कुछ नहीं है। अन्तः-करण ही जानता है, आपकी इस कृपा के आगे सदा ऋणी रहूँगा।"

पाँच रुपये के उस नोट को उन्होंने हेमन्त बाबू के चरणों पर रख दिया।

नोट हाथ में लेकर हेमन्त बाबू मुसकराते हुए बोले—"तो वासू भाई, अब यह सब कायदे से आप मेरे घर पर आकर कीजिए। कुछ भी हो, मैं आखिर लड़के वाला हूँ साहब! आप जो कुछ भी देंगे उसको भेंट करने में आपको संकोच भले ही हो, लेकिन हमारे इष्ट-मित्र और स्नेही वृन्द में तो वह गौरव की ही वृद्धि करेगा। अच्छा, बस अब हम जाते हैं।" फिर वह तुरन्त उठ खड़े हुए और चलते-चलते कहने लगे—"आज एक बहुत बड़ी समस्या का समाधान होते देखकर मैं भी अपनी खुशी सम्हाल नहीं पा रहा हूँ।"

वासुदेव बाबू और कावेरी दोनों हाथ जोड़कर उनके पीछे हो गये और सुरेश ने बाहर आकर प्रणाम किया।

: २४ :

हेमन्त बाबू अपने बँगले पहुँचकर फोन पर जा बैठे।

नमिता और शरत ने जो उनको गम्भीर मुद्रा में आते देखा तो पहले वे दोनों कुछ सकपका उठे; परन्तु फिर ज्योंही उन्होंने डायल घुमाने के बाद रिसीवर को कान में लगाकर यह कहते हुए सुना कि "मैं हेमन्त बोल रहा हूँ मुकुट बाबू! बहुतेरे कार्य-कलाप जल्दबाजी में अपना सौन्दर्य नष्ट कर देते हैं। मुझे तो कुछ मालूम न था, बल्कि जो मालूम था, गलत साबित हो गया। परिणाम यह हुआ कि अब भूल-सुधार के लिए मुझे उद्यत होना पड़ा। आप ऐसा कुछ न समझियेगा कि टाल रहा हूँ। विश्वास रखिए, चौबीस घण्टे के अन्दर कोई न कोई मार्ग निकालकर मैं आपकी गुत्थी सुलझा दूँगा। हाँ···हाँ, मुझे शक तो पहले ही से था, लेकिन अब निश्चय हो गया। माधुरी के साथ शरत की आत्मीयता की वह गहराई सम्भव भी न थी और इसके विपरीत यह दोनों अपनी मत-विभिन्नता ही नहीं, लड़ाई-भिड़ाई का भी एक प्रकार से अभिनय किया करते थे, जिसमें हम लोगों के सामने उनकी बोलचाल, मिलना-जुलना उत्तरोत्तर आगे बढ़ता जाय। अपनी इस योजना में वे सफल भी हो गये।····हाँ, अरे साहब एक साथ भाग जाने पर अगर एक दुर्घटना उनके सामने न हो जाती तो ये लोग लौटकर थोड़े ही आते। हाँ-हाँ, आप चिन्ता न कीजिए। मैंने जो वचन दिया है चौबीस घण्टे के अन्दर मैं उसको चरितार्थ कर इस समस्या को हल कर दूँगा।····अरे साहब निमन्त्रण-पत्र में नाम बदल दीजियेगा। हाँ-हाँ, और यह बात हमारे आपके बीच ही रहेगी।"

हेमन्त बाबू फोन पर जब ये बातें कर रहे थे, नमिता और शरत दोनों पहले उस कमरे के दरवाजे पर ठिठक गये। फिर नमिता आगे बढ़ कर जज साहब के पीछे आकर खड़ी हो गई। फिर ज्योंही हेमन्त बाबू ने फोन को क्रेडिल पर रख दिया, त्योंही नमिता बोली—"तुम्हारी ये सब बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं। आखिर तुम्हारा इरादा क्या है?"

हेमन्त बाबू चलते-चलते दरवाजे की ओर बढ़ते हुए बोले—"तुम्हारी अब मैं एक भी न सुनूँगा।"

नमिता कुछ हँसती हुई बोली—'कोई नयी बात नहीं कह रहे हो। सदा ऐसा हुआ है कि पहले तुमने मेरी बात का विरोध किया है, लेकिन फिर अन्त में मान्यता उसी बात को दी है। मुझे इतना तो कम से कम बतला ही दो कि वासुदेव बाबू से क्या बातचीत हुई ?"

"अरे वासू बाबू की क्या बात हैं। वे लोग बड़े भले आदमी हैं। उनको कोई शिकायत नहीं हुई।"

कथन के साथ हेमन्त बाबू अपनी बैठक में चले आये। और नमिता ने समझ लिया कि बात, जान पड़ता है, दोनों के अचानक भागने के सम्बन्ध में हुई है। इतने में गज्जू आ गया और नमिता ने कहा—"खाना लगाओ और साहब को बुलाओ। मेरा तो सर दर्द करने लगा।"

शरत कमरे से लौट कर जो आया, तो इस विचार में पड़ गया कि जब घर के लोग ही नहीं, प्रकृति ही पथ में व्याघात डालकर हमारा विरोध करने लगे, तब हमको करना क्या चाहिए ? ऐसी दशा में मनुष्य का धर्म क्या हो जाता है ?

यद्यपि तत्काल उसके मन में आया कि चाहे समाज हो और चाहे प्रकृति, मनुष्य को अपनी तात्कालिक प्रेरणा से काम लिये बिना चूकना नहीं चाहिए। गति का हर एक चरण उसकी परीक्षा का ही एक क्षण होता है।

इस अवसर पर भी वह स्पष्ट रूप से यह न समझ पाया कि डैडी के इस कथन का क्या अभिप्राय है कि "आप यह न समझियेगा कि टाल रहा हूँ। विश्वास रखिए, मैं कोई न कोई मार्ग निकालकर आप की गुत्थी सुलझा दूँगा।" उसको तो यही सुझाई दे रहा था कि गौरी को लेकर मैं जो भाग खड़ा हुआ था, उसी पर मुकुट बाबू ने कोई आपत्ति खड़ी कर दी है।

इतने में गज्जू ने आकर कहा—"छोटे सरकार, खाना खा लो। माँजी बुला रही हैं।"

शरत ने गौरी के घर की तरफ प्रस्थान करते हुए उत्तर दिया—"मैं अभी आया।"

उसने घड़ी देखी और सोचा—अभी गाड़ी मिल सकती है।

वह तुरन्त वासुदेव बाबू के पास जा पहुँचा।

गौरी अपने कमरे में बैठी हुई पैरों में मेंहदी लगा रही थी। एक छोटा मोटा ट्रांजिस्टर, जो सुरेश दिल्ली से ले आया था, उसकी छोटी टेबुल पर रखा पंचरंगी प्रोग्राम प्रसारित कर रहा था।

एकाएक कावेरी सामने पड़ गयी, किन्तु उससे भी कुछ पूछने या कहने का साहस उसे न हुआ। गौरी डिब्बे में रक्खी हुई मिठाइयों को प्लेट में उल्लास के साथ सजाने बैठ गई। शरत वासुदेव बाबू के पास आकर कुछ संकोच दिखलाता हुआ बोला—"चाचा जी, आपने मुझको कुछ गलत तो नहीं समझा ? इतना कहकर उसने अपना सिर कुछ झुका लिया।" उसके पश्चात् वह बोला—"जब मैंने देखा कि आज का समाज नयी पीढ़ी की मनोकामनाओं को पूरा करना तो दूर रहा, उसकी भावनाओं तक का स्वागत नहीं कर सकता···" यहीं उसने अपना सिर पुनः उठा लिया। अब वह कह रहा था—"तभी मैंने ऐसा गम्भीर कदम उठा लिया। लेकिन यह मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा अभिप्राय किसी अवैध कल्पना की ओर कदापि उन्मुख नहीं था। असल में मैं गौरी से वैधानिक रूप से ही विवाह करने की योजना बना चुका था।"

वासुदेव बाबू ने उल्लास विलसित भंगिमा से उत्तर दिया—"तब तो बेटा, तुमको अपने डैडी से ही बात करनी चाहिए थी। भावना में पड़कर बिना अन्त तक सोचे एकाएक ऐसा कदम उठा लेना कभी निरापद नहीं होता। अपने सारे वातावरण में एक सनसनी, अशान्ति और कभी-कभी क्षोभ तो उत्पन्न हो ही जाता है; ऐसे अवसरों पर कभी-कभी पढ़े-लिखे और बुद्धिमान लोग भी संकट में पड़ जाते हैं।"

"तो चाचा जी, अब आपकी क्या आज्ञा है ?"

शरत अब भी संशयग्रस्त ही बना हुआ था। वह यह कल्पना भी न कर सकता था कि डैडी से सारी बातें निश्चित हो चुकी हैं।

इस समय तश्तरी में जलपान की सामग्री लिये हुए कावेरी आ पहुँची

और बोली—"खुशी के अवसर पर मुँह मीठा तो करना ही पड़ता है। विवाह तय हो जाने के बाद आये हो। बिना मुँह मीठा कराये मैं तुम्हें जाने न दूंगी।"

कावेरी के इस कथन में सास का नवल-विमल प्यार तो था ही, उस माँ की ममता भी थी, जो सास बन जाने पर माँ का सा हृदय सहज प्राप्त कर लेती है। लड़की देकर उसे लड़का मिल जाता है।

शरत मिठाइयों की ओर वक्र दृष्टि से देखता हुआ, बिना कोई उत्तर दिये बोला—"गौरी कहाँ है ?"

तश्तरी तो कावेरी ने अल्मारी में रख दी। स्नेहोल्लास में डूबी हुई पहले क्षण भर उसे देखती रह गई, फिर बोली—"बेटा, अब एक हफ्ते भर तुम गौरी से नहीं मिल सकोगे। जब तुम्हारा विवाह तय हो गया है तब तुमको आतुरता से भरा यह बचपना छोड़कर अपने तथा अपने घर और खानदान की मर्यादा का कुछ तो ध्यान रखना चाहिए।"

शरत समझ रहा था कि ठीक तो है। इनका अभिप्राय यह है कि जब मेरा विवाह माधुरी से तै हुआ है तब गौरी से मिलने-जुलने में इतनी तत्परता और आतुरता दिखलाने का कोई और अर्थ भी तो लगाया जा सकता है। पर अपनी स्थिति की विवशता से आश्चर्यचकित होकर उसने पूछा—"यानी अब मैं गौरी से····" उसका अभिप्राय था कि—'क्या मिल भी न सकूंगा ?'

अभी वह अपने मन में कुछ स्थिर भी न कर पाया था कि इतने में वासुदेव बाबू बोले—"बेटा, जीवन का यह पुनीत प्रसंग बड़े महत्व का होता है। अब भी अगर तुम अपना यह बचपना नहीं छोड़ोगे तो घर-बाहर के लोग क्या समझेंगे ? क्या कहेंगे वे सब अपने मन में ?"

आकस्मिक आघात से दग्ध हो-होकर वह अपने आपको सब तरह से अस्त-व्यस्त पा रहा था।

तब बिना कुछ कहे वह लौटने लगा तो कावेरी बोली—"बेटा, कम से कम जलपान तो करते जाओ।"

आवेश में आकर शरत ने उत्तर दिया—"कैसा जलपान आण्टी ? मैं इस घर, समाज और दुनिया से नफरत करता हूं।" और कथन के

साथ उत्तर का अवसर दिये बिना झट से वह अपने बंगले में चला आया और बाउण्ड्री में केले के पास खड़े होकर अपने होठों को सिकोड़कर धीरे-से सीटी बजाने लगा।

कावेरी समझ न सकी कि शरत इस तरह उखड़ा क्यों दिखाई दे रहा है ? क्या गौरी के साथ इसकी कोई और कहा-सुनी हो गयी है ? या अब भी वह माधुरी से ही विवाह करने की कामना रखता है ?

इतने में गौरी बहुत धीरे-धीरे पैर रखती हुई वहाँ जो आ पहुँची तो शरत के सामने पड़ते ही बोली—"हफ्ते भर बाद तो शादी हो ही रही है, और आपको थोड़ा भी धीरज नहीं है ! क्यों मुझको बदनाम करने पर तुले हो ?"

गौरी की यह बात सुनकर शरत की भावना को ऐसा झटका लगा कि वह और कोई उत्तर दिये बिना खड़ा रह गया। उसके मन में झंझा-वात के बवण्डर उठ रहे थे। वह एकाएक सोचने लगा—यही जीवन की निपट नग्नता है। हम आत्मीयता के नाते चाहे जितना त्याग करने के लिए तत्पर हो जायँ, लेकिन अपने सगे से सगे और अविच्छिन्न आत्मीयजन भी अपना तात्कालिक स्वार्थ-साधन किये बिना नहीं चूकते। गौरी को इस विवाह से कोई दुःख नहीं हुआ ! समझ में नहीं आता कि किस पर विश्वास किया जाय और किसको अविश्वास की दृष्टि से देखा जाय ? जिसको इस अवसर पर मृतप्रायः हो जाना चाहिए था, वह हाथों में मेंहदी रचाये बैठी है ! क्या यह विश्वास भी एक प्रकार की प्रवंचना है जिसका अन्त धोखे से होता है ?—जबकि हम अभी तक यही मानते आये हैं कि विश्वास जानता ही नहीं कि निराशा क्या होती है ! कुछ नहीं है जी ! इस जीवन में कुछ नहीं है ! इससे तो मरण फिर भी भला है !

एकाएक उसे ऐसा जान पड़ा कि वह खड़े-खड़े कहीं गिर न पड़े।

फिर उसे ध्यान आया कि अगर विश्वास का कोई व्यापक अर्थ है, हमेशा स्थिर रखने वाला उसका कोई एक अटल और अविचल मूल्य है, तो उसे अनन्तकाल तक टिकना चाहिए।

किन्तु तभी एक ऐसा झोंका वेग के साथ आ पहुँचा कि अन्तरिक्ष से फूटती हुई आवाज सायँ-सायँ करती हुई उसके कानों से टकराने लगी।

—अगर किसी आत्मीय व्यक्ति का विश्वास उठ जाय तो यह समझ लो कि तुम्हारे लिए संसार में कहीं कुछ नहीं है। यह जगत मिथ्या है। वह प्रेम भी मिथ्या है, जो जीवन को अमर बना देने के लिए विख्यात है; जो सर्वविजयी और सर्वग्रासी है।—उसे हँसी आ गयी—कहा जाता है कि उसकी व्याकुलता भी आनन्दवर्धनी होती है! किन्तु यह मेरा कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि जिसके दर्शन, स्पर्शन और कथन से मेरा हृदय, मन, प्राण एकाएक द्रवित और समर्पित हो उठता था, वही मेरे प्यार का इतना अपमान करने को तत्पर हो उठी है। माधुरी के साथ मेरे ब्याह होने के निश्चय पर वह प्रसन्न दिखलाई पड़ रही है! धिक्कार है ऐसी आत्मीयता को, धिक्कार है इस प्रकार के जीवन की स्वीकृति को भी! धिक्कार है ऐसी संस्कृति को, जिसमें इतने छल, प्रपंच और विश्वासघात तक के लिए इतनी छूट है!

इस प्रकार की विभिन्न भावनाओं से टकराता हुआ शरत जब कुछ स्थिर न कर सका कि उसे करना क्या चाहिए, तब सहसा उसने अपना माथा पकड़ लिया।—पंडित जी कहा करते हैं कि ब्रह्म सदा एक सा रहा करता है। वह किसी भी नियम में बँधा हुआ नहीं है, वह ज्योतिस्वरूप है, चिन्मय है, वह कृति है, कृतित्व है और अपनी पूर्णता की संज्ञा में कृत-कृत्य भी है। वह इतना व्यापक है कि उससे परे संसार में किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है।

फिर एक झंझावात उसके कानों से टकराने लगा—मैं अभी तक अपने जीवन की आदिम समस्याओं से ही खेलता रहा। देश और समाज की बलिवेदी का आह्वान मैंने कभी सुना ही नहीं, जबकि स्वतन्त्र राष्ट्र की विकल थरथराती हुई कम्पित वाणी मुझे पुकार रही है। वह क्रन्दन मैं अपने इन्हीं कानों से सुन रहा हूँ, जो माताओं, बहिनों और उन विधवाओं के चीत्कार से फूट रहा है, जिनके प्यारे बच्चे, भाई और स्वामी आये दिन काश्मीर फ्रण्ट पर वीर-गति प्राप्त होते रहते हैं।

—जब देश संकट में हो, तब हमारी—हमारे जैसे सहस्रों युवकों की—मनोदशा इस प्रकार की हो कि प्रेम के पचड़ों में पड़कर अपने देश की गौरव-रक्षा की ओर ध्यान ही न दे सकें!…कैसा प्यार और कैसा

विवाह ! राष्ट्र की इस अनिवार्य आवश्यकता के आगे यह सब मुझे अत्यन्त क्षुद्र और घृणित मालूम पड़ते हैं। जो व्यक्ति राष्ट्रीय आह्वान के समय व्यक्तिगत घरेलू झंझटों और पचड़ों में लीन और विलय ही बना रहता है, उसको मैं राष्ट्रीय जागृति के नाम पर विश्वासघातक की संज्ञा देता हूँ।

और उसने ऐसा कुछ अनुभव किया जैसे वास्तव में वह देश के साथ विश्वासघात कर रहा है।

एकाएक दो मिनट तक खड़ा-खड़ा वह यही सब सोचता रहा।

इतने में उसके एन० सी० सी० के कई साथियों का वृन्द फाटक के भीतर आ पहुँचा। आगे-आगे जीवनशंकर। सामने पड़ते ही वह बोल उठा—'मैंने सुना है कि तुम शादी करने जा रहे हो ?"

गौरी छाल दीवारी के उस पार खड़ी थी। वह अब उसकी ओट में हो गयी।

विश्वनाथ मिश्र ने कह दिया—"राष्ट्रीय संकट की इस बलिदानमयी बेला में जल्दी से जल्दी विवाह करके सुहागरात मनाने के लिए चटपट भाग जाने से बढ़ कर, जीवन का सुख और अन्य हो क्या सकता है ? क्या बात है तुम्हारी शरत बाबू !" और हाथ बढ़ाते हुए उसने कहा—"मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएँ और बधाइयाँ ! हम लोग तो शादी में तुम्हारे साथ बैठकर जश्न मनाने के लिए रह नहीं पायेंगे।"

और त्रिवेणी ने तत्काल शरत के कन्धे पर हाथ रखकर कह दिया—"कुछ भी हो, तुमने काम बहुत वीरता का किया। खूब हाथ मारा। कालेज भर की जो क्रीम थी, एक ही झटके में तुमने उसे फटकार लिया।"

मलयज ने फाइव-फाइव-फाइव सिगरेट का टिन उसके सामने पेश करते हुए कहा—"लो, सिगरेट पिओ। हम तो पहले से जानते थे कि तुम्हारा लक्ष्य कोई बहुत बड़ा होगा। हम सब लोग टापते रह गये और तुमने करके दिखा दिया। मगर इससे एक बात की सम्भावना अवश्य पैदा हो गई कि गौरी का मार्ग प्रशस्त हो गया।"

शरत उसकी इस बात पर बिलकुल जड़ बन गया। उसके पैर के

चप्पल के पास एक ईंटखुर्रा पड़ा हुआ था। ठोकर मारकर उसने उसे दूर फेंक दिया जो पूर्व की छाल दीवारी से जा लगा।

कला निवास बोला—"हम तो सिर्फ यह सूचना देने के लिए आये हैं कि खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।"

और विश्वनाथ मिश्र ने कह दिया—"तो भई हम सब लोग तो कल सुबह सेना में भरती होने जा रहे हैं। अब तो जल्दी भेट होगी नहीं। पर···अरे तुम तो उदास हो गये शरत! बिछुड़ने से पहले जरा मुसकाओ यार एक बार।"

शरत से कोई जवाब देते न बना, वह कुछ सोचकर रह गया। ऐसे समय में एक बार गौरी से बात हो जाती तो और कुछ न भी होता, कोई दुविधा तो मन में न रह जाती।

चलते समय विश्वनाथ मिश्र ने शरत को सीने से लगा लिया। फिर एक-एक करके शरत सब लोगों से गले मिलता रहा। प्रत्येक बार उसे विश्वनाथ के इस कथन ने अभिभूत कर डाला—"बिछुड़ने से पहले एक बार मुसकाओ यार!"

फिर एक-एक करके सभी लोग जब उसके बँगले के फाटक की ओर बढ़ने लगे, तो वह भी उनके साथ चला आया। सभी लोग चले गये। शरत वहीं खड़ा-खड़ा सोचता रहा—देश की सेवा में अपना शरीर लगाने, सुखाने, झुलसाने और फिर केवल अपने मनोबल के आधार पर उसे पनपाने का कोई काम उसने अब तक नहीं किया था। उसे ऐसा जान पड़ा कि देश के गौरव के यज्ञ में सम्मिलित हुए बिना, सिर पर एक बड़े घर में उत्पन्न होने का भारी दम्भ लादे एक दिन मैं यों ही मर जाऊँगा। मेरी आशाएँ और महत्वाकांक्षाएँ, ये शत-शत माधुरी और सहस्र-सहस्र गौरी जैसी सुन्दर से सुन्दर मधुमती, विलास-वल्लरियाँ उस दिन एक क्षण के लिए मेरी झुलसती हुई कामनाओं को कोई सान्त्वना न दे पायेंगी। जीवन के तत्व के पावन अनुसन्धान में कोई आहुति दिये बिना एक दिन मैं एड़ियाँ रगड़ता-रगड़ता जीर्ण-जर्जर हो-होकर पशुओं की भाँति सड़ जाऊँगा, मर जाऊँगा। इसी दिन के लिए मैं पैदा हुआ था? देश का गौरव जिसके जीवन का परम और चरम सत्य हो, उसकी आत्मा की

शान्ति क्या उस प्रेम से हो सकती है जो केवल दैहिक है? जबकि मैं देश-प्रेम को इस पार्थिव प्रेम के आगे सहस्रों गुना अधिक उच्च मानता हूँ!

साथी लोग जा रहे थे और शरत के मन में उठा हुआ बवण्डर शान्त नहीं हो रहा था। तत्काल उसका ध्यान गौरी की ओर जा पड़ा। एक क्षीण प्रश्न-किरण फिर उसके भीतर से फूट पड़ी—गौरी ने एक बार भी मुझसे न पूछा कि तुमने माधुरी से विवाह करना कैसे स्वीकार कर लिया?····ओः तो मेरे साथ चल देने के बाद भी इसका विचार फिर पलट गया! मैंने तो डैडी और ममी की प्रतिक्रियाओं की परवाह किये बिना इतना साहसिक पग आगे बढ़ा दिया, पर इससे इतना भी न हो सका कि यह अपने चाचा और चाची से अपने विद्रोह का क्षीण स्वर ही एक बार तो प्रकट करती।···नहीं-नहीं···! मैं उससे नहीं मिलूँगा! मैं किसी प्रतिक्रिया के वशीभूत होकर ऐसा कुछ नहीं सोच रहा हूँ। मैं वास्तव में देह-रस की क्षणिक तृप्ति को देश के आह्वान के आगे घृणित, जघन्य और तुच्छ मानता हूँ। किसी भी जीवन-सौख्य की अपेक्षा मुझे माँ की पुकार का ध्यान अधिक प्रिय है।

सोचते-सोचते धीरे-धीरे कदम आगे बढ़ाता हुआ शरत अपने कमरे में चला आया। पहले तो देर तक वह अपनी पुस्तकें उलटता रहा। एन० सी० सी० के जो प्रमाण-पत्र उसने इकट्ठे किये थे, उनकी फाइल को उसने अपने पोर्ट-फोलियो में डालकर उसे सूटकेस के ऊपर रख दिया।

फिर उसने एक-एक कर एन० सी० सी० के ड्रेस के सारे कपड़े निकाले और सूटकेस के ऊपर इस इरादे से रख लिये कि अवसर आने पर कहीं देर न हो जाय। अलमारी में रखे हुए ट्रांजिस्टर को संचालित करके उसने एक गीत सुना। अभी वह पूरा भी न हो पाया था कि उसे बन्द कर दिया। फाउन्टेनपेन निकाला, उसमें स्याही भरी और सोचा—राइटिंग पैड तो अभी रक्खा नहीं। उसे भी रख लेना चाहिए।

इसी समय उसे ध्यान हो आया—गौरी कभी-कभी रात को भी आ जाती रही है। चाहे दो मिनट के लिए आती हो, मगर अब सब व्यर्थ है।···क्या दो एक मिनट के लिए वह मेरे पास आ नहीं सकती थी?

क्या वह मुझसे इतना भी नहीं कह सकती थी कि जो कुछ हुआ, उसमें तुम्हारा तो कोई हाथ है नहीं, फिर तुम मेरे प्रति अन्यथा या और कुछ क्यों सोच रहे हो ?

—मगर अब इस स्थिति में यह सब सोचना भी मुझे व्यर्थ और तुच्छ प्रतीत होता है। मन, अगर तुमने कभी कोई दुर्बलता दिखलाई, तो मैं तुम्हें कुचल डालूंगा ! मैं मरूँगा भी तो विक्षिप्त होकर !

एकाएक वह उठ खड़ा हुआ और कमरे में इधर से उधर टहलने लगा। फिर उसने मन ही मन कहा—नहीं ! फिर वह एकाएक बैठ गया। अपनी टेबल पर आकर उसने स्थिर किया कि कुछ भी हो, वह गौरी को एक पत्र तो लिख ही जायगा।

राइटिंग पैड उठाकर उसने लिखना प्रारम्भ कर दिया—

"देखो गौरी,

मुझे तुमसे सदा शिकायतें रही हैं। उन सारी शिकायतों के बावजूद मैंने सदा यही सोचा है कि मरण की पावन घड़ियों में अगर मेरा सिर तुम्हारी गोद में रहेगा तो परम पिता परमात्मा का स्मरण कर एक बार तो मैं यह कहूँगा ही कि मुझे न तो इस संसार से कोई उलहना है और न तुम्हारी इस लौकिक और अलौकिक सृष्टि से। तुमने मुझे वह सब कुछ दे दिया, जिसकी मैं कामना करता था। यद्यपि मैं नहीं जानता था कि जीवन का सत्य इतना कटु और विषाक्त है ! नहीं जानता था कि अहंकार, आडम्बर और दम्भ से भरा मनुष्य का यह जीवन इतना अपरूप, कुत्सित और हीन है।

"पर अब, इस क्षण, जब मैं देश की बलिवेदी पर अपनी आहुति देने को तत्पर हो गया हूँ, तब अगर तुम्हारे मिलन का प्रलोभन भी मेरे सामने आ जाय, तो बुरा न मानना गौरी, मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा, नहीं करूँगा।

"मुझे दुःख तो इसी बात का है कि अब तक न तुम मुझको समझ पायी थीं और न मैं तुमको समझ पाया था।

"अच्छा तो अब जाता हूँ। विदा के समय—और यदि ऐसा ही अवसर आ जाय कि यह विदा मेरी चिरविदा का अवसर बन जाय तो

भी—तुम मेरे बलिदान पर कभी किसी क्षण एक भी आँसू न गिराना। तुम्हें मेरे उस प्यार की शपथ है जो अब तक मैं तुम्हें दे न सका, जबकि दे सकता था। हाँ-हाँ, तुम्हें उस प्यार की शपथ है, जो तुम मुझसे माँग सकती थीं और जबर्दस्ती ले भी सकती थीं।

"तो अब एक ही शर्त पर तुमसे मेरा मिलना हो सकता है,"…नहीं सब व्यर्थ है। मेरे मिलन की कोई शर्त नहीं है। देशप्रेम में सर्वस्व उत्सर्ग करने वाले के सम्मुख कोई शर्त-वर्त नहीं होती।

"आँसू, मैं तुमको सदा हृदय से बहने वाला अमृत मानता आया हूँ। कम से कम तुम तो ऐसी कोई दुर्बलता न दिखलाओ कि मैं अपने व्रत से डिग जाऊँ। कभी-कभी अपनी स्वाभाविक चंचलता से प्रेरित होकर मैंने तुमको जो कटु वचन कहे हैं, अब तुम उन्हें भूल जाना गौरी! और कभी कोई चुटकी ली है, नासिका, भ्रकुटि, पलक और होंठ से ही क्रीड़ा और कौतुक के माध्यम से, मन का प्रसाद आन्तरिक प्यार से व्यक्त किया है, अगर वह भी कभी तुम्हें याद आ जाय, तो उसको भी भुला देना गौरी! —बस चलता हूँ।"

लिखते-लिखते अन्त में उसने अपना हस्ताक्षर किया, फिर उसके ऊपर अपना कलम रख दिया। रूमाल से आँसू पोंछे, कुर्सी से उठा, वाश बेसिन में मुँह धोया और चारपाई पर आकर लेटे-लेटे सैनिक जीवन की कर्तव्यनिष्ठा के विषय पर लिखी हुई अंग्रेजी की एक पुस्तक के पन्ने उल-टने लगा।

: २५ :

पन्ना सोचती थी—"अब क्या होगा?"

सबसे बड़ी दयनीय स्थिति यह थी कि वह जिस कानपुर से भागी थी, घूम-फिर कर उसी कानपुर में लौट आयी थी।

उसके मन में आया—और फिर पहुँची भी तो इतने बड़े आदमी के यहाँ। एक बड़ी आशंका भी उसके मन में उठ खड़ी हुई कि यदि जज साहब को मेरे निकट व्यतीत का परिचय किसी तरह से मिल गया तो मेरी स्थिति क्या होगी ? क्या यह शिष्ट समाज हमको अपने में मिला लेना स्वीकार करेगा ?

फिर उसे ठाकुर साहब का ध्यान हो आया। अवसर आने पर क्या वे जज साहब से स्पष्ट शब्दों में यह कहने का साहस करेंगे कि यह मेरी बहन है ! जबकि जज साहब स्वयं मुझे देख चुके हैं।

—अच्छा, अगर उन्होंने मुझे पहचान लिया होता तो ? तो फिर जिस आशंका से मैं इतनी आक्रान्त हूँ, व्यवहार रूप में क्या उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा ?

फिर उसे ध्यान हो आया कि अगर दिलदार भैया बुद्धिमानी से काम लें, तब तो कोई गड़बड़ी मचेगी नहीं।

—मगर कितनी देर हो गई और वे अब तक इस कमरे में नहीं आये। नहीं तो मैं ही उन्हें सुझा देती।

लेकिन मैं उन्हें क्या-क्या सुझाऊँगी ? जिसे समाज कहते हैं, वह तो महाकाल है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को खो कर जीने वाला पिशाच, अवसर और शक्ति का क्रीतदास। पृथक् व्यक्तित्व रखने वाले व्यक्ति का खून उसकी प्यास बुझा सकता है।

इतने में मोहन बाबू बोले—"हमको ऐसा लगता है पन्ना, कि हम लोग संयोग से बहुत गलत जगह पर आ गये हैं। जो समाज रूढ़िवादी है और चरित्र सम्बन्धी मानवीय दुर्बलताओं के लिए जिसके हृदय में थोड़ा भी सहानुभूतिपूर्ण स्थान नहीं है, उसके साथ हमारा समझौता हो ही नहीं सकता।"

पन्ना चौंक पड़ी—और मैं मन ही मन सोच क्या रही हूँ !

इतने में शरत चिक के भीतर आ पहुँचा। पन्ना अकस्मात् कम्पित हो उठी। शरत की उपस्थिति के प्रसंग में किसी प्रकार का परिवर्तन किये बिना वह बोली—"रूढ़िवादी समाज के साथ समझौता करने की बात तो हम सोच ही नहीं सकते।"

"सही बात है ! यही मेरा मतलब भी था । तुमको तो भला क्या मालूम होगा, लेकिन यहाँ मेरी मौसी के दामाद का भी घर है । उनकी एक लड़की आजकल अमरीका में लॉ पढ़ रही है । सम्भव है कि अब तक वह बैरिस्टर भी हो चुकी हो । वह जब यहाँ आई थी तो मुझसे भी उसकी भेंट हुई थी । अब तो उसकी अवस्था तीस के ऊपर हो चुकी होगी । बहुत ही दृढ़ स्वभाव की है । मौसिया के सामने ही कह रही थी कि मैं तो आजीवन कुमारी रहूँगी । कह नहीं सकता, वहाँ इसका कैसा जीवन व्यतीत होता होगा ? लेकिन यहाँ वह जितने दिन रही, सदा अपने ब्वाय फ्रेण्ड्स से घिरी रही ।"

अब तक पन्ना इन सब बातों को चुपचाप सुनती जा रही थी । वह यह कहने ही वाली थी कि बस करो, बहुत अधिक मत बोलो । किन्तु तब तक शरत बोला—"बीच में बोल उठने के लिए माफ कीजियेगा, मैं उस लड़की को जानता हूँ । आप शायद दमयन्ती की बात कर रहे हैं । उसकी मदर भी तो बहुत स्वतन्त्र विचार की हैं । खुद उन्होंने भी तो सिविल-मैरिज की थी ।"

मोहन बाबू बोल उठे—"हाँ भैया, तुमने ठीक बतलाया । तो अब तुम ऐसी व्यवस्था करो पन्ना, कि हम लोग वहीं चले जायँ ।"

शरत ने जवाब दिया—"मगर इसकी जरूरत ही क्या है ? और अगर मैं गलती नहीं करता तो आप तो मेरे गाँव की रहने वाली हैं ।"

पन्ना एकाएक चौंक पड़ी और बोली—"आपको कैसे मालूम हुआ ? मैंने तो आपको कहीं देखा नहीं ।"

शरद ने जवाब दिया—"अभी डैडी कह रहे थे और अगर मैं गलती नहीं करता, तो एक अखबार में आपका फोटोग्राफ भी तो छप चुका है ।"

शरत की बात सुन कर पन्ना हतप्रभ हो उठी । न उसके मुँह से यह निकला कि आपका ख्याल गलत है और न उसने यही कहा कि मुझे नहीं मालूम, निकला होगा ।

इतने में ठाकुर साहब आ गये और मोहन बाबू बोले—"जो कुछ हुआ सो हुआ । अब आप सिविल लाइन में दूध वाले बँगले के पास बकिंघर

बाबू के यहाँ हम लोगों को छोड़ आइए। आपको मालूम होना चाहिए कि वे मेरे सगे मौसिया हैं।"

इधर यह बातें चल ही रही थीं कि शरत ने हेमन्त बाबू के पास पहुँचकर कह दिया—"डैडी, डैडी, मिसेज पन्ना और उनके पति सिविल-लाइन में एक साहब के यहाँ चले जाना चाहते हैं।"

जिस समय शरत वहाँ पहुँचा, ठीक उसी समय हेमन्त और नमिता में यही प्रसंग छिड़ा हुआ था। नमिता कह रही थी—"मेरा घर सराय नहीं है।" और हेमन्त बाबू कह रहे थे—"रात भर की तो बात है। कल सबेरे हम इनको दूसरी जगह शिफ्ट कर देंगे।"

नमिता बोली—"नहीं जिस वर्ग के यह लोग हैं, उसके लिए हमारे यहाँ एक मिनट के लिए भी स्थान नहीं हो सकता।"

पर शरत ने ज्योंही अपनी बात कही, त्योंही दोनों के दोनों अवाक् हो उठे। क्षण भर स्थिर रह कर हेमन्त बाबू बोले—"वेरी गुड! एक-दो बार नहीं पचासों बार का मेरा यह अनुभव है कि व्यक्तिगत ममता हो कि सहानुभूति, दान-दाक्षिण्य हो कि अवलम्ब, ईश्वरीय विधान में मनुष्य के लिए जितनी ममता का संरक्षण है वह सब एक रजकण के बराबर भी नहीं होती। कितना जबर्दस्त चाँटा कसके मारा है मोहन बाबू ने हमारी इस घिसीपिटी संस्कृति पर कि मेरी तबीयत प्रसन्न हो गई।"

उनके मन में तो आया कि नमिता के आगे स्पष्ट रूप से कह दें कि उनके इस संकल्प के आगे चुल्लू भर पानी में डूब मरो। मगर अपेक्षित प्रसन्नता के आवेश में आकर आनन्दविह्वल होकर वे उसी कमरे में जा पहुँचे, जहाँ मोहन बाबू तो कुर्सी पर बैठे हुए थे और ठाकुर साहब कह रहे थे—"रिक्शा मैंने बुलवाया है और वह फाटक पर आ भी चुका होगा।"

हेमन्त बाबू यह कहने ही जा रहे थे कि वैसे तो आप लोग यहाँ दो-चार दिन रह ही सकते थे, लेकिन आपको दूसरी जगह ठहरने में अधिक सुविधा और सुविधा से अधिक स्वतन्त्रता मिल सके तो मुझको प्रसन्नता

ही होगी। पर आप लोग यह न समझियेगा कि आग्रहपूर्वक आपको दूसरी जगह जाने के लिए मजबूर कर रहा हूँ।......"

इतने में ठाकुर साहब बोले—"जज साहब, मैंने शायद आपको अपने जीवन से सम्बन्धित घटनावली का पूरा-पूरा विवरण कभी विस्तारपूर्वक नहीं बतलाया। इस समय संक्षेप में इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि यह मेरी बहन पन्ना है और ये मेरे बहनोई मोहनलाल शर्मा। अब ये दोनों अपने मौसिया शशिधर बाबू के यहाँ जा रहे हैं।"

"आपका मतलब शायद उन्हीं शशिधर बाबू से है जो क्रिमिनल लॉ के सबसे बड़े बैरिस्टर हैं।"

मोहन बाबू ने उत्तर दिया—"हाँ जज साहब, वे मेरे सगे मौसिया हैं।"

"मुझको यह जान कर बड़ी खुशी हुई कि आप लोग उनके इतने निकट हैं। मैं शशिधर को बड़ी अच्छी तरह से जानता हूँ। ही इज माई फ्रेण्ड। आप पसन्द करें तो मैं फोन से उनको सूचना दे दूँ कि आप मेरे यहाँ आ गये हैं।"

मोहन बाबू बोले—"पर जज साहब, अगर आप हमको वहीं चला जाने दें तो बड़ा अच्छा हो।"

हेमन्त बाबू ने उत्तर दिया—"अब शर्मा जी, यह विषय हमारी प्रेस्टिज का सवाल बन गया है। आप ठहरे ठाकुर साहब के बहनोई और यह पन्ना ठाकुर साहब की बहिन। इस नाते आप हमारे गाँव के मान्य हो जाते हैं। घटनावश ही सही, ऐसी दशा में जब एक बार आप हमारे घर में आ गये तब इतनी जल्दी हम आपको कैसे विदा कर सकते हैं?"

जिस समय हेमन्त बाबू यह बात कह रहे थे, उस समय नमिता भी आकर दरवाजे पर खड़ी हो गई थी। वह सोच रही थी कि मैं अपने को बहुत विचारशील समझती थी; किन्तु कभी-कभी मुझे इनके हृदय की विशालता का भान ही नहीं होता। शशिधर बाबू का बहनौता होने के नाते मोहन बाबू की पारिवारिक पद-मर्यादा हमसे किस बात में कम हो सकती है? रह गई यह पन्ना, सो शर्माजी के साथ विवाह कर लेने के बाद अब उसको भी सामाजिक स्वीकृति दिये बिना गति नहीं है। आज

अगर इन्हीं (हेमन्त बाबू) की कोई बहिन किसी रशियन वैज्ञानिक के साथ मैरिज कर ले, तो क्या हम उसका समादर न करेंगे ?

मोहन बाबू बोले—"जज साहब, आपने तो मेरे मन के अन्दर गहरी छाई हुई पीड़ा के मर्म को जगा दिया। आपको शायद मालूम नहीं कि जिस प्रेस्टिज की बात उठा कर आप मेरा सम्मान कर रहे हैं, उसकी एक वैकल्पिक दिशा भी है। हम लोग एक प्रयोगवादी युग में जी रहे हैं। यह तो ठीक है कि जीवन के नैतिक पक्ष की उपेक्षा हमारे लिए सम्भव नहीं है, किन्तु जब कभी हमारे सामने ऐसा अवसर आ जाता है कि हम केवल जीने के लिए दम मारने या साँस लेने का अवसर खोजने लग जाते हैं, तब पहले हम अपने जीवन को ही प्यार करते हैं। नैतिक और अनैतिक जैसा कोई प्रश्न हमारे सामने नहीं होता। आपको शायद यह भी न मालूम होगा कि ऐसा एक न एक अध्याय हमारे और पन्ना के एक छोटे से कालक्षेप में पृथक्-पृथक् भी रह चुका है। मैं उस अध्याय को छिपा-कर, इस असमर्थता में भी, आपकी अधिकाधिक कृपा प्राप्त करने के लिए आपके साथ किसी प्रकार का छल या प्रपंच करने के पक्ष में नहीं हूँ। इसलिए जब सामाजिक मान-मर्यादा को सामने रखकर आपकी प्रेस्टिज का प्रश्न उठेगा, तब आपके यहाँ से चले जाने में मुझे दिन या घंटे नहीं, मुश्किल से पाँच मिनट लगेंगे। मैं यह कभी नहीं चाहूँगा कि हम जैसे दुःसाहसी प्रयोगवादी के कारण आपको कभी एक क्षण के लिए उत्तरदायी होना पड़े। यह भार तो आप हम जैसे उन्हीं लोगों पर छोड़ दीजिए जो समय आने पर आँसू पीकर जीने में जीवन का अपमान नहीं, छाती ठोंक कर, सिर ऊँचा करके, अपने गौरव का ही अनुभव करते हैं।"

हेमन्त बाबू तब प्रसन्नतापूर्वक बोले—"वाह ! शर्मा जी वाह ! अपनी बात कहकर आपने हमारे मन की कसकती हुई नस को अँगुली से दबा दिया है। डी० एच० लारेन्स का कथन है कि मानवीय मान्यताओं के प्रभाव में पड़ने से पहले मनुष्य की जो स्थिति है, बाद में भी वह वैसी ही रहती है। अर्थात् मनुष्य हर जगह मनुष्य है। जीवन-पर्यन्त वह जगत के क्रम का एक अंग बना रहता है। ऐसा नहीं है कि ज्ञान और चेतना की अन्तरगता में ही वह ऐसा अनुभव करता हो, अज्ञानावस्था में भी वह इस

भावना को कभी भूल ही नहीं सकता कि अन्ततोगत्वा मैं मनुष्य हूँ। रूप, रस, गन्ध की अनिवार्य प्यास के आगे न मैं कहीं नैतिक हूँ, न अनैतिक। और मानवीय बने रहने के इस क्रम में न तो मैं कहीं से कट-कर अलग हो सका हूँ और न कहीं नये सिरे से जुड़ ही पाया हूँ। जन-जीवन के समूह और वृन्द हमारे चाहे जितने विरोधी हों, घटनाओं और परिस्थितियों की लहरें हमें चाहे जहाँ बहा ले जाने को उद्यत रही हों, लेकिन अपनी जीवन्त आन्तरिकता से भाग कर हम कहीं नहीं जा सकते। तो बस शर्मा जी, इसीलिए, मेरा भी यही कथन है कि इस समय आप यहाँ से भागकर जा नहीं सकते।"

जज साहब के इस कथन से पन्ना अतिशय भावद्रवित हो उठी। वह सोचने लगी कि मैं अभी सोच रही थी कि हम लोगों को यहाँ से चला जाना चाहिए। एक यह जज साहब हैं जिनके हृदय की विशालता का हम अनुमान ही नहीं कर सकते थे। पर ऐसी दशा में क्या यही हमारा धर्म रह जाता है कि उनके प्रभाव में आकर हम अपना उद्देश्य और लक्ष्य भूल जायँ?

वह अभी कुछ कहने ही जा रही थी कि इतने में ठाकुर साहब बोले—"जज साहब, आपको मालूम है कि एक असत्य पर परदा डालने के लिए मैं अपनी जान की बाजी जरूर लिगा चुका हूँ। किन्तु आजकल मैं रात को सपना कुछ इसी प्रकार का देखता हूँ कि मानवता की उपासना हो या नैतिकता की स्तुति के लए घूमते हुए थाल के पीछे ललनाओं का कलकल नाद हो, मंगल-गान हो, सत्य पर जान देने वालों के लिए अगर कब्र ही खोदनी पड़े तो पवित्र से पवित्र रेणुका और पापी प्राणि मात्र के तरण-तारायण के लिए पवित्र गंगाजल की बूँदें हर जगह मिल जाती हैं। वे बूँदें चाहे अमृत की हों और चाहे आँसू की, मैंने अभी आपसे कहा था कि पन्ना मेरी बहिन थी, आज भी है और सदा रहेगी। यद्यपि यह बात मुझे आत्मघात करके बतलानी थी, पर दुःख इसी बात का है कि उसका अवसर निकल गया है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि अपनी बहिन को मैं सादर अपने यहाँ ले जाऊँ। मैं समाज की उस शक्ति को देखना चाहता

हूँ जो हमारे ऐसे पवित्र नातों के बीच में व्यवधान डालने में ही अपनी शक्ति-सामर्थ्य और गौरव देखता आया है।"

हेमन्त बाबू बोले—"इन बातों में अब कोई दम नहीं रहा। घर आये मेहमान को ऐसे समय में जाने देना मैं कदापि सहन नहीं कर सकता। मगर खाने के लिए यों भी काफी देर हो गई है और शरत का यह उलहना भी सही है कि कारण को बीच में खड़ा करते-करते आप लोग हमेशा ठण्डा खाना खाने के आदी हो गये हैं, इसलिए और बातें बाद में होंगी, पहले खाना खा लेना होगा।"

मुसकराती हुई पन्ना बोली—"चाचा जी, मुझको तो माफ ही कर देना होगा। कम से कम तीन दिन का उपवास करना मेरे लिए अनिवार्य है। जब सत्य बोलने का समय आ गया हो, तब उसे अवश्य कह डालना चाहिए। इसमें अवज्ञा का प्रश्न नहीं उठता। प्रायश्चित के मूल में तीन सीढ़ियाँ बतलाई गई हैं—पहले आत्मग्लानि, फिर किसी पाप में न पड़ने का दृढ़ संकल्प और तीसरी आत्म शुद्धि। और बापू का कहना है कि जो व्यक्ति किसी अधिकारी के सामने अपनी इच्छा से, शुद्ध हृदय से अपना दोष स्वीकार कर लेता है, उत्तम कोटि का प्रायश्चित उसी का होता है।"

मोहन बाबू बोले—"पन्ना की बात पन्ना के साथ है। मेरी बात और है। जहाँ तक जीवन के भार को वहन करने और ढोने का प्रश्न है, मैंने कभी कुछ छिपाया नहीं और इसलिए मैं पाप के अस्तित्व को स्वीकार भी नहीं करता।"

यह बातें शायद अभी और चलतीं, तभी अमिता ने झट से कह दिया—"मैं इन फिलासफरों के मारे तंग आ चुकी हूँ, इसलिए मेरा निवेदन है कि पन्ना देवी भले ही अपना उपवास न तोड़ें, लेकिन बाकी सब लोग कृपा करके भोजनालय में तुरन्त आ जायँ।"

तब हेमन्त बाबू मुसकराते हुए बोले—"मुझे तो अब कुछ ऐसा जान पड़ता है, हम सब लोग ऐसे युग में जा पहुँचे हैं, जहाँ शासन-व्यवस्था की सारी सत्ता स्त्रियों के हाथ में जा पहुँची है।"

तब सभी लोग भोजन शाला में जा पहुँचे। मोहन बाबू का थाल वहीं भेज दिया गया।

: २६ :

वासुदेव बाबू को रात में लेटे-लेटे एक चिन्ता ने घेर लिया—अगर इस समय कहीं से दो-चार हजार रुपयों का भी प्रबन्ध हो जाता तो कितना अच्छा होता !

पूछने पर कावेरी ने कहा कि हमारे पास जो कुछ गहने हैं, उनमें से चितने चाहो गौरी को देने के लिए रख लो। बाकी को बेचकर नगद रुपये के रूप में बदल डालो। मैं तो अब पहनने से रही।

फिर सवाल उठा—'क्यों ?'

वासुदेव बाबू बोले—"जब कभी किसी त्यौहार के अवसर पर पहन लेती हो तो मेरी आँखों में तुम्हारी वही छवि झूम उठती है, जिस पर मैं सदा जान न्यौछावर करता रहता था !"

आदमी चाहे जितना वयस्क हो जाय पर उसके मन-दाँत दूध के ही बने रहते हैं। वासुदेव बाबू को इन बातों में अब भी बहुत रस मिलता था। कावेरी यह जानती थी।

वह बोली—"अरे हटो ! अब हमें कुछ अच्छा नहीं लगता। जब तुम इस तरह की बातें करने लगते हो, तो यही जी में आता है कि एकान्त में जाकर थोड़ी देर रो लूं ! मन को बहुत कुछ समझाती हूँ, लेकिन फिर जब सारा जीवन ढाई घण्टे का एक नाटक-सा मालूम पड़ता है तो सब मिथ्या प्रतीत होता है। वर्ष के वर्ष कल्पना में सिमिट कर एक क्षणमात्र रह जाते हैं।"

तभी वासुदेव बाबू बोले—"यों तो मेरा भी सचमुच यही हाल है। यही सोच कर कभी-कभी थोड़ा-सा मनबोधन हो जाता है कि जीवन एक ऐसी यात्रा है कि जिसका कभी अन्त नहीं होता।"

कथन के साथ वे थोड़ा रुके और बोले—"जीवन-यात्रा में हम जहाँ कहीं विश्राम के लिए थोड़ा ठहर जाते हैं, वहाँ और कुछ न भी हो, पर पाथेय तो नया मिलता ही है। इसीलिए कभी-कभी तुम अब भी मुझे बाईस वर्ष की बछेड़ी ही जान पड़ती हो।"

"बको मत ! मुझे अब तुम्हारी ये बातें अच्छी नहीं लगतीं।" कावेरी

ने कहा—"गौरी का विवाह हो जाय तो छुट्टी पाऊँ। दो-ढाई महीने के लिए तीर्थ यात्रा को ही चल दूँ। गृहस्थी के इस जाल से तो कभी छुट्टी मिलेगी नहीं।"

वासुदेव बाबू बोले—"मगर जिसको तुम गृहस्थी का जाल कहती हो, उसी का दूसरा नाम जीवन-संघर्ष है। और जीवन में संघर्ष सम्बन्धी तनाव की जो स्थिति है उसमें सबसे अधिक सुखकर जो कुछ लगता है वह व्यतीत मात्र है। सो भी जितना अधिक पुराना, उतना ही अधिक मादक। ठगनी स्मृतियाँ धोखा देना खूब जानती हैं। खैर जाने दो। एक तरफ सोचता हूँ कि गौरी के लिए शरत से बढ़ कर जोड़ीदार मिलना अब इस संसार में सम्भव नहीं है। दूसरी ओर यह कितने गौरव की बात है कि ऐसे विवाह का प्रस्ताव लेकर जज साहब स्वयमेव निःसंकोच मेरे यहाँ चले आये। इस आनन्द को तो शायद मैं कभी जीवन में भूल ही नहीं पाऊँगा कि एकदम निराश हो जाने के बाद पहले तो गौरी ने लोहे की जलती हुई लाल सलाख से छू-छूकर कहीं जला दिया, फिर संयोग ने एक ही पलक में कई घड़े अमृत आषाढ़ के पहले ही दिन अनायास मेरे ऊपर उँड़ेल दिये।"

तभी कावेरी बोल उठी—"मगर इससे भी बढ़ कर बात यह हुई कि ऐसे प्रस्ताव को याचना का रूप देकर और कुछ माँगने या तै करने का उन्होंने हमको जानबूझकर अवसर नहीं दिया।"

वासुदेव बाबू बोले—"इसका भी एक कारण है और वह है दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों की घनिष्टता का एक आकस्मिक योजनाबद्ध विस्फोट।"

मुसकराती हुई कावेरी बोली—"अब तो धीरे-धीरे वे सारी बातें प्रकट हो रही हैं, जिनको मैं कभी सोच भी न सकती थी। मुझे तो सबसे अधिक हँसी इस बात पर आ रही है कि शरत के साथ भागने से पहले गौरी ने हमसे पूछा तक नहीं!"

"पर ऐसे कठिन विषय को तय करने में इस घटना के आकस्मिक हस्तक्षेप करने का भी एक बहुत बड़ा महत्व है। तभी तो कहता हूँ कि बहुतेरे संयोग नैतिकता की दृष्टि से भले ही चिन्त्य हों, मगर जीवन-

कल्याण की दृष्टि से वे बड़े ही मंगलकारी होते हैं।"'मगर अब रात बहुत गयी। अब तुम सो जाओ कावेरी! वैसे आज तुमसे हर तरह की बातें करने का मेरा बड़ा मन था।"

स्वामी की इस बात को सुनकर कावेरी मन-ही-मन हँस पड़ी। 'हर तरह की बातें'—ये कहते क्या हैं! कोई सुने तो क्या कहे?

उसने बात बढ़ाना उचित नहीं समझा। आँखें मूंद लीं और स्वामी की ओर पीठ करके वह अपनी चारपाई पर सो गयी।

गौरी उठ तो चुकी थी और चूल्हा जलाकर उसने चाय का पानी भी चढ़ा दिया था, लेकिन रमेश अभी घोसी के यहाँ से दूध लेकर लौटा न था। सुरेश सोच रहा था कि चाची तो अभी उठ न पायी होंगी, दादा जी ने ही स्टोव जलाकर दिनचर्या का शुभारम्भ किया होगा।

कावेरी भी उठ चुकी थी, किन्तु वह कुछ संकोच और लाज से डूबी हुई थी। जिस परिस्थिति से बचने की उसने अपनी समझ से पूरी चेष्टा की थी, उसका प्रभाव उसकी देह की शिरा-शिरा में विद्यमान था। आँख खुलते ही वह तपाक से उठ बैठी थी। धरती माता की रज को मस्तक पर लगाना भी वह नहीं भूली थी और नित्य-क्रिया से निवृत्ति पाने में भी वह अपने घर में सबसे आगे थी, किन्तु ग्लानि में डूबी, गृहकार्य में संलग्न रहकर वह बड़ी देर तक सोचती यही रही थी कि हम सब कितने पापी हैं!

इतने में रमेश आलमूनियम के डिब्बे में दूध लेकर आ पहुँचा और दाँतून करता-करता छज्जे पर से बाहर की ओर भागता हुआ सुरेश बोला—"अम्मा, यह लो बड़ी अम्मा आ गईं।"

गौरी झट से चाची के पास जा पहुँची और हाथ बढ़ाकर बच्चे को उसने गोद में ले लिया। सत्यवती ने पास देखते ही सुरेश को कण्ठ से लगा लिया और बोली—"मेरा जी नहीं माना सुरेश, तुम चले तो आये लेकिन तुमने यह नहीं सोचा कि तुम्हारे बिना मैं रहूँगी कैसे?"

और इतना कहते-कहते उसका कण्ठ भर आया।

सुरेश यह बात सुनकर स्तब्ध हो उठा। वह सोचने लगा कि बड़ी अम्मा के इस कथन में माँ की विशुद्ध ममता के सिवा कुछ नहीं हो सकता। उनके सम्बन्ध में मैंने जो कुछ भी सोचा सब गलत था। फिर झट से उसने उनके पैर थाम लिये। कावेरी जब तक बरामदे में पहुँची तब तक सत्यवती भी आ पहुँची। कावेरी तो चरण छूने लगी और वासुदेव बाबू बोले—"भगवान के बड़े-बड़े हाथ हैं। मैं कल से यही सोच रहा था कि इतनी जल्दी तुम्हारा आना होगा कैसे? हालाँकि टेलीग्राम मैं दे चुका था।"

नन्दलाल बाबू के पैर वे अभी छू भी न पाये थे कि आशीर्वाद के स्थान पर उन्होंने कहना शुरू कर दिया था—"क्यों? कोई खास बात है। टेलीग्राम तो तुम्हारा मिला नहीं और हम तो आये हैं सुरेश को लेने के लिए।"

वासुदेव बाबू बोले—"अरे, तो उसे भेजने की ही ऐसी क्या जरूरत थी? मगर यहाँ तो गौरी के विवाह समारोह की तैयारी शुरू हो रही है।"

कावेरी अपनी जिठानी को साथ लेकर अन्दर चल दी तो गौरी भी उसके पीछे-पीछे हो ली। कावेरी कहती जा रही थी—"जीजी, भगवान की कृपा और तुम्हारे चरणों के प्रताप से गौरी का विवाह जज साहब के लड़के भरत के साथ होना निश्चित हो गया।"

सुरेश सामान रखते-रखते बोला—"दादा, आज जब सबेरे मैं उठा तो सबसे पहले यही ध्यान आया कि आज आपको दूध के लिए बहुत सबेरे उठना पड़ा होगा। और आप मन-ही-मन बहुत कुनमुनाए होंगे।"

"अरे कुछ न पूछो सुरेश!"—नन्दलाल बाबू बोले—"चीनी के लिए जो मुझे क्यू में खड़ा होना पड़ा तो बस हालत खस्ता हो गई और इनका हाल यह है कि तुम्हारे आने के बाद से खाना ही नहीं खाया। बार-बार रोती-रोती कहने लगती थीं कि मैंने सुरेश को क्यों भेज दिया? और मुझसे यह कहकर झगड़ती रहीं कि तुमने मना क्यों नहीं किया?"

इसी समय सत्यवती अन्दर से बोली—"जब यह दफ्तर चले गये और मैं खाने को बैठी तो मुझसे खाया न गया। मैं बराबर यही सोचती

रही कि सुरेश जब पहले मेरे घर पर आया था, तो बैठा-बैठा मेरी ही गोद में सो जाया करता था। साल भर तक तो मुझे जबर्दस्ती इसके दोनों हाथ पकड़ कर एक छोटी कटोरी से दूध पिलाना पड़ता था और यह कम्बख्त इतना शैतान था कि दूध कण्ठ से उतारने के बजाय गल-गल करने लगता था !"

बात कहते-कहते सचमुच उसका कण्ठ भर आया। फिर वह बोली—"धीरे-धीरे बड़ा हुआ। कपड़े पहना कर मैं जब स्कूल भेजने लगी, तब भी यह शैतान मुझसे लड़ता था। कहता था कि अगर तुम मुझको प्यार करती होतीं तो मुझको स्कूल ही क्यों भेजतीं ? और अभी जब उस दिन यह इंजीनियरिंग में पास हुआ और मेरिट लिस्ट में इसका नाम आया, तब मेरे मन में आया कि इससे पूछूं कि क्यों रे सुरेश, तू तो कहता था कि मैं तुझको प्यार ही नहीं करती ! अब जरा बता तो सही मेरे प्यार के बिना तू इंजीनियर कैसे बन गया ? कैसे बना, बोल ?"

कहती-कहती सत्यवती आँखों से आँसू पोंछने लगी।

इतने में गौरी बच्चे को लेकर आ पहुँची और बोली—"बड़ी अम्मा, यह तो सो गया।" फिर उसे थपथपाती हुई कहने लगी—"भैया सो गया अम्मा !"

कावेरी तुरन्त बोल उठी—"देख गौरी, वो जो झूले वाला पालना है न, उसे निकाल तो ला। कितने दिनों से उसका हमारे घर में उपयोग नहीं हुआ। और देख, खूब ठीक से झाड़-पोंछकर तकिये वाली गद्दी बिछा देना, अच्छा ! मगर ठहर, मैं खुद चलती हूँ।"

तब आगे-आगे चली कावेरी और पीछे-पीछे गौरी। अब सत्यवती उसी जगह जा पहुँची जहाँ नन्दलाल बाबू बैठे थे। उसकी आँखें अब भी भरी हुई थीं जिसको वह आँचल से पोंछ रही थी।

नन्दलाल बाबू चारपायी पर बैठे थे। फिर यकायक खड़े हो गये और सुरेश को पुकार कर बोले—"अरे सुरेश, मैं जरा बाथरूम जाऊँगा।"

इतने में गौरी थाली में चाय के प्याले रखकर ले आई और बोली—"नमकीन अभी आता है।"

सुरेश ने लोटा भर पानी लाकर दादा को दे दिया।

गौरी की बातें ज्योंही सत्यवती ने सुनीं, त्योंही वह बोली—"अरे मैं सोहन हलुआ लाई हूँ गौरी बेटी, चल मेरे साथ, मैं अभी तुझे देती हूँ।"

थोड़ी देर बाद नन्दलाल बाबू जब कुल्ला करके तौलिये से हाथ पोंछ रहे थे, तभी वासुदेव बाबू बोले—"अब जब तुम आये ही हो भैया, तो कुछ दिन बने रहो और गौरी का विवाह करके जाओ।"

नन्दलाल बाबू मुसकराते हुए बोले—"वासुदेव, ब्याह तो मुझे सुरेश का भी करना है। अगर कोई अच्छी लड़की मिल जाय, तो मैं तुरन्त तैयार हो जाऊँगा। अब तक गृहस्थी जिस प्रकार चलीं, तुम्हें सब मालूम है। मगर अब बहू के बिना काम चल नहीं सकता। सबसे पहला प्रश्न यह है कि कौन रोटी बनाये, और बनाये तो बच्चे को कौन खिलाये ? मनुष्य का पूरा मूल्य तो तभी उभर कर सामने आता है जब वह हमसे दूर चला जाता है। मुझे अपनी भूल का पता तब चला जब सुरेश यहाँ चला आया।"

वासुदेव बाबू को उनका यह कथन बड़ा मूल्यवान प्रतीत हुआ। पर वे स्वप्न देखने लगे—मैं सोचता था (और सोचता क्या था, इन्होंने यह कहकर उसे भेजा ही था) कि वह मेरे लिए बहुत बड़ा सहारा बन जायगा। लेकिन···।

नन्दलाल बाबू समझ गये कि वासुदेव के मन में क्या प्रतिक्रिया हो सकती है। उन्होंने तुरन्त कह दिया—"लेकिन सुरेश की नौकरी लगते ही उसका वेतन पूरा-का-पूरा तुम्हारे पास आ जाया करेगा वासुदेव ! मुझे उसमें से एक पाई न चाहिए। भगवान ने मुझे बहुत कुछ दिया है।"

तभी वासुदेव बाबू ने झट से कह दिया—"दद्दा, यह क्या बात तुमने कह डाली ? सुरेश तो सब तरह से तुम्हारा है। उसकी कमाई का एक पैसा मुझे न चाहिए। बस, एक बहुत बड़ी चिन्ता मुझे गौरी के ब्याह की थी, सो तय हो गया है। विवाह भी किसी प्रकार हो ही जायगा।"

नन्दलाल बाबू ने कुछ भाव-गर्वित होकर उत्तर दिया—"हो क्या जायगा ! उसकी सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। मैं करूँगा उसकी शादी। मुझे आश्चर्य तो इसी बात का है कि तुम मुझे आज तक समझ ही नहीं पाये। अरे मैं रस्म अदायगी आज ही कर दूँगा।"

सत्यवती ये बातें चुपचाप सुन रही थी। अब वह बोली—"कन्या-दान तो मैं करूँगी। घर के बड़े-बूढ़े ठहरे हम। शादी हम न करेंगे तो करेगा कौन? तुम करोगे वासू?"

कथन के साथ उसने नन्दलाल बाबू की ओर उन्मुख होकर कहा—"सुरेश के दादा, रुपया तुम मुझसे ले लो और गौरी के विवाह की रस्म अदायगी अभी कर दो।"

रमेश काजू वाली दालमोंठ ले आया था। नन्दलाल बाबू सत्यवती के साथ चल दिये। गौरी ठिठक गयी।

सत्यवती रुपये निकालती हुई बोली—"मेरे ख्याल से पाँच नोट तो तुम सौ-सौ के ले लो और एक गड्डी ले लो रुपये वाली। और ये बीस रुपये फल और मिठाइयों के लिए। अभी पहले सुरेश को भेजकर मँगा लो या ऐसा करो कि छोटे भइया को साथ कर दो। और देखो, इस बात का ख्याल रखना कि कोई फल खट्टा न हो।"

इन सब बातों की भनक जो कावेरी के कानों में पड़ी तो वह पास आकर खड़ी हो गई और विस्मित, आनन्दित, पुलकित होकर बोली—"जब तक अवसर नहीं आता, तब तक कोई परम आत्मीय और सगा भी पूरी तरह पहचान में नहीं आता। हाय जीजी, मैं तो कभी सोच ही नहीं सकती थी कि अपने असली रूप में तुम साक्षात् लक्ष्मी हो। कल शाम को, बल्कि आज रात भर हम लोग कितनी चिन्ता में थे कि गौरी का विवाह निपटेगा कैसे? एक तुम हो कि इतनी दूर से तुमने मेरी पुकार सुन ली।"

वह खुशी के मारे फूली नहीं समा रही थी और रुक-रुक कर कभी-कभी अपने उद्गार प्रकट करने लगती थी—"मैं ऐसा कुछ न जानती थी—मैं यह भी नहीं जानती थी कि गौरी कितना बड़ा सौभाग्य लेकर पैदा हुई है।"

भीतर के एक कमरे में बीच की अलमारी में भगवान की मूर्तियाँ रखी रहती थीं। वहीं पहुँचकर वह भगवान की वन्दना करने लगी—

तुम ठहरे घट-घटवासी। तुमसे भला क्या छिपा रह सकता है? एकाएक उसकी आँखों में आँसू भर आये।

अन्त में जब सारी सामग्री आ गई और नहा-धोकर जब सब लोग हेमन्त बाबू के घर की ओर जाने लगे तब वह मन ही मन कह रही थी—"दद्दा और जीजी दोनों इतने गहरे हैं कि उनकी थाह पाना कठिन है। अगर ऐसा कुछ मैं जानती, तो सुरेश को मैं कभी न लौटने देती। मैं तो सोच भी न सकती थी कि भगवान की सच्ची ममता तभी प्रकट होती है जब हमारे जीवन के निर्माण में उन लोगों का हाथ आगे बढ़ा हुआ रहता है जिनके सम्बन्ध में हम न कभी सोच सकते हैं न इस बात की ही कल्पना कर सकते हैं कि वे कैसे किस प्रकार हमारे बीच आ टपकेंगे।" बारबार कावेरी के मन में आ रहा था कि दद्दा और जीजी के त्याग के सामने हम लोग कुछ नहीं हैं। पर यह बात एक बार भी उसके मन में न आई कि कोई भी आत्मीयता आज के जीवन में कभी निराधार नहीं होती और अर्थ के बिना उसका अनुभव भी नहीं होता; क्योंकि जीवन में कुछ घड़ियाँ ऐसी भी आती हैं जब केवल ऐश्वर्य और वैभव का मुँह खुला रहता है, बाकी सब के सब तत्व बौने पड़ जाते हैं। संसार की वास्तविक स्थिति का यह एक ऐसा नग्न और कटु पक्ष है, जो सहसा जल्दी समझ में नहीं आता।

: २७ :

बड़ी रात तक तो पन्ना को नींद नहीं आई। चिन्तन का क्रम कुछ इस प्रकार चलता रहा कि वह लेटे-लेटे कभी करवट बदलने लगती और कभी मोहन बाबू के पास आकर बैठ जाती। अगर कभी उनकी आँख खुल भी जाती, तो उसका पहला प्रश्न यही होता कि अब कैसी तबी-

यत है ? सहानुभूति हो कि समवेदना, प्यार हो कि अपनत्व, उस क्षण केन्द्रीभूत हो जाता है जब अपना प्यारा से प्यारा संकट में पड़ जाता है।

रात को जब भोजन कक्ष में टेबल के दोनों ओर सभी लोग बैठ कर भोजन कर रहे थे तभी एक थाली लग कर मोहन बाबू के सामने भी आ गई थी। ठाकुर साहब को जब विदित हुआ कि पन्ना ने तीन दिन उपवास करने का व्रत लिया है तो वे सबके सामने तो कुछ न बोले थे, लेकिन फिर जब उनको खाने के लिए बुलाया गया तो वे एक बार पन्ना को मनाने के लिए आ गये और बोले—"देखो पन्ना, मैंने जिन्दगी बहुत देखी है। तुम्हारी बनिस्पत तो मैं बहुत कुछ भोग चुका हूँ। आदमी पर चाहे जितना दुःख पड़ जाय, मगर उसका खाना कभी नहीं छूटता। यहाँ तक कि पिता की दाह-क्रिया करके घर लौटने के बाद जवान और प्रौढ़ पुत्र माँ से मिलने पर दस-पाँच मिनट के लिए आँसू भले ही बहा ले, लेकिन यह कहे बिना नहीं मानता कि अब मेरे खाने का इन्तजाम करो अम्मा ! नवविवाहिता पत्नी की अचानक मौत हो जाने के बाद वह पति जो एकाध दिन में पागल हो जाता है, खाना वह भी नहीं छोड़ पाता। माना कि एकाध दिन के उपवास में कोई आदमी मर नहीं सकता, लेकिन फिर अन्त में खाना उसको भी पड़ता है। मेरी समझ में नहीं आता कि यह तीन दिन उपवास करने का संकल्प तुमने क्यों और क्या सोच कर कर डाला ?"

"तुम मुझसे बहस मत करो दिलदार भैया ! जाओ अपना काम देखो। तुम क्या जानो कि मेरे दिल पर क्या बीत रही है ! तुम खाना खा चुके हो न ? तो बस जाओ और गोड़ तन्ना के सोओ।"

फिर इस कथन के साथ उसने मन-ही-मन कह लिया—'कोई गहरा आघात हो या कर्तव्य की चेतना का कोई द्वन्द्व ही हो, उस आदमी के आचार में क्या अन्तर पड़ सकता है जो बाहर-भीतर दोनों तरह से जानवर हो चुका हो !'

पन्ना की इस बात पर ठाकुर साहब स्तब्ध रह गये। वे समझ गये—पन्ना कहाँ से बोल रही है !

इतने में मोहन बाबू बोले—"मैं तो इस कल्पना में था कि मेरे खाना

खा लेने के बाद तुम भी अपने उपवास का संकल्प तोड़ दोगी। अगर मैं ऐसा कुछ जानता, तो इस तरह बेशर्मी लादकर मैं कभी खाना स्वीकार न करता।"

पन्ना ठाकुर साहब की प्रतिक्रिया देखना चाहती थी। पर जब उनसे कोई उत्तर न देते बना, तब वह अन्त में बोली—"मैं तो केवल आत्म-शुद्धि के लिए यह उपवास कर रही हूँ, क्योंकि मैं देखती हूँ कि सच्चा प्रायश्चित्त आत्मशुद्धि के बिना हो ही नहीं सकता। मैं नहीं जानती कि प्रारब्ध में क्या लिखा है। मैं यह भी नहीं सोच पाती कि मेरे कर्म का भोग अभी कितना और बाकी है। लेकिन इतना मैं विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि जीवन के मूलभूत रूप को और सत्य को समझ लेने के बाद फिर और कुछ पाना बाकी नहीं रह जाता। इसलिए सबसे अच्छा तो यही होगा कि इस संकल्प को तोड़ने के लिए आप लोगों में से कोई मुझसे कुछ न कहे।"

पन्ना के इस कथन के बाद फिर ठाकुर साहब को और कुछ कहने का साहस न हुआ। पर खाना समाप्त हो जाने के अनन्तर हेमन्त बाबू गिलास भर दूध स्वयं लेकर पन्ना के सामने उपस्थित हो गये—तब पन्ना आश्चर्य में पड़ गयी। हृदय की विशालता का ऐसा उदाहरण कभी उसके सामने न आया था। फिर भी उसने दूध पीने से इनकार करते हुए कह दिया—"चाचा जी, बस इसके लिए तो आप मुझे क्षमा ही कर दें।"

हेमन्त बाबू ने बहुत कुछ सोचकर यह कदम रक्खा था। उन्होंने मुसकराते हुए जवाब दिया—"मेरे जीवन में क्षमा के लिए कभी स्थान नहीं रहता। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैंने सदा न्याय करने का ही अभ्यास किया है। न्याय मेरा धर्म है, कर्म है, मन-प्राण और साँस-साँस का आन्तरिक मर्म है। इसीलिए अगर कोई धृष्टता करता है, तो मुझे दण्ड देना ही पड़ता है। मैं दण्ड देने के लिए विख्यात हूँ।"

"चाचा जी, आप मुझे चाहे जो दण्ड दे लीजिए, मैं सहर्ष स्वीकार कर लूंगी, मगर इस प्रकार का दण्ड स्वीकार करने के लिए आप मुझसे मत कहिए।"

तब हेमन्त बाबू कुछ गम्भीर होकर बोले—"तुम भूल गई हो पन्ना कि मेरा आदेश कभी व्यर्थ नहीं जाता। उसका पालन अनिवार्य रूप से होता है। फिर तुम इस समय मेरे यहाँ अतिथि की हैसियत रखती हो। और अतिथि की परिभाषा यह है कि वह अनायास, बिना किसी तिथि की सूचना दिये, आ टपकता है। इसीलिए उसको स्वागत हो कि सत्कार, हमारा आदेश के रूप में स्वीकार ही करना पड़ता है। इसमें ना तो हो ही नहीं सकती।"

एकाएक देखते-देखते पन्ना की आँखों में आँसू झलक आये। उसने उत्तर दिया—"चाचा जी, आपको मालूम है कि मैं क्या हूँ?"

"मुझे सब कुछ मालूम है। ठाकुर साहब ने तुम्हारे परिचय में यही कहा है कि पन्ना मेरी बहिन है।"

पन्ना ने आँसू पोंछते और अधर हिलाते कम्पित वाणी में कह दिया—"तो इस नाते क्या आप मुझको अपनी बहिन बनाने के लिए तैयार होंगे?"

हेमन्त बाबू ने गरजते हुए उत्तर दिया—"नहीं।"

एकाएक मोहन बाबू और पन्ना हेमन्त बाबू की ओर देखते रह गये। अब उनकी समझ में आया कि हेमन्त बाबू का स्वर अपने आप में कितना निष्ठुर है।

और भी स्पष्टीकरण करते हुए हेमन्त बाबू बोले—"तुम मेरी बहिन कैसे हो सकती हो? तुम तो मेरी बेटी हो बेटी! घात-प्रतिघात की इस पावन घड़ी में तीन दिन का उपवास करने का अखण्ड संकल्प लेने वाली लड़की मेरी कोई बेटी ही हो सकती है। और बेटी पन्ना क्या तुम अपने चाचा की आज्ञा नहीं मानोगी? अच्छा आज्ञा न सही, अनुरोध तो तुमको मानना ही पड़ेगा!"

अब पन्ना स्थिर न रह सकी। भरी हुई सिसकियों की दो बूँद हेमन्त बाबू के चरणों पर डालते हुए उसने अपना सिर टेक दिया।

नमिता, शरत, ठाकुर साहब बात की बात में अन्दर आगये। ठाकुर साहब अपने आँसू पोंछते हुए सोच रहे थे कि एक यह है पन्ना, मेरी बहिन, और एक मैं हूँ—नीच, जघन्य और पशु।

इस प्रकार पन्ना को जब दूध पीना ही पड़ा, तो थोड़ी देर बाद उसे फिर जो नींद आयी, तो तभी खुली, जब उसने देखा मोहन बाबू उठ कर बैठ गये हैं। तत्काल उसने सोचा कि जीवन में कोई भी सबेरा इतना सुनहला कभी नहीं हुआ, जैसा यह आज दिखाई दे रहा है। मैं कहीं भी होती तो इतनी निश्चिन्त कभी न होती। आज तो ऐसा लगता है कि अगर कहीं ठौर-ठिकाना न भी मिले और जीवन-निर्वाह का कोई समुचित और गौरवपूर्ण साधन भी प्राप्त न हो तो सामान्यरूप से कोई भी कार्य ऐसा सोचा और निकाला जा सकता है कि मैं मोहन बाबू के साथ सम्मानपूर्वक रह सकूँगी।

किन्तु इसी क्षण उसे ध्यान आया कि भाई हो या पिता, किसी के यहाँ भी भार बन कर टिकना और रहना मेरे लिए कभी शोभन न होगा।

पन्ना भावना में डूबी मोहन बाबू के पास जाकर एकाएक खड़ी हो गई और उसने पूछा—"कैसी तबीयत है? नींद तो फिर आ गई थी न?"

मोहन बाबू ने उत्तर दिया—"नींद भी आई पन्ना और साथ ही मुझे कुछ ऐसा लगा कि ये जो मारपीट हो गई, वह भी मेरे जीवन-मार्ग में जैसे एक नया रास्ता सुझाने के लिए आई थी। क्योंकि ऐसा भी तो हो सकता है कि अर्जुन दादा को हम यहीं बुला लें और उनसे कहें कि जब हम गाँव के दकियानूसी और समाज विरोधी तत्वों के बीच शान्तिपूर्वक नहीं रह सकते, तब क्या यह उचित न होगा कि तुम भी यहीं आ जाओ। सबेरे नित्य गंगा स्नान करो। बना-बनाया भोजन पाओ और आराम से रहकर चैन की वंशी बजाओ। तुम्हारे पास तो इतनी जमीन है कि उसे बेचकर एक अच्छा-सा मकान खरीद सकते हो या अगर बैंक में जमा करा दो तो उसके ब्याज से ही बैठे-बैठे खा सकते हो।"

पन्ना ने उत्तर दिया—"और अगर उसी निधि को हम किसी उद्योग में लगा दें, तो उसके सहारे हमको काम भी मिल सकता है और हम सम्मानपूर्वक जीवन भी बिता सकते हैं।"

मोहन बाबू बोले—"मगर पन्ना, अगर हम जरा ध्यान से सोचें तो

इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि इस तरह का जीवन तो परमुखापेक्षी होगा ही। आखिर को हम एक अनुदान के सहारे ही जीवन व्यतीत करेंगे !"

पन्ना बोली—"एक योगी और संन्यासी, सन्त और महात्मा तो हम हैं नहीं। हम तो समाज के एक भटके हुए यात्री हैं। और ऐसी दशा में भी जिस सम्पत्ति के हम उत्तराधिकारी हैं, अहंकार के झूठे आडम्बर में पड़कर उपभोग करने के बजाय अगर हम उसकी उपेक्षा ही कर बैठते हैं, तो क्या हम पराजित भावना के शिकार नहीं हो जाते ? मैं उस दम्भ को मिथ्या समझती हूँ, जिसका अन्त पागलपन में होता है।"

मोहन बाबू को ऐसा जान पड़ा जैसे पन्ना ने जलती हुई लोहे की सलाख सामने कर दी हो। और सहसा उन्हें ऐसा भ्रम प्रतीत हुआ हो कि कहीं हम उससे चहक न जायँ। कला की साधना के नाम पर जिस आदमी का जीवन ही दान और दक्षिणा के आधार पर पनपता आ रहा हो, उसके लिए यह सोचना कि अर्जुन दादा की सम्पत्ति का सहारा लेना परमुखापेक्षी बनना है, सचमुच उपहासास्पद ही है।

और तब उन्होंने कह दिया—"पहले तो हाथ ठीक हो जाय, फिर उसके बाद यह स्थिर करूँगा कि गाँव में ही रहना ठीक है या नगर में।"

बात पिछली रात की है।

पलँग पर पैर रखते ही हेमन्त बाबू बोले—"कोई-कोई दिन अपने आप में इतना उलझा हुआ और शृङ्खलाबद्ध होता है कि घड़ी भर को भी हमें यह सोचने का अवसर नहीं मिलता कि धार के भीतर नाव के नीचे पानी कितना गहरा है।"

मुस्कराती-मुस्कराती चुटकी सी लेती नमिता बोली—"कभी-कभी तुम विमान पर बैठकर इतनी ऊँची उड़ान भरने लगते हो कि तुम्हारी कामना के तन्तुओं का पता ही नहीं लग पाता। साफ-साफ कहो कि कहना क्या चाहते हो ? तुमने वासुदेव बाबू के यहाँ जाकर कदम कौन-सा बढ़ाया ? किया क्या ?"

पैर पसार कर तकिये पर आराम से रखते और नमिता की ओर करवट लेकर हेमन्त बाबू बोले—"मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि शरत किसी गहरी चिन्ता में पड़ गया है। तुम कुछ बता सकती हो ? और फिर दूसरी बात मुझको तुमसे पूछनी है कि तुमने मुझको क्या समझा है ? मैं क्या कर आया, क्या करूँगा, इसका आभास तुमको अब तक नहीं मिला ?"

"आशा तो मैं तुमसे यही करती हूँ कि तुम घूम-फिर कर ठिकाने आ लगे होगे। आखिरकर तुमने भी शरत का विवाह गौरी के साथ करने का ही निश्चय कर लिया होगा। लेकिन वास्तव में तुमने इस विषय को उनके सामने रक्खा भी या नहीं और रक्खा भी तो किस ढंग से ? यही मैं जानना चाहती हूँ।"

"अरे मैंने ऐसी खूबसूरती के साथ उन लोगों से गौरी को शरत के लिए माँग लिया कि वे लोग दंग रह गये। अब यही बात मुझे स्थिर करने को बाकी रह गई है कि मुकुट बाबू का समाधान मैं कैसे करूँ ? वैसे सोचा तो मैंने यही है कि सुरेश के साथ माधुरी का विवाह तय करवा दूँ। माना कि उनके पास आज पैसा नहीं है। वासुदेव बाबू की मर्यादा भी मुकुट बाबू के अनुकूल नहीं है; लेकिन नन्दलाल बाबू के पास तो पैसे की कमी नहीं है। यह दोनों तो द्विमातृ भाई हैं। नन्दलाल बाबू को नाना के यहाँ से जो जायदाद मिली थी, उसमें कुछ वृद्धि ही हुई होगी। सुनता तो यहाँ तक हूँ कि उनके पास दिल्ली में दो मकान हैं। इसके अतिरिक्त अस्सी हजार रुपया नकद है। मुकुट बाबू को और चाहिये क्या ? माधुरी भी सुरेश को पाकर हमारे यहाँ से कुछ कम सुखी नहीं रहेगी। सच पूछो तो हमी घाटे में रहे।" और यह कहते हुए वे हँस पड़े—"वासुदेव बाबू कल हमको पाँच रुपये दे रहे थे।"

नमिता उनकी इस बात पर गम्भीर हो गई और बोली—"उनके पाँच रुपये हमारे लिए पाँच हजार के बराबर हैं। गौरी जैसी लड़की धरी कहाँ है ?"

"हाँ, यह तो तुम ठीक कहती हो।"

"मुझे तुमने उस वक्त बताया नहीं, नहीं तो उसी वक्त मैं अपने सारे

गहने लेकर उसे सोने से लाद देती। उसकी मन्द-मन्द हास-विलसित भंगिमा देखने के लिए मैं कब से तरस रही हूँ; पता भी है तुम्हें ?"

हेमन्त बाबू हँस पड़े और बोले—"तुम तो ऐसी बात कर रही हो जैसे तुम्हारी यह मछली सी आँखें मेरे जैसे किसी सौन्दर्य लोभी पुरुष की हों।"

"पुरुषों ने क्या सौन्दर्य की परख का ठेका ले रखा है ? पुत्र-प्यार की लालसा की उत्तरंग लहरों के बीच से देखो तो तुमको पता चले कि नयी-नवेली बहू को भाँति-भाँति के रूपों और वेश-भूषाओं में देख-देखकर तन-मन में जो सिहरन उठती है, उसके उद्दीपन में कितनी मादकता होती है कितनी विह्वलता !"

हेमन्त बाबू हँस पड़े और बोले—"बहुत दिनों से तुमको इतनी सजी-बजी रूपरेखा में नहीं देखा। कभी-कभी तो मेरा मन रख दिया करो डार्लिंग !"

"घबराओ नहीं। अब वह दिन दूर नहीं, जिस दिन शरत की शादी होगी, उस दिन तुम तो रहोगे बारात में—और मेरे यहाँ वो डांस होगा कि तुम्हारे सभी संगी-साथियों की बीबियाँ तर जायेंगी। और जानते हो किसका डांस होगा ?" एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना नमिता बोली—"पन्ना का।"

हेमन्त बाबू बोले—"नाचती तो तुम भी बहुत अच्छा हो !"

"अच्छा-अच्छा, बुढ़ापे में डोरे मत डालो मुझ पर। चुपचाप सोओ। नहीं तो आठ बजे तक सोते रहोगे और परिणाम यह होगा कि सारा कार्य-क्रम चौपट हो जायगा।"

"अच्छा बाबा ! यह लो !" कहकर उन्होंने करवट बदल ली। और तभी उनको ख्याल आ गया कि पन्ना कितनी तेजस्विनी लड़की है ! मगर जिन स्थितियों से वह गुजर चुकी है, उस पर मुझे विश्वास नहीं होता। आज भी उसकी रूप-राशि किसी मुग्धा से कम नहीं है। और मोहन बाबू को क्या कहूँ ? वास्तव में उन्होंने बड़े साहस से काम लिया। और क्यों न हो ? कला के पुजारियों से हम ऐसी ही आशा करते हैं।

थोड़ी देर तक तो वे करवटें बदलते रहे। फिर एकाएक उठे और

मोहन बाबू के कमरे की ओर जाते-जाते रुक गये। जान पड़ा, आपस में बातें हो रही हैं तो चुपचाप लौट आये।

शरत का कमरा सामने पड़ता था। बत्ती जल रही थी। खिड़की पर आकर बोल उठे—"तुम अभी सोये नहीं? सोओ सोओ। निश्चिन्त होकर सोओ। तुम्हारा विवाह मैंने गौरी के साथ तय कर दिया है। अब तो खुश हो? तुमको मुझसे पहले ही कह देना चाहिए था। मैं तुम्हारा पिता हूँ पिता! कान खोलकर सुन लो—तुम्हें जो कुछ प्राप्त करना हो उसे छल, प्रपंच और धोखाधड़ी से नहीं, मन-प्राण की मुसकराहट में प्राप्त करो, इसी में जीवन की सार्थकता है। हंस मोती चुगता भी है तो मानसरोवर में। इधर-उधर की ताल-तलैयों में नहीं! समझे?"

: २८ :

नन्दलाल बाबू, वासुदेव बाबू, सुरेश और रमेश मिठाइयाँ और फल आदि लेकर जब हेमन्त बाबू के बँगले पर आ पहुँचे, तब नमिता बोली—"भैया तो सुबह से ही कहीं चला गया है। और यह भी नहीं बतला गया है कि कहाँ जा रहा है और कब तक लौटेगा। हाँ, पंडित जी को बुलाने के लिए गज्जू को भेज दिया है।"

नन्दलाल और वासुदेव बाबू दोनों जज साहब के कमरे में बैठे उनकी प्रशंसा कर रहे थे कि एकाएक सुरेश ने निकट आकर उनके पैर छू लिये। हेमन्त बाबू ने हाथ उठाते हुए आशीर्वाद दिया। फिर वे बोले—"सुखी रहो बेटा! ...तुमने अपना इंजीनियरिंग का कोर्स पूरा कर लिया?"

सुरेश ने उत्तर दिया—"आपके आशीर्वाद से!"

इतने में नमिता जो उनके कमरे में आई तो उन्होंने कहा—"तुम ज़रा वनमाला को टेलीफोन कर दो कि माधुरी को लेकर आ जाय। मुकुट बाबू को मैं कुछ देर बाद बुलवाऊँगा।"

वनमाला ने ज्योंही रिसीवर कान से लगाया और सुना कि नमिता बुला रही है तो उसकी उत्सुकता, कौतूहल और जिज्ञासा एकत्र होकर एक प्रेरणा बन गई। उसने ड्राइवर बुलाया, मुकुट बिहारी जो बाथ रूम में थे, उनके बाहर निकलने की प्रतीक्षा किये बिना माधुरी को साथ लिया और झट गाड़ी में बैठकर जज साहब की ओर प्रस्थान कर दिया।

अब वासुदेव बाबू रह-रह कर जज साहब के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोल उठते थे—"यह सब जज साहब की उदारता और महानता का ही परिणाम है।"

उनके कथन में शालीनता तो थी ही, अपनी आर्थिक असमर्थता का भी थोड़ा-सा भीगा-भीगा अंश मिश्रित था।

इसके विपरीत नन्दलाल बाबू के कथन में कुछ इस प्रकार का शिष्टाचार था, जो सम्पदा और ऐश्वर्य से भरे-पूरे मनोबल से ही सम्भव होता है। वे कह रहे थे—"जज साहब, बड़े बोल बोलना और आडम्बर दिखलाना मेरा स्वभाव नहीं है। आपने तो कुछ कहा ही नहीं, कोई शर्त ही नहीं लगाई। परिणाम यह हुआ है कि आपकी इस महानता के आगे मैं विनयावनत हूँ। पर इस प्रसंग में केवल एक बात कहना चाहता हूँ कि देने की शक्ति रहने पर जो देने का मन नहीं रखता, उसे मैं मनस्वी नहीं हलके किस्म का आदमी मानता हूँ। और भी साफ कह दूँ कि वह बातें बनाकर अपना स्वार्थ साधन करने वाला एक चतुर खिलाड़ी और चलता-पुर्जा आदमी भर हो सकता है, सभ्य और सुजन व्यक्ति नहीं। और मालूम नहीं क्या बात है जज साहब, ऐसे आदमियों से मेरी नहीं पटती। क्योंकि ऐसे लोग हमारे सामाजिक स्तर को आगे बढ़ाने की अपेक्षा और पीछे खिसकाते रहते हैं। यही वह वर्ग है जो सभ्य भाषा में अवसरवादी और भीतर से मानवता से हीन और पिछलगुआ हुआ करता है। अतः केवल एक बात का मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं सेवा आपकी मन से करूँगा और ऐसा तो एक क्षण भी न आने दूँगा कि आपको सोचना पड़े कि हम कहाँ आ फँसे!"

हेमन्त बाबू मुसकराते हुए बोले—"अरे नन्दलाल बाबू, आप क्या कहने लगे! मुझसे कुछ छिपा है?"

अवसर देखकर दायें कन्धे का अंचल सम्हालती नमिता बोली—"आप यह क्यों भूल जाते हैं कि गौरी को पाकर हमने सब कुछ पा लिया।"

इतने में वनमाला माधुरी के साथ आ पहुँची। वह डैकरौन की सलवार और स्लीव-लेस चुस्त कुरता पहने हुयी थी। दोनों की सिलाई इस बात का ध्यान रखकर की गई थी कि देह-लता का सारा अंग-सौष्ठव उभर उठे। इन वस्त्रों का रंग उसके शारीरिक वर्ण के इतने अनुकूल था और वेणी-गुंथन, कानों की झालदार झुमकियाँ, कजरारे नयनों के कोरों की धार आदि सब मिलकर सहज ही उसे रूपसी की संज्ञा देते प्रतीत होते थे। नमिता एकाएक उसे देखकर प्रभावित हुए बिना न रह सकी और एक बार तो यह भी उसके मन में आया कि यह बड़ा अच्छा हुआ जो यह बहू के रूप में हमारे घर न आयी। नहीं तो इस सौन्दर्य-प्रसाधन में देख-देख कर शरत तो इसका गुलाम बन जाता। और उनको तो सोचना पड़ जाता कि बहू की रूप की इस प्रदर्शन-वृत्ति को नियंत्रित कैसे किया जाय? नमिता दोनों को अपने कमरे में ले गई और रमेश के द्वारा उसने सुरेश को अपने पास बुला लिया।

इतने में गज्जू ने आकर पंडित जी के आने की सूचना दी। नमिता ने कहा—"अच्छा, अच्छा! उनके लिये फलाहारी मिठाई ले आओ। यह नोट लो।" और उसने बटुये से निकालकर पाँच का नोट आगे बढ़ा दिया।

गज्जू जब चला गया तो उसने वनमाला के कान में कह दिया—"यही है!"

सुरेश की दृष्टि एकाएक माधुरी पर जा पड़ी। पहले तो वह उसकी छवि-माधुरी से आतंकित हो उठा। उसकी समझ में न आया कि उससे कैसे परिचय प्राप्त किया जाय? अवसर देखकर नमिता ने वनमाला से कुछ न कहकर सुरेश से ही कह दिया—"बेटा, ऐसी क्या बात है कि

गौरी का विवाह तय हो गया है तो सत्यवती और कावेरी जीजी हमारे यहाँ आना-जाना भी छोड़ देंगी। जाओ, सबको लिवा लाओ।"

ज्योंही सुरेश चला गया, त्योंही उसकी शिक्षा, उसके ताऊ नन्दलाल बाबू की नकद और स्थायी सम्पत्ति आदि का ब्यौरा विस्तार से समझाते हुए कहा—"हम लोगों ने पहले से ही सोच रक्खा था। बतलाया केवल इसलिए नहीं था कि तब तक यह आया नहीं था। यों तो कहने को अभी स्टार्टिङ्ग पे साढ़े-तीन-सौ ही होगी। क्योंकि विधान के अनुसार नौकरी की अनिवार्य अवधि (कम्पलसरी पीरियड) पूरा ही करना पड़ेगा, किन्तु उसके बाद हजार-बारह सौ कहीं नहीं गये। और रूप-रेखा में कैसा है, यह देख ही लिया तुमने! शरत से इक्कीस है कि नहीं?"

वनमाला जो सुरेश को देख-देखकर सिहर रही थी, मन ही मन अब बोली—"जीजी, मैं तुम्हारा यह अहसान जीवन भर न भूलूंगी। मैं जानती थी, तुम्हारी पसन्द कितनी उच्च-कोटि की होती है। लड़का मुझे पसन्द है—बहुत पसन्द है।"

माधुरी कुर्सी से उठकर इधर-उधर देख रही थी, एकाएक उसके ध्यान में आया कि खिड़की से जो लता उसके सामने पड़ती है उसमें गुलमोहर के खिले हुए फूल टहनी के साथ हिल-हिल कर कुछ कहते से जान पड़ते हैं। हाथ बढ़ाकर उसने एक फूल तोड़कर झट से अपनी वेणी में लगा लिया।

इतने में सत्यवती और कावेरी के साथ गौरी भी आ पहुँची। गौरी जानती थी कि रूप-सज्जा में माधुरी बड़ी प्रवीण है। माधुरी झट से गौरी के पास जा पहुँची। देखते ही बोली—"बधाइयाँ!" गौरी ने सबको नमस्ते किया। और साथ में माधुरी ने भी सत्यवती और कावेरी को हाथ जोड़कर नमस्ते कर लिया। फिर गौरी माधुरी के कन्धे पर हाथ रखकर उसे एकान्त में ले गई और बोली—"यह न समझना कि शरत को मैंने तुमसे छीन लिया है।"

माधुरी ने उत्तर दिया—"बहुत बढ़कर बातें न मारो। मुझे सब मालूम हो चुका है। बड़ी गनीमत हुई कि मैंने डैडी से अपनी प्रतिक्रिया अब तक जाहिर नहीं की। और साफ कह दूं कि जिस तरह से तुम उस

पर लट्टू हो रही हो, उस तरह मैंने शरत बाबू को न कभी देखा और न कभी उससे ब्याह करने की कोई लालसा ही व्यक्त की। हो जाता तो हो जाता; नहीं हुआ न सही। मेरे हिसाब से कोई फर्क नहीं पड़ता।"

गौरी उसकी इस बात को सुनकर तिलमिला उठी और बोली—"मैं तुम्हारी बात नहीं कहती, पर ऐसी बहुतेरी लड़कियों को जानती हूँ जिन्होंने छब्बीस बार अवसर आने पर यह घोषणा की है कि मेरा प्रेम वासना से सर्वथा हीन है। लेकिन बाद की परिणतियों ने सिद्ध यह किया कि उनकी सारी उपलब्धियाँ वासनात्मक रही हैं। हताश हो जाने पर एक को छोड़ दूसरा अपनाने में कभी-कभी तो उनको घण्टे भर की भी देर नहीं लगी!"

माधुरी बोली—"यह तुम्हारा भ्रम है।"

गौरी बोली—"खैर, जाने दो। मैं तुमको इस वक्त इस बहस में नहीं डालना चाहती।"

इतने में बनमाला ने पुकारा—"माधुरी, जरा यहाँ आना।"

जब माधुरी पास आगई तो नमिता ने कहा—"अपने डैडी को आने के लिए फोन पर कह दो।" और फिर उसने गौरी से कह दिया—"गौरी बेटी, तुम चाय का प्रबन्ध देखो।"

इसी समय कुछ सोचकर वनमाला ने माधुरी से कह दिया—"ठहरो, मैं टेलीफोन करती हूँ।" और वह कमरे से उठ कर फोन करने चली गई।

मुकुट बाबू कमरे के अन्दर प्रवेश कर रहे थे कि हेमन्त बाबू बोले—"आइए, आप की ही प्रतीक्षा थी।"

मुकुट बाबू ज्योंही सोफे पर बैठे, त्योंही उन्होंने बतलाया—"सौभाग्य से आप सभी लोग एक-दूसरे से परिचित हैं। और यह बच्चा है सुरेश, रमेश का बड़ा भाई। मगर रहता है आपके पास और मेरा ख्याल है,

इनको तो आप जानते ही होंगे, फिर भी इतना बता दूं कि वासुदेव बाबू के बड़े भाई हैं।"

उनका इतना कहना था कि मुकुट बाबू बोले—"मैं अपनी लड़की माधुरी के विवाह के लिए सुरेश को चाहता हूं। आशा है कि आप मेरा प्रस्ताव स्वीकार करेंगे।"

नन्दलाल बाबू हेमन्त बाबू की ओर देखते हुए बोले—"जज साहब जो आज्ञा देंगे, उससे मैं बाहर नहीं हो सकता। इसलिए मुकुट बाबू, आपका प्रस्ताव मुझे सहर्ष स्वीकार है।"

इसी समय हेमन्त बाबू ने कह दिया—"तो फिर अब विधिवत् मुहूर्त्त हो जाना चाहिए। क्योंकि मैंने वचन दिया था कि चौबीस घंटे में आपकी समस्या हल कर दूंगा सो···।" कहकर घड़ी की ओर देखते हुए बोले—"भगवान की कृपा से बारह घण्टे के अन्दर ही मैं अपना वचन पूरा कर रहा हूं। अरे साहब, कुछ इसी बार की बात नहीं है। अकसर मैंने अनुभव किया है कि जो बातें बाद में सही साबित होती हैं, उन्हें पहले से मैं कुछ नहीं कहता, भगवान मुझसे कहला लेता है। अथवा हो सकता है, भगवान को ही मेरे कथन की लाज रखनी पड़ जाती हो।"

इसी समय गौरी और माधुरी चाय तथा उसके साथ को नाश्ता गज्जू और सोने के साथ आगे-आगे भेजती हुई आ पहुँचीं।

माधुरी ने झीनी चुन्नी से ही अपना वक्ष भाग आवृत कर लिया था। उसने अन्दर प्रवेश किया तो हेमन्त बाबू ने कहा—"आप लोग अपनी बहू को भी देख लीजिए।"

वासुदेव बाबू मुसकराते हुए बोले—"अरे, मेरी तो देखी हुई है। गौरी के साथ कभी-कभी हमारे घर भी आई है। दद्दा को देखना है सो देख लें।"

इसी समय हेमन्त बाबू गज्जू से बोले—"ठाकुर साहब और मोहन बाबू को यहीं बुला लो।" और सोने से बोले—"सब लोगों को यहीं बुला लो।"

नन्दलाल बाबू उसी वक्त उठ खड़े हुए। उन्होंने आव गिना न ताव, अपने दायें हाथ की अनामिका में पहनी हुई अपनी हीरे की अँगूठी उतार

कर माधुरी को पहनाने की चेष्टा की तो उसने संकोचवश अपना सिर नीचाकर हाथ आगे बढ़ा दिया।

इतने में नमिता के साथ सभी लोग आ पहुँचे। और तब प्रथा के अनुसार विधिवत् शिष्टाचार होने लगा।

जब अन्दर यह कार्यक्रम चल रहा था, तभी फाटक के बाहर एक जीप आ खड़ी हुई। इसमें कतिपय व्यक्तियों के साथ शरत भी बैठा हुआ था। झट से वह उतर पड़ा और अपने साथियों से बोला—"मैं अभी आया।"

जीप फाटक पर खड़ी रही। शरत भीतर आकर सीधे बैठक में जा पहुँचा, जहाँ सत्यवती माधुरी को अपना हार पहना रही थी।

शरत ने पहले हाथ जोड़ कर सबको नमस्ते किया। फिर हेमन्त बाबू और नमिता के चरणों की रज मस्तक से लगाते हुए बोला—"आप को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मैं अपने राष्ट्रीय गौरव की रक्षा के लिए सेना में भरती हो गया हूँ और प्रशिक्षण के लिए मद्रास जा रहा हूँ। आशीर्वाद दीजिए कि आपके आन्तरिक मनोभावों और आदर्शों पर चलता हुआ सदा स्थिर बना रहूँ!"

उसके स्वर में न तो किसी प्रकार की आर्द्रता थी, न कम्पन।

नमिता एकदम से स्तब्ध हो उठी और उसके मुँह से निकल गया—"बेटा, यह मैं तुमसे क्या सुन रही हूँ? तुम···सेना में भरती हो गये तुम! और युद्ध-भूमि की विभीषिका का सामना तुम करोगे! गोले उगलती तोपों और विध्वंसक वायुयानों के बीच में तुम अपने जीवन की बाजी लगाओगे!"

"सौभाग्य सराहो सभी कि इस अवस्था में मुझको देश की गौरव-रक्षा में अपनी कृतित्व की परीक्षा देने का अवसर तो मिलेगा। ममी, मैं तुम्हें क्या बतलाऊँ कि विगत दस घण्टे मेरे किस मनोन्मंथन में व्यतीत

हुए हैं। अन्त में मुझे यही तै करना पड़ा कि उस ओर मुझे जाना ही पड़ेगा।"

कथन के साथ फिर वह मुसकराता हुआ बोला—"मैं निरन्तर सोचता हूँ कि दायें हाथ में लिखा है पुरुषार्थ और बायें में सफलता। आशीर्वाद दो कि मेरा यह स्वप्न पूरा हो।"

बात की बात में नमिता का कण्ठ भर आया। कम्पित वाणी में उसने कहा—"बेटा तुम दस-पाँच दिन भी नहीं रुक सकते! तुमने यह भी न सोचा कि जब गौरी के साथ तुम्हारा विवाह होने जा रहा है तभी तुम युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहे हो!"

"समय के महत्व ने मुझे यही सिखाया है ममी! कई रातों से मैं एक आवाज सुन रहा हूँ। उस आवाज में आँसुओं की आर्द्रता और आहुतियों की मूक ऊष्मा है। स्पष्ट है कि भारत वसुन्धरा मुझे पुकार रही है। तुम जानती हो जब देश की लाज-रक्षा का समय हो, तब हम एक क्षण भी कैसे रुक सकते हैं? विवाह हो कि राजतिलक, गरम रक्त के आह्वान के समय तो मैं रुकने की कल्पना भी नहीं कर सकता।"

ठाकुर साहब सोच रहे थे—"आज तुम्हारे व्यक्तित्व का परिचय मिला है शरत! मैं तो समझता था कि बड़े आदमियों के लड़कों में कष्ट सहन करने की भावना ही नहीं होती। मगर तुमने हमारा यह भ्रम दूर कर दिया।"

मोहन बाबू के मन में आया—'अगर मैं इस आहत अवस्था में न होता, तो हो सकता था—आज मैं भी इसी रास्ते पर जा लगता।'

महेश को गोद में लिये गीली हो रही पलकों और आर्द्र मन में सत्यवती सी सोच रही थी—"आज मेरा यह मैया भी अगर इस उमर का होता और वह भी सेना में भरती होने की कामना प्रकट करता, तो आज गौरव से मेरा मस्तक कितना ऊँचा हो जाता! धन्य है वह कोख, जो ऐसे बच्चों को जन्म देती है!"

और नन्दलाल बाबू के कान में कोई कहने लगा—"सब लोगों को ऐसा गौरव कहाँ मिल पाता है?"

कावेरी की आँखें आँसुओं से तर हो गई थीं। आँधियों के बवण्डर उसके भीतर उठने लगते थे—'क्या सोचा था और क्या हो रहा है ?' पर फिर तुरन्त उसने अपने मन ही मन कह लिया—'लेकिन यह अवसर किसी तरह की कमजोरी दिखलाने का नहीं है।'

एकाएक उसके मुँह से निकल गया—"युग-युग जियो शरत, तुमको यही मेरा आशीर्वाद है।"

घूम-फिर कर वासुदेव बाबू मन-ही-मन सोचने लगते थे कि अब गौरी का क्या होगा ?

हेमन्त बाबू बरामदे की एक सीढ़ी नीचे उतर रहे थे। अब उनकी आँखों से आँसू गिर रहे थे। उधर जीप में शरत का सामान बेडिंग और सूटकेस रखा जा रहा था।

इसी समय क्रन्दन के स्वर में नमिता बोली—"तो तुम चले ही जाओगे बेटा ? क्या मेरा प्यार भी तुमको नहीं रोक सकेगा ?"

"तुम भूल रही हो माँ कि तुमसे भी बड़ी मेरी एक माँ और है, भारत की यह पावन धरती ! उसकी पुकार मैं कैसे अनसुनी कर दूँ ? और फिर तुम यह क्यों भूल जाती हो कि तुम्हारा आशीर्वाद तो सदा मेरे साथ रहेगा। जब मैं अपनी सबसे बड़ी माँ की पुकार पर तुरन्त चला जा रहा हूँ, तब तुम समझती हो, तुम्हारी स्पष्ट पुकार के स्वर मैं नहीं सुन सकूँगा ?"

रूमाल से अपने आँसू पोंछता हुआ बोला—"मैं आऊँगा ममी, तुम चिन्ता मत करो, शीघ्र आऊँगा।"

एकाएक उसकी दृष्टि गौरी पर जा पड़ी जिसकी सिसकियाँ थम नहीं रही थीं। तभी उसने जेब से एक बन्द लिफाफा उसकी ओर बढ़ाते हुए कह दिया—"रोने की आवश्यकता नहीं है गौरी, मैं आऊँगा और अवश्य आऊँगा।"

इतने में नमिता बोली—"भैया, रुक नहीं रहा है। मैं लुटी जा रही हूँ और सब लोग देख रहे हैं।"

उस क्षण हेमन्त बाबू का पैर सीढ़ी के नीचे जा रहा था और उनकी

आँखों से आँसू टपक रहे थे। नमिता बोली—"शरत के डैडी, भैया को तुम भी नहीं रोक सकते ?"

अब हेमन्त बाबू के आगे-आगे था शरत और उसके पीछे थी नमिता। तभी उन्होंने नमिता की ओर देखकर कह दिया—"हाँ, मैं भी नहीं रोक सकता! सच पूछो तो अब उसको कोई नहीं रोक सकता। भैया के स्वर में यह मैं बोल रहा हूँ, मेरा खून बोल रहा है।"

फिर उसके मन में आया—त्याग की पावन बेला में जो सुख मिलता है, वह अतुलनीय होता है। उसका स्वर मूक होता है। सब लोग उसे नहीं सुन पाते। पर बिना रुके वे बोले—"बिलकुल ठीक समय पर उसने यह कदम रखा है। मन ही मन मैं उससे आशा तो यही करता था।" उन्होंने यह नहीं बतलाया कि यद्यपि इनकी धारणा उसके सम्बन्ध में कुछ निश्चित न हो पायी थी।

इतने में शरत हेमन्त की चरण धूलि अपनी आँखों से लगाकर कहने लगा—"बस डैडी, आपके आशीर्वाद से मैं विजय करके ही लौटूँगा।" और इसके बाद जब वह नमिता के पैरों पर गिरने को उद्यत जान पड़ा तो झट से दौड़कर तब तक गौरी हल्दी-चूना-अक्षत ले आयी। गद्गद् हो रही नमिता ने तिलक कर दिया। नमिता ने उसे कण्ठ से लगाते हुए कह दिया—"भगवान करे, सदा विवेक तुम्हारा साथ दे और तुम सदा जीवन-युद्ध में विजय प्राप्त करते जाओ!"

अन्त में फिर शरत जीप में बैठ गया। और ज्योंही वह स्टार्ट हुई गौरी के आँसू उसके खुले हुए पत्र पर टप-टप गिरने लगे। पर फिर आँसू पोंछती हुई वह सोचने लगी—"पथ-पथ में भेद होता है। कोई निम्नतम गहराई से ऊपर आता है, कोई साधारण ऊँचाई की चोटी तक पहुँचना ही पसन्द करता है। तुम तो धन्य हो ही, आज तुमको पाकर मैं भी धन्य हो गई।"

जीप चली जा रही थी। द्वारमंच पर खड़े हुए लोग आँसू पोंछते हुए भीतर जा रहे थे और हेमन्त बाबू नमिता से कह रहे थे—"ऐसे समय तुम रोती हो ? शरत को जन्म देकर तुम्हारा जीवन सफल हो गया!"

उधर भरत जीप से आगे बढ़ता हुआ सोच रहा था—'मृत्यु के शीतल हो रहे कपोलों पर, जान पड़ता , गुलाब के फूटते-बिखरते दलों की मुस्कानें आ रही हैं और इधर-उधर घूमती मँडराती अथवा कब्रों तथा समाधियों में छिपी सोई आत्माएँ जाग-जाग कर भारत के गौरव का स्वर्ण प्रभात देख रही हैं।'